॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

२४१



योगचिकित्सा

[अनुपान के साथ]

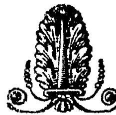
[INDICATIONS OF DRUGS]

प्रस्तुतकर्त्ता

अत्रिदेव, विद्यालकार

अध्यक्ष-आयुर्वेदिक फार्मेसी, प्रोफेसर, आयुर्वेदिक-काले

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

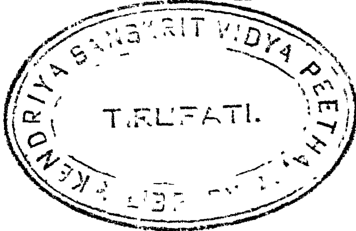


चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज, बनारस-१

वि० संवत् २०१०] [ई० १९५३

प्रकाशकः—
जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः,
चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज आफिस,
पो० बाक्स नं० ८, बनारस

The Chowkhamba Sanskrit Series Office.
P. O. Box 8, Banaras.
1953



मुद्रकः—
विद्याविलास प्रेस,
बनारस—१

कहने योग्य

बहुत समय से मेरी इच्छा थी कि एक ऐसी पुस्तक हो, जिसकी सहायता से नये विद्यार्थी और चिकित्सक दोनों ही रोग के अनुसार औषध का चुनाव सरलता से कर सकें। औषध का चुनाव करने के साथ साथ उसका अनुपान एवं मात्रा का भी निर्णय सुगमता से कर लें। 'क्लीनिकल मैडीसन' लिखते समय यह बात बहुत ही जरूरी अनुभव हुई, परन्तु साथ ही यह भी जंचा कि यदि इस विषय को इसमें सम्मिलित कर देता हूं तो पुस्तक का आकार बहुत बढ़ जायगा, इतना ही नहीं विषय बहुत विस्तृत हो जाता था। एक ही पुस्तक में सब विषयों का पूर्ण समावेश करना कठिन रहता है [नह्येकस्मिन् शास्त्रे शक्यः सर्वशास्त्राणामवरोधः कर्त्तुम्—सुश्रुत]।

सौभाग्य से चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय से योग संग्रहरूप में तीन, चार पुस्तकें [भैषज्यरत्नावली, राजकीय ओषधि योगसंग्रह, राष्ट्रीय चिकित्सा सिद्ध योगसंग्रह, सिद्ध भेषजसंग्रह आदि] प्रकाशित हुई हैं। इससे मेरा कार्य सुगम हो गया अर्थात् मैंने योगनिर्माणप्रक्रिया को सम्पूर्णरूप में छोड़ देना ही उचित समझा। जिससे पुस्तक का आकार बढ़ा नहीं, साथ ही विषय का पिष्टपेषण भी नहीं हुआ। इस लिये योगनिर्माण प्रक्रिया को छोड़कर रोग एवं अनुपान की दृष्टि से शास्त्रीय योगों का ही उल्लेख मुख्यरूप में किया गया है; जिससे विद्यार्थी और चिकित्सक दोनों के लिये उत्तम मार्ग दर्शक का कार्य देती है। योगों की निर्माण प्रक्रिया भैषज्यरत्नावली, आदि उपर्युक्त पुस्तकों में देखी जा सकती है।*

अनुपान रसौषध की विशेषता है। इस पुस्तक में अनुपानों का चुनाव बहुत ही बारीकी के साथ किया गया है। मुझे तो विश्वास है कि इस दृष्टि से लिखी

---

* कुछ मित्रों का आग्रह है कि इन योगों की निर्माण विधि भी लिख दूं। क्योंकि एक ही नाम के योग—एक ही अधिकार में कई हैं। मुझे भी उनकी बात जंचती है। प्रकाशक का स्नेह और उदारता आगे भी मिली तो यह कार्य भी भगवान कृपा से करने का यत्न करूंगा।

हुई हिन्दी में यह पहली पुस्तक है। बंगला में इस प्रकार की कुछ पुस्तकें हैं, परन्तु बंगला से इतर भाषाओं में इस प्रकार की पुस्तकें मेरे देखने में नहीं आई। अनुपान का चुनाव करना बंगाल के वैद्यों की अपनी विशेषता है, जो आज भी बेजोड़ है। गुरु श्री धरणीधरजी कविराज सांख्यतीर्थ एवं कविराज श्री हरिरंजन मजूमदार जी एम. ए. से इस सम्बन्ध में जो शिक्षा-ज्ञान समय समय पर मुझे मिला उसका मैंने इसमें सही सही उपयोग किया है। इसके सिवा श्री अमृतलाल जी गुप्त एवं कविराज श्री राखालचन्द्रदत्त जी वैद्यशास्त्री की पुस्तकों से सहायता ली है, इसके लिये मैं इन सब गुरुजनों की कृपा का आभारी हूं।

पुस्तक लिखते समय मुझे आयुर्वेदिक कालेज-काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री गंगासहाय जी पाण्डेय, श्री दामोदरशर्मा जी गौड़, श्री यदुनन्दन जी उपाध्याय और श्रीरमानाथ जी द्विवेदी से समय समय पर जो सूचनाएं, निर्देश, मिलते रहे उनसे मुझे बहुत ही सहायता मिली है। आप लोगों का क्रियात्मक एवं शिक्षण अनुभव इसमें पथप्रदर्शक रहा; जिससे विद्यार्थियों और चिकित्सकों के लिये सब आवश्यक योगों का ठीक प्रकार से समावेश हो सका। इसके लिये तथा पुस्तक की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त रूप में देखने के लिये श्री दत्तात्रेय अनन्तकुलकर्णी जी एम. एस. सी. आयुर्वेदाचार्य, डिप्टीडायरेक्टर स्वास्थ्य विभाग (आयुर्वेद) उत्तरप्रदेश का आभारी हूँ, जिन्होंने पुस्तक को देख कर इसको राजकीय चिकित्सकों के लिये उपयोगी ही नहीं अपितु आवश्यक बताया है।

अन्त में लेखक के नाते मैं प्रकाशक का आभार मानता हूं जिन्होंने इस नवीन विषय पर प्रकाशन का बोझ उठाया चूंकि, नये विषय पर प्रकाशित पुस्तक से आर्थिक दृष्ट्या लाभ होने की उतनी आशा नहीं, जितनी हानि होने की। फिर भी जो इसमें सहयोग देते हैं, उनका सौहार्द, उदारता या साहित्य सेवा ही इसमें कारण है—ऐसा मैं मानता हूं। इस लिये इस प्रकार के सज्जन के लिये उपकार मानते हुए मैं विदा लेता हूं।

विजयदशमी १७-१०-५३ अत्रिदेव

विषय सूची

सफलता और उत्तम वैद्य-[१]

आवश्यक सूचनायें [२-१६]

काल [२-३] मात्रा [३-६] योगों से चिकित्सा करना [६-१
दोष [१०-१२] अनुपान और सहपान [१२-१५] नाडी, श्वास
तापमाप [१५-१७] प्रलेप [१७-१९] क्रियासंकर [१९]।

श्रेष्ठ औषध और श्रेष्ठ चिकित्सक [२०]

ज्वर [२१-३८]

सामज्वर की चिकित्सा [२१-२३] ज्वर के उपद्रवों की चिवि
[२३-२४] ज्वर में अतिसार होने पर [२४] ज्वर में वमन होने
[२४] ज्वर में प्रलाप होने पर [२५] ज्वर में दाह होने पर [२
ज्वर में पिपासा होने पर [२५] ज्वर में कास होने पर [२५] ज्व
सर्वांगगत शूल होने पर [२६] ज्वर में शिरःशूल होने पर [२
ज्वर में अरुचि होने पर [२७] सन्निपताज्वर चिकित्सा [२७-३
सन्निपात में उपद्रव चिकित्सा [३०-३१] सन्निपात में दाह होने
[३१-३२] सन्निपात में शोथ होने पर [३२-३३] सन्निपात
उदराध्मान-मल-मूत्ररोध चिकित्सा [३३] आगन्तुज ज्वर चिवि
[३३] निराम और मध्यम ज्वर चिकित्सा [३३-३५] ज्वर में क
प्रयोग विधि [३५-३६] विषमज्वर और जीर्णज्वर चिकित्सा [३६-३८

ज्वरातिसार चिकित्सा [३८-३६]

प्लीहा-यकृत और उरोग्रह चिकित्सा [३६-४८]

प्लीहा और यकृत रोग में कोष्ठबद्धता होने पर [४२] प्लीहा-य
रोग में पाण्डु चिकित्सा [४२-४३] प्लीहा-यकृद् रोग में शोथ चिवि
[४३] प्लीहा-यकृद् रोग में वमन चिकित्सा [४३] प्लीहा-यकृद्
में वेदना चिकित्सा [४३] पाण्डु-कामला-हलीमक चिकित्सा [४४-४

पाण्डु-कामला में अतिसार चिकित्सा [४५-४६] शोथ होने पर [४६] मलबन्ध होने पर [४६-४७] पाण्डु-कामला में कृमि चिकित्सा [४७] पाण्डु रोग में सर्दि और कास चिकित्सा [४७] वमन चिकित्सा [४८] अरुचि चिकित्सा [४८]।

उदर रोग चिकित्सा [४८-५४]

उदराध्मान होने पर [५०-५१] अतिसार होने पर [५१] शोथ चिकित्सा [५१-५४] कास होने पर [५४]

कास चिकित्सा [५४-६१]

कास रोग मे पाण्डु-कामला चिकित्सा [६०] कास रोग में रक्त वमन होने पर [६१] कास रोग में स्वर भंग होने पर [६१]।

राजयक्ष्मा रोग चिकित्सा [६१-६६]

उपद्रव चिकित्सा [६४-६५] श्वास होने पर [६५-६६] प्रमेह चिकित्सा [६६-६७] वेदना होने पर [६७] अतिसार होने पर [६७-६८] शोथ होने पर चिकित्सा [६८-६९]।

रक्तपित्त चिकित्सा [६६-७४]

ज्वर चिकित्सा [७१-७२] कास चिकित्सा [७२-७३] श्वास चिकित्सा [७३] दाह चिकित्सा [७३] अतिसार चिकित्सा [७३] पिपासा चिकित्सा [७४]।

अतिसार चिकित्सा [७४-८३]

शूल चिकित्सा [८०] पिपासा चिकित्सा [८०] वमन चिकित्सा [८०-८१] आध्मान चिकित्सा [८१] ज्वर चिकित्सा [८१] नाड़ी की गति विशृंखल तथा शरीर ठण्डा होने पर [८२] श्वास चिकित्सा [८३]

ग्रहणी रोग चिकित्सा [८३-८६]

आध्मान चिकित्सा [८८-८९] आमवात चिकित्सा [८९]

अग्निमान्द्य-अजीर्ण-विसूचिका-अलसक चिकित्सा [८६-९६]

ज्वर चिकित्सा [९३-९४] शिरःशूल-शरीर में दर्द चिकित्सा [९४]

शूल चिकित्सा [९४–९५] हिक्का–वमन चिकित्सा [९५] आध्मान–मल–मूत्ररोध चिकित्सा [९५] पिपासा चिकित्सा [९६] हिमांग, ज्ञानलोप और नाड़ी गति के बदलने पर चिकित्सा [९६–९७] खल्ली रोग चिकित्सा [९८] अलसक–विलम्बिका में आध्मान चिकित्सा [९८] मल–मूत्रावरोध चिकित्सा [९९]।

अम्लपित्त चिकित्सा [९९–१०९]

वमन चिकित्सा [१०१–१०२] अतिसार चिकित्सा [१०२–१०४] उदराध्मान चिकित्सा [१०४–१०५] मलबन्ध चिकित्सा [१०५] शूल चिकित्सा [१०५–१०६] खाज, दाह चिकित्सा [१०६] ज्वर चिकित्सा [१०७] चित्त चांचल्य–बुद्धिभ्रम चिकित्सा [१०९]।

अर्श रोग चिकित्सा [१०८–११७]

आध्मान चिकित्सा [११२–११३] मलबन्ध चिकित्सा [११३] वेदना चिकित्सा [११४–११५] ज्वर चिकित्सा [११५] प्रमेह–मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा [११५] अतिसार चिकित्सा [११६–११७]

कृमि रोग चिकित्सा [११७–१२१]

वमन चिकित्सा [११९] अतिसार चिकित्सा [११९–१२०] शूल चिकित्सा [१२०] अग्निमान्द्य चिकित्सा [१२०] सर्दि और कास चिकित्सा [१२०–१२१] हृद् रोग चिकित्सा [१२१] शिरःशूल चिकित्सा [१२१]

दाह चिकित्सा [१२२]

तृषा चिकित्सा [१२३–१२४]

वमन चिकित्सा [१२४–१२६]

कास चिकित्सा [१२५] श्वास–कास चिकित्सा [१२६] हिक्का चिकित्सा [१२६]

अरुचि चिकित्सा [१२६–१२७]

स्वरभंग चिकित्सा [१२७–१३०]

हिक्का–श्वास चिकित्सा [१३०–१३४]

ज्वर चिकित्सा [१३३-१३४] कफ विकार चिकित्सा [१३४]
वातव्याधि चिकित्सा [१३५-१५०]
ज्वर चिकित्सा [१४८-१४९] आध्मान-मलावरोध चिकित्सा [१४९-१५०]
मूर्छा ज्ञानलोप चिकित्सा [१५०]।
उन्माद रोग चिकित्सा [१५१-१५६]
अपस्मार रोग चिकित्सा [१५६-१५८]
मूर्च्छा रोग चिकित्सा [१५८-१६०]
आमवात चिकित्सा [१६०-१६४]
ज्वर चिकित्सा [१६३-१६४] दुर्बलता चिकित्सा [१६४]
वातरक्त चिकित्सा [१६४-१६९]
ज्वर चिकित्सा [१६९] वेदना चिकित्सा [१६९]
ऊरुस्तम्भ चिकित्सा [१७०-१७१]
गात्र वेदना चिकित्सा [१७१]
शूल रोग चिकित्सा [१७१-१७५]
दाह चिकित्सा [१७५] ज्वर चिकित्सा [१७५]
ऊदावर्त्त और आनाह चिकित्सा [१७६-१७७]
ज्वर चिकित्सा [१७६] वेदना चिकित्सा [१७७]
गुल्म रोग चिकित्सा [१७७-१८१]
वेदना चिकित्सा [१८०] ज्वर चिकित्सा [१८०] शूल चिकित्सा [१८१]
मलबन्ध आध्मान चिकित्सा [१८१]
हृद्रोग चिकित्सा [१८१-१८४]
कास चिकित्सा [१८३], श्वास चिकित्सा [१८३] ज्वर चिकित्सा [१८४]
वृद्धि-अंत्रवृद्धि-ब्रध्न रोग चिकित्सा [१८४-१८५]
सर्वांगवेदना चिकित्सा [१८५], ज्वर चिकित्सा [१८५]

श्लीपद रोग चिकित्सा [१८६-१८७]

ज्वर चिकित्सा [१८७]

कार्श्य-स्थौल्य-मेदोरोग चिकित्सा [१८७-१८६]

प्रमेह चिकित्सा [१८९]

शीतपित्त-उदर्द-कोठ चिकित्सा [१८६-१६१]

ज्वर चिकित्सा [१९१] वमन चिकित्सा [१९१]

उपदंश-फिरंग चिकित्सा [१६१-१६८]

पारद विधान-[१९३-१९५] व्रण चिकित्सा [१९५] आमवात चिकित्सा [१९५-१९६] पिड़का-कुष्ठ चिकित्सा [१९६] यक्ष्मा-कास-हृद्रोग चिकित्सा [१९७] अतिसार चिकित्सा [१९७] मूर्च्छा आक्षेप चिकित्सा [१९७] वृद्धि चिकित्सा [१९७-१९८]।

गलगण्डादि रोग चिकित्सा [१६८-२०१]

अपचीरोग चिकित्सा [२००-२०१]

प्रमेह रोग चिकित्सा [२०१-२०६]

बहुमूत्र चिकित्सा [२०५-२०६] दाह चिकित्सा [२०६] तृष्णा-वमन चिकित्सा [२०६-२०७] अतिसार-ग्रहणी चिकित्सा [२०७] श्वास-क्षय चिकित्सा [२०७] उदावर्त्त चिकित्सा [२०७] धातु दौर्बल्य चिकित्सा [२०८] गोनोरियासंक्रामक, विषाक्त एवं मेदरोग चिकित्सा [२०८-२०९]।

सोमरोग चिकित्सा [२१०-२११]

मूत्रकृच्छ्ररोग चिकित्सा [२१२-२१४]

मूत्राघात चिकित्सा [२१४-२१५]

अश्मरीरोग चिकित्सा [२१५-२१६]

मूर्च्छा चिकित्सा [२१७], मूत्रकृच्छ्र-मूत्राघात चिकित्सा [२१७-२१८] हृद्रोग चिकित्सा [२१८] अरुचि-वमन तृष्णा चिकित्सा [२१८-२१९] पाण्डु चिकित्सा [२१९]

व्रणशोथ-चिकित्सा [२१६-२२०]

व्रणरोग चिकित्सा [२२०–२२२]
विद्रधिरोग चिकित्सा [२२२–२२३]
विसर्प चिकित्सा [२२३–२२५]
पिड़का [विस्फोटक] चिकित्सा [२२५–२२६]
मसूरिका (चेचक) की चिकित्सा [२२६–२२९]
रोमान्तिका चिकित्सा [२२९]
कुष्ठरोग चिकित्सा [२२९–२३२]
पित्तरोग चिकित्सा [२३२]
कफरोग चिकित्सा [२३३–२३४]
शिरोरोग चिकित्सा [२३४–२३५]
नेत्ररोग चिकित्सा [२३५–२३७]
कर्णरोग चिकित्सा [२३७]
नासारोग चिकित्सा [२३८]
मुखरोग चिकित्सा [२३९]
स्त्रीरोग चिकित्सा [२३९–२४०]
आर्त्तवदोष-योनिरोग-रक्तप्रदर-श्वेतप्रदर तथा वन्ध्या चिकित्सा [२४०-२४३]
गर्भिणी चिकित्सा [२४३–२४५] सूतिकारोग चिकित्सा [२४५–२४७]
शिशुरोग चिकित्सा [२४७–२५१]
विषरोग-चिकित्सा [२५१]
रसायन और वाजीकरण औषध [२५१–२५३]
रस सिन्दूर-स्वर्ण सिन्दूर और मकरध्वज का अनुपान [२५३–२६०]

॥ श्रीः ॥

योग-चिकित्सा

सफलता और उत्तमवैद्य

मात्रा कालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता ।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा ॥
सम्यक् प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम् ।
सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम् ॥ (चरक)

'The art of prescription depends on the knowledge of dosage and time, and on the art, in turn dePends success; hence the skilful physician stands ever superior to those possessing merely a theoretical knowledge of drugs.'

'Success in treatmant signifines the correct application of all therapeutic measures, and success also indicates, that the physician is a fore most one endowed with the qualities of the physician.'

आवश्यक सूचनाएँ

'सूक्ष्माणि दोषभेषजदेशकालबलशरीराहारसात्म्यसत्त्वप्रकृतिवयसामवस्थान्तराणि; यान्यनुचिन्त्यमानानि विमलविपुलबुद्धेरपि बुद्धिमाकुलीकुर्युः किं पुनरल्पबुद्धेः' (चरक)

दोष-औषध-देश-काल-बल-शरीर-आहार-सात्म्य-सत्त्व-प्रकृति और वय के भेद इतने सूक्ष्म हैं कि जिनका विचार करने पर निर्मल-विशाल बुद्धि वाले व्यक्ति का भी मस्तिष्क चकरा जाता है, फिर थोड़ी बुद्धि वाले मनुष्य की बात ही क्या है। इसलिये संक्षेप में मुख्य रूप से जिन बातों का विचार प्रायः सामान्य-प्रतिदिन चिकित्सा में रखना आवश्यक है, उनका ही यहां पर निर्देश किया गया है। यथा—

१—काल

समय पर कही गई बात और समय पर दी गई औषध ही लाभदायक होती है। समय पर कही गई बात के लिये कालीदास ने कहा है—

'कालप्रयुक्ता खलु कार्यविद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति'—कु० संभव ७ स्वामी से समय पर कही गई बात अवश्य सफल होती है* ।

---

* समय पर बात कहनी चाहिये; इसीको दमयन्ती ने हंस को बहुत ही सुन्दरता से बताया है, देखिये—

अभ्यर्थनीयः स गतेन राजा त्वया न शुद्धान्तगतो मदर्थम् ।
प्रियास्यदाक्षिण्यबलात्कृतो हि तदोदयेऽन्यवधूनिषेधः ॥
शुद्धान्तसम्भोगनितान्ततृप्ते न नैषधे कार्यमिदं निगाद्यम् ।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुःसुगन्धिः स्वदते तुषारा ॥
विज्ञापनीया न गिरो मदर्थाः क्रुधा कदुष्णे हृदि नैषधस्य ।
पित्तेन दूने रसने सिताऽपि तिक्तायते हंसकुलावतंस ॥
धरातुरासाहि मदर्थयाच्ञा कार्या न कार्यान्तरचुम्बिचित्ते ।
तदर्थितस्यानवबोधनिद्रा बिभर्त्यवज्ञाचरणस्य मुद्राम् ॥
विज्ञेन विज्ञाप्यमिदं नरेन्द्रे तस्मात्त्वयाऽस्मिन्समयं समीक्ष्य ।
आत्यन्तिकासिद्धिविलम्बसिद्ध्योः कार्यस्य काऽऽर्यस्य शुभा विभाति ॥ (नैषध)

औषध को समय पर देना चाहिये इसके लिये अत्रिपुत्र ने कहा है—

१—नह्यतिपतितकालमप्राप्तकालं वा भेषजमुपयुज्यमानं योगिकं भवति।'

२—'नह्यप्राप्तातीतकालमौषधं यौगिकं भवति। तस्य त्वेकादशधा ऽवचरणम्; तद्यथा-अभक्तम्; प्राग्भक्तम्, मध्यभक्तम्, अधोभक्तम्, सभक्तम्, अन्तरभक्तम्, सामुद्गम्, मुहुर्मुहुः, सग्रासं, ग्रासान्तरा, निशि चेति'। (संग्रह सू० अ० २३)

काल भी ओषधि की उपयोगिता को बढ़ा देता है, समय से पूर्व या समय निकलने पर दी गई औषध ठीक नहीं होती। ओषधि देने के ग्यारह समय हैं; यथा-

अभक्त-बिना कुछ खाये; **प्राग्भक्त**-भोजन से ठीक पूर्व औषध देना; **मध्यभक्त**-आधा भोजन कर लेने पर औषध खाकर शेष भोजन करना; **अधोभक्त**-भोजन के पीछे तुरन्त औषध देना; **सभक्त**-भोजन में मिलाकर जो औषध दी जाये; **अन्तराभक्त**-प्रातः और सायं के भोजन के बीच में मध्याह्न या मध्यरात्रि में दी गई औषध; **सामुद्ग**-पहिले ओषधि थोड़ी लेकर भोजन करना और फिर शेष औषध को खाना; **मुहुर्मुहुः**-बार-बार ओषधि लेना; **सग्रास**-भोजन के प्रत्येक ग्रास के साथ ओषधि लेना; **ग्रासान्तर**- दो ग्रासों के बीच बीच में ओषधि लेना; **रात को**-ऊर्ध्व जत्रुगत रोगों में रातको सूर्यास्त के पीछे औषध दी जाती है। सायंकाल में कफ का प्रकोप स्वयं कम हो जाता है, इसीलिये नेत्ररोग में त्रिफला घृत सायंकाल में देते हैं।*

इसलिये औषध को समय पर ही देना चाहिये [कालो हि भैषज्यप्रयोगपर्याप्तिमभिनिवर्त्तयति ॥]।

२—मात्रा

थोड़ी मात्रा में दी गई औषध रोग का शमन नहीं करती, बड़ी मात्रा में दी गई औषध रोगी को हानि करती है; इसलिये रोग और वय दोनों का विचार करके मात्रा देनी चाहिये—

············मात्रामूलं चिकित्सितम्।
तस्मादग्निमृतुं सात्म्यं देहं कोष्ठं वयो बलम् ॥
प्रकृतिं भेषजं चैव दोषाणामुदयं व्ययम्।
विज्ञायैतद्यथोद्दिष्टां मात्रां सम्यक् प्रयोजयेत् ॥ (का० खिल ३)

* विस्तार के लिये लेखक की '**भैषज्यकल्पना**' की सहायता लेना उत्तम है।

चिकित्सा मात्रा पर निर्भर करती है, इस लिये जाठराग्नि; ऋतु, सात्म्य, शरीर, प्रमाण, मृदु–क्रूर–आदि कोष्ठ, वय, बल, प्रकृति, औषध, दोषों की वृद्धि तथा क्षय इन बातों का विचार कर के मात्रा का निश्चय करना चाहिये। मात्रा की गड़बड़ी से औषध रोगी के प्राण ले लेते हैं [**'विपर्ययेण मात्राया निरुणद्ध्यस्य जीवितम्'**—काश्यप]। इसी से अत्रिपुत्र ने कहा है।

नाल्पं हन्त्यौषधं व्याधिं यथाऽऽपोऽल्पा महानलम्।
दोषवच्चातिमात्रं स्यात्सस्यस्यात्युदकं यथा॥
सम्प्रधार्य बलं तस्मादामयस्यौषधस्य च।
नैवातिबहुनात्यल्पं भैषज्यमवचारयेत्॥ (च० चि० अ० ३०)।

थोड़ा पानी बड़ी अग्नि को नहीं बुझा सकता; अधिक दिया पानी सस्य (धान्य) को विगाड़ देता है। इस लिये रोग और औषध के बल का निश्चय करके मात्रा में ही औषध देनी चाहिये।

यह मात्रा आयुर्वेद में सबके लिये निश्चित नहीं। इस मात्रा को निश्चित करने के आधार निम्न हैं—

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निबलं वयः।
व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत्।

दोष, अग्नि, बल, वय, रोग, द्रव्य और कोष्ठ की विवेचना करके मात्रा का निश्चय करना चाहिये। इनमें **दोष**—वायु, पित्त कफ की विवेचना करके मात्रा का निश्चय करना चाहिये। यथा-वातप्रधान व्यक्तिमें वात रोग होने पर औषध की मात्रा इसी व्यक्ति को कफ व्याधि होने की अपेक्षा से अधिक देनी चाहिये। पित्त प्रकृति को पित्त रोग में अधिक, श्लेष्मा रोग में कम देनी चाहिये।

अग्नि—मन्दाग्नि व्यक्ति में औषध की मात्रा तीक्ष्णाग्नि की अपेक्षा कम होनी चाहिये। विशेषतः घृतों की मात्रा मन्दाग्नि पुरुषों को थोड़ी देनी चाहिये। इसी से चरक में कहा है—

दीप्ताग्नयः खराहारा कर्मनित्या महोदराः।
ये प्रति तांश्चिन्त्यं नावश्यं गुरुलाघवम्'॥

बल—अतिबलवान् औषध अल्प बल वाले रोगी को देने से हानि होती है; इसी कारण से हीनबल रोगी को मृदु–कोमल एवं उत्तरोत्तर गुरु–विभ्रम पैदा न करने वाले उपायों एवं ओषधियों से चिकित्सा करते हैं, विशेष करके स्त्रियों की

[सहसा ह्यतिबलमौषधमपरीक्षकप्रयुक्तमल्पबलमातुरमभिघातयेत्—आज कल स्ट्रैप्टोमायसीन, सल्फाग्रुप आदि औषधियों के जो दुष्परिणाम देखने में आते हैं—उसका यही कारण है]। स्त्रियों में-बालकों में विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

वय—पूर्ण वयस्क की मात्रा की अपेक्षा बच्चे की मात्रा कम होती है*।

व्याधि—सिफलिस में पारद की बड़ी मात्रा; श्वास (इओसिनफीलिया जन्य) में आरसैनिक [संखिया] की बड़ी मात्रा सह्य होती है। स्वप्नदोषमें-हिस्टीरिया में, चेचक में मृदुवीर्य तथा थोड़ी मात्रा में औषध देनी चाहिये।

द्रव्य—घटक द्रव्यों की मात्रा का ध्यान रखना चाहिये; ताम्र-सर्पविष, जयपाल आदि से बनी औषध कम मात्रा में देनी चाहिये।

कोष्ठ—मृदु कोष्ठ-जिसको दूध से भी विरेचन हो जाता है, उसे विरेचक औषध थोड़ी देनी चाहिये, और क्रूर कोष्ठ जिसे तीक्ष्ण विरेचक औषध से भी विरेचन नहीं होता, उसको सामान्य मात्रा से अधिक मात्रा देनी चाहिये।

इसलिये मात्रा के निश्चय में पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिये; कुछ औषधियों के देने से-विशेषतः पेटण्ट या एन्टीबौयटीक्स के कारण-एलर्जी तथा दूसरी शिकायतें जो देखने में आती हैं; वे सब मुख्यतः इसी सूत्र पर ध्यान न देने का दुष्परिणाम हैं; ऐसा कहने में कोई बड़ा अपराध नहीं।

उत्तम औषध—जो कि थोड़ी मात्रा में हो, जल्दी काम करे, बहुत अधिक मात्रा में दोष का नाश करे, सुखकारी, जल्दी पचने वाली, रोग नाशक होती है; किसी प्रकार का विकार या ग्लानि न करे-वह उत्तम है।

---

* न ह्यतिबलान्याग्नेयसौम्यवायवीयान्यौषधान्यग्निक्षारशस्त्रकर्माणि वा शक्यन्तेऽल्पबलैः सोढम्। अविषह्यातितीक्ष्णवेगत्वाद्धि सद्यः प्राणहराणि स्युः॥ (चरक)—

क्लोरोफार्म के सूंघाने से जो मृत्यु होती है वह तीक्ष्ण वायवीय औषधि का ही दुष्परिणाम है, शस्त्र कर्म करते करते जो बीच में प्राणनाश होता है, वह अत्रिपुत्र के अनुसार शस्त्रकर्म का अल्पबल वाले व्यक्ति को सहन नहीं होना है। इसीलिये सुश्रुत में जलौका उपचार रक्तमोक्षण के लिये कोमल एवं नाजुक प्रकृतियों के लिये उत्तम कहा है—

'नृपाढ्यबालस्थविरभीरुदुर्बलनारीसुकुमाराणां अनुग्रहार्थं परमसुकुमारोऽयं शोणितावसेचनोपायोऽभिहितो जलौकसः॥

अल्पमात्रं महावेगं बहुदोषहरं सुखम् ।
लघुपाकं सुखास्वादं प्रीणनं व्याधिनाशनम् ॥
अविकाराविपन्नं च नातिग्लानिकरं च तत् ।
गन्धवर्णरसोपेतं विद्यान्मात्रावदौषधम् ॥

३—योगों से चिकित्सा करना

यक्ष्मा का नाम सुन कर यक्ष्मारिलौह देदेना, श्वास सुनते ही श्वास कुठा देदेना; ज्वर सुनते ही ज्वरसंहार या मृत्युंजय देदेना समुचित नहीं; इसीसे कहा है-

योगैरेव चिकित्सन् हि देशाद्यज्ञोऽपराध्यति ।
वयो बलशरीरादि भेदा हि बहवो मताः ॥ (चरक)

देश आदि को न समझने वाला चिकित्सक केवल योगों से ही चिकित्सा करने पर भूल कर बैठता है; क्योंकि वय-बल-शरीर आदि के बहुत से भेद हैं, उन सब का विचार करना जरूरी है। इस विषय में आयुर्वेद सोपान के कर्त्ता श्री राम चन्द्र विनोद जी ने जो लिखा है वह ध्यान देने योग्य है; यथा—

शास्त्र में फलश्रुति-गुण वर्णन काल में प्रायः सब रोगों का नाम देखने में आ जाता है। दूसरी ओर सदा काम में आने वाली और अतिशय उपयोगी ओषधि के लिये कुछ भी फलश्रुति नहीं। उदाहरण के लिये-**'श्रृंगाराभ्र'** कासरोग की एक सामान्य औषध है; परन्तु इसके विषय में लिखा है कि—

'बल्यो वृष्यश्च भोग्यस्तरुणतरकरः सर्वरोगे प्रशस्तः ।
श्रृङ्गाराभ्रेण कामी युवतिजनशतभोगयोगादतुष्टः ॥'

यह ओषध बलकारक; शुक्रजनक; भोगयोग्य, तरुण करने वाली; समस्त रोगों में प्रशस्त; कामुक व्यक्ति इसके सेवन के पीछे एक सौ स्त्रियों में रमण कर सकता है। परन्तु व्यवहार में इसमें इतने गुण नहीं मिलते।

इसके विपरीत **'चन्दनादि लौह'** नाना प्रकार के विषम ज्वरों में; पित्ताश्रित ज्वर में, मेहज्वर में और जीर्ण ज्वर मे उत्तम लाभ करता है। परन्तु इसके विषय में इतना ही लिखा है कि—

'निहन्ति विविधान् विषमज्वरान्'

विविध प्रकार के विषम ज्वरों को नष्ट करता है। इसी प्रकार **अग्नितुण्डी वटी**-अग्निमान्द्य, अजीर्ण, ग्रहणी, शूल, अम्लपित्त में श्रेष्ठ औषध है; परन्तु

इसके विषय में केवल इतना ही लिखा है कि अग्निमान्द्य रोग की शान्ति के लिये इसे खाये [मरिचाभां वटीं खादेदग्निमान्द्यप्रशान्तये] ।

इस प्रकार से प्रत्येक रोग की जो ओषधियां लिखी हैं, उनमें से कौन औषध रोग की अवस्था में प्रयोग की जाती है; उसका फलाफल क्या है; यह सब वृद्ध वैद्यों के उपदेश से तथा प्रत्यक्ष देखने से ही प्राप्त होता है; शास्त्र पढ़ने से नहीं ।

साथ ही **योग के घटकों पर पूरा ध्यान** देना जरूरी है। इस विषय में भी उपरोक्त पुस्तक में कुछ आवश्यक सूचनाऐं दी हैं यथा—

आयुर्वेद में अनेक ओषधियों के घटक-उपकरणों में बहुत सादृश्य है (यथा लीलाविलास और पंचामृत पर्पटी में)। ओषधिका नाम या अधिकार भिन्न हो जाने से कुछ विलक्षणता नहीं आ जाती। इसलिये प्रत्येक घटक के विषय में बारीकी से विचार करना चाहिये। पञ्चामृतपर्पटी और लीलाविलास के घटक एक होने पर भी कल्पना (बनावट) से अन्तर आ जाता है। इसके लिये घटक के साथ निर्माण विधि का भी विचार आवश्यक है।

साथ ही एक-दो घटक का अन्तर होने पर अथवा एक के समान गुण वाला दूसरा द्रव्य योग में होने पर केवल नाम भेद होने से उसके गुणों में विशेष अन्तर नहीं आ जाता। उदाहरण के लिये वाजीकरणोक्त **मन्मथाभ्ररस** के उपकरण यक्ष्माधिकारोक्त **बृहच्चन्द्रामृतरस** के समान हैं; परन्तु मन्मथाभ्ररस को कोई भी क्षय रोग में नहीं बरतता और बृहच्चन्द्रामृत रस को वाजीकरण के लिये किसी को भी काम में लाते नहीं देखा।

यक्ष्माधिकारोक्त **यक्ष्मारि लौह** के उपकरण स्वर्णमाक्षिक, शिलाजतु, लौह, विडंग, हरीतकी हैं और **पूर्णचन्द्र रस** के उपकरण रससिन्दूर, अभ्र, स्वर्ण माक्षिक; शिलाजतु, लौह और विडंग हैं। इसलिये यदि यक्ष्मारि लौह के साथ रससिन्दूर और अभ्रक को मिला दिया जाये तो बिना कष्ट के यही योग धातु दौर्बल्य में भी बरता जा सके गा। **पूर्ण चन्द्ररस** यक्ष्मा रोग में बरता जा सकता है; क्योंकि अभ्रकभस्म फेफड़ों के लिये उत्तम है; रससिन्दूर सर्व रोगहर है। इसी प्रकार जीर्ण ज्वर में कहा **सर्वतोभद्र रस** और कासाधिकारोक्त **सार्वभौमरस**; शूलाधिकारोक्त **शूलवज्रिणी** ग्रहणीरोगाधिकारोक्त **नृपवल्लभ एवं कासकुठार** और ज्वरोक्त **मृत्युञ्जय** के उपकरण परस्पर प्रायः समान हैं। वातरक्त में कहा

गया **गुडूच्यादि लौह** एवं मेदरोग का **विडंगादि लौह** तथा पाण्डुरोग का **नवायस लौह** इन तीनों के उपकरण प्रायः एक समान हैं।

इसीलिये ऋषि अत्रिपुत्र ने कहा है कि—

'भिषग् बुद्धिमान् परिसंख्यातमपि यद् यद् द्रव्यमयौगिकं मन्येत तत्तदपकर्षयेत्। यद्यच्चानुक्तमपि यौगिकं वा मन्येत तत्तद् विदध्यात्। वर्गमपि वर्गेणोपसंसृजेदेकमेकेनानेकेना वा युक्तिं प्रमाणीकृत्य।

बुद्धिमान् वैद्य वर्गों में परिगणित जिस जिस द्रव्य को असंगत समझे, उसे उसे निकाल दें, और न कहे गये भी जिस जिस द्रव्य को उपयुक्त समझे उसे उसे ले लेवे। युक्ति के आधार पर ही एक वर्ग को अन्य किसी वर्ग से मिला दे या अनेक वर्गों से मिला देना चाहिये।'

इसी से भावमिश्र ने कहा कि बुद्धिमान् व्यक्ति को केवल शास्त्र के साथ ही चिपटा नहीं रहना चाहिये; चिकित्सा करते समय स्वयं भी इस विषय में बुद्धि लड़ानी चाहिये। * ऋषि अत्रिपुत्र ने भी इसी पर जोर दिया है कि—

'तस्माद् बुद्धिमतामूहापोहविसर्गः मन्दबुद्धेस्तु यथोक्तानुगमनमेव श्रेयः'

बुद्धिमान् व्यक्ति ऊहापोह-तर्कवितर्क कर सकता है, परन्तु मन्द बुद्धि वाले के लिये तो कहे हुए मार्ग पर ही चलना श्रेयस्कार है। काश्यपसंहिता में इसी बात को जोर देकर कहा कि आर्ष प्रयोगों में कमी-अधिकता विना सोचे समझे नहीं करनी चाहिये। दोष औषध के बल-अबल को देखकर उनमें परिवर्त्तन कर सकते हैं; यथा—

ये यथा च समुद्दिष्टा योगाः स्वे स्वे चिकित्सिते।
ते तथैव प्रयोक्तव्या न तेष्वस्ति विचारणा॥
को हि नाम प्रणीतानां द्रव्याणां तत्वदर्शिभिः।
नानाविधानमेकत्वे तत्कर्म ज्ञातुमर्हति॥
किञ्चिदन्यरसं द्रव्यं गुणतः किञ्चिदन्यथा।
वीर्यतश्चान्यथा किञ्चिद् विद्यादत्र विपाकतः॥
अथ चैकत्वमागत्य प्रयोगे न विरुध्यते।

---

* न चैकान्तेन निर्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः।
स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कनीयं चिकित्सिता॥ (भावमिश्रः)

उत्पद्यते यथार्थञ्च समवायगुणान्तरम् ॥
पृथक् पृथक् प्रसिद्धेरपि गन्धे गन्धान्तरे यथा।
गन्धाङ्गानां मनोह्लादि प्रत्यक्षं सामवायिकम् ॥
तस्मादार्षप्रयोगेषु प्रक्षेपापचयं प्रति।
न प्रमाद्येदविज्ञाय दोषौषधबलाबलम् ॥ (काश्यप खि. ३.)

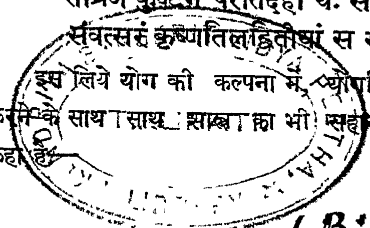
रोगों की अपनी अपनी चिकित्सा में जो योग जिस तरह लिखे गये हैं, उनका उसी तरह प्रयोग करना चाहिये; उनमें विचार नहीं करना चाहिये। कौन साधारण व्यक्ति तत्वदर्शियों द्वारा प्रणीत योगों में जिनमें विभिन्न प्रकार के द्रव्यों को एक में मिलाया गया है, उस रहस्य को (अवयव प्रभाव) समझ सकता है। कुछ द्रव्य विभिन्न रस वाले हैं, कुछ वीर्य में भिन्न हैं, कुछ विपाक में विशेषता रखते हैं। किन्तु एक प्रयोग में पड़कर कोई भी विरुद्ध नहीं रहता (जैसे—यूष में खट्टा-मीठा-नमक मिलकर एक ही होकर कार्य सिद्ध करते हैं)। इनके मिलने से आवश्यक गुणान्तर हो जाता है। जिस तरह अलग अलग खुशबू में प्रसिद्ध गन्ध द्रव्यों के मिला देने से मन को प्रसन्न करने वाली एक नई गन्ध प्रत्यक्ष देखने में आती है। इसलिये आर्ष प्रयोगों में दोष और औषधियों के बलाबल को विना सोचे-समझे उनमें घटाने-बढ़ाने की भूल नहीं करनी चाहिये।

इस कारण से योग के घटकों को दोष के साथ समझ कर योग का निर्णय या योग का निर्माण करना चाहिये। इसमें औषध का परिचय-गुण-रस-वीर्य-विपाक-प्रभाव से होना आवश्यक है, विशेषतः काष्ठौषधियों के विषय में। उदाहरण के लिये तिल का सेवन कुष्ट रोग का कारण है—

'नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लनिषेवणात्।
माषमूलकपिष्टान्नगुडक्षीरतिलाशिनाम् ॥ (चरक. चि. अ ७।५)

परन्तु यही तिल सोमराजी के साथ मिलकर कुष्टनाशक है, यथा—

तीव्रेण कुष्टेन परीतदेहो यः सोमराजीं नियमेन खादेत्।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां स सोमराजीं वपुषाऽतिशेते ॥ अष्टांगहृदय



इस लिये योग की कल्पना में, औषधनिर्णय में अपनी बुद्धि का पूरा उपयोग करने के साथ साथ शास्त्र का भी सहारा लेना चाहिये, इसी से अत्रिपुत्र ने कहा है—

शास्त्रं ज्योतिःप्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः ।
ताभ्यां भिषक्सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥

शास्त्र प्रकाश करने वाली बाह्यज्योति है; बुद्धि देखने वाली आंख है; अपनी बुद्धि और शास्त्र का ठीक योग करके चिकित्सा करने वाला वैद्य दोषी नहीं होता ।

४—दोष

प्रकृति में जो स्थिति सत्त्व, रज, तम की है, वही स्थिति शरीर में वात-पित्त-कफ की है । ये तीनों धातु शरीर का धारण करते हैं और स्वयं दूषित होने पर शरीर को भी दोषयुक्त करते हैं । इन दोषों में विकार आहार, निद्रा, स्नान, खान पान, मैथुनादि सम्बन्धि अनियमों से तथा शीत-ग्रीष्मादि ऋतुवों के विपर्य्यय से होता है । प्रथम कारण मनुष्य के अधीन हैं, और दूसरा कारण दैवाधीन-प्रकृति के हाथ में है । दूसरे कारण से भी मनुष्य अपनी रक्षा कर सकता है ।* इस लिये इन दोषों को विकृत होने देना या न होने देना यह एक प्रकार से मनुष्य के हाथ की वस्तु ही है ।

रोग के कारण का त्याग करना चिकित्सा का प्रथम सूत्र है; कुपित-वात-पित्त और कफ ही सब रोगों के कारण हैं; इस लिये इन तीनों के कुपित होने का कारण सबसे प्रथम जानना चाहिये । इस विषय में तीन श्लोक बहुत प्रसिद्ध हैं, यथा—

वायु के प्रकोपक कारण—

व्यायामात्-अपतर्पणात्-प्रपतनात्-भंगात्-क्षयात्-जागरात्,
वेगानाञ्च विधारणात्-अतिशुचः-शैत्यात्-अतित्रासतः ।
रूक्ष-क्षोभ-कषाय-तिक्त-कटुकैरेभिः प्रकोपं व्रजेत्,
वायुः-वारिधरागमे-परिणते चान्ने ऽपराह्णेऽपि च ॥

---

* ऋतुवों के विकार से बचने के उपाय—

हैमन्तिकं दोषचयं वसन्ते प्रवाहयन् ग्रैष्मिकमभ्रकाले ।
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यग् प्राप्नोति रोगान्ऋतुजान्न जातु ॥

प्रथम कारण से बचने का उपाय—

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः । (चरक)

व्यायाम से, उपवास से, गिरने से (आघात लगने से), टूट जाने से, रक्तादि धातुओं के क्षय से, रात्रि में जागरण करने से, मल-मूत्रादि उपस्थित वेगों को रोकने से, बहुत शुद्धता रखने से-जलके अतिव्यवहार से, बहुत डर जाने से, रूक्ष-कषाय-तिक्त-कटु रस के अति सेवन से; क्षोभ-शारीरिक या मानसिक बेचैनी-उद्वेग से; वायु प्रकुपित होती है; बादलों के आने पर (वर्षा ऋतु में या अन्य समय में); अन्न का पाचन हो चुकने पर तथा अपराह्ण में वायु का प्रकोप होता है। **[यहां पर इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि अपराह्ण में जो औषध दी जाये वह वायुनाशक हो या उसका अनुपान ऐसा हो जो वायु का शमन करे-एक ही औषध को एक ही अनुपान से-प्रातः-मध्याह्न और सायंकाल में देना आयुर्वेद के विचार से बुद्धिमानी नहीं; क्योंकि तीनों समय में दोष भिन्नता शास्त्र कहता है]।**

पित्त प्रकोपक कारण—

कट्वम्लोष्णविदाहि तीक्ष्ण-लवण क्रोधोपवासातपैः,
स्त्रीसम्पर्कतिलातसीदधिसुराशुक्तारनालादिभिः।
भुक्ते जीर्यति भोजने च शरदि ग्रीष्मे सति प्राणिनां,
मध्याह्ने च तथाऽर्धरात्रिसमये पित्तं प्रकोपं व्रजेत् ॥

कटु (लाल मिर्च आदि न कि नीम), खट्टा, गरम, विदाही (जलन पैदा करने वाला-यथा-आसव), तीक्ष्ण (राई आदि), नमक इनके खाने से; क्रोध-उपवास और धूप से; स्त्री सेवन से [इसी से कइयों को सम्भोग के पीछे तीव्र प्यास तुरन्त लगती है], तिल-अलसी-दधि-सुरा शुक्त, और कांजी आदि के पीने से, भोजन के पचने के समय, शरद् ऋतु में पित्त का प्रकोप होता है; मध्याह्न और आधी रात के समय भी पित्त प्रकुपित होता है।

कफ के प्रकोप के कारण—

गुरु-मधुर-रसातिस्निग्धदुग्धेक्षुभक्ष्य
द्रव-दधि-दिननिद्रापूप-सर्पिःप्रपूरैः।
तुहिनपतनकाले श्लेष्मणः संप्रकोपः
प्रभवति दिवसादौ भुक्तमात्रे वसन्ते ॥

गुरु (भारी) द्रव्य, मधुर द्रव्य-अतिस्निग्ध वस्तु; दूध; गुड़ या गुड़ से बनी खाद्य वस्तु; द्रव, दधि, दिन में सोना, मालपूये-घी से भरे पदार्थ (गुजरात की

पूरनपोली, कचौरी आदि) के सेवन से, ओस के गिरने के समय-शीतकाल में कफ का प्रकोप होता है; और दिन के आरम्भ में; भोजन करने के तुरन्त पीछे तथा वसन्तकाल में भी कफ का प्रकोप होता है।

ऊपर के कारणों में स्थूलरूप से सब कारणों का समावेश हो गया है, फिर भी इनका परस्पर भेद, अंशांशविकल्पना जानना बहुत कठिन है। परन्तु एक बात स्पष्ट है कि दिन के प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में दोषों के प्रकोप के समय की भिन्नता है। इस भिन्नता से औषध के अन्दर भी कुछ अन्तर करना ठीक है, जिससे औषध दोष के अनुकूल हो सके। इसी से अत्रिपुत्र ने कहा है—

वृद्धिस्थानक्षयावस्थां दोषाणामुपलक्षयेत् ।
सुसूक्ष्मामपि च प्राज्ञो देहाग्निबलचेतसाम् ॥
व्याध्यवस्थाविशेषान् हि ज्ञात्वा ज्ञात्वा विचक्षणः ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तच्छ्रेयः प्रपद्यते ॥

अतिसूक्ष्म होते हुए भी बुद्धिमान को दोष, शरीर, अग्नि, बल और चित्त की वृद्धि समता व क्षय की अवस्था को जानना चाहिये। क्योंकि चतुर वैद्य व्याधि की अवस्था विशेषताओं को जान जानकर उस उस अवस्था में तदनुकूल श्रेयस्कर चिकित्सा को समझ लेता है।

इस लिये आयुर्वेद में औषध के काल तथा अनुपान एवं औषध की बहुत विवेचना की है। विशेष करके काष्ठौषधियों के विषयों में यह विवेचना बहुत करनी होती है। रसौषधियों के विषयों में इतनी सूक्ष्म विवेचना की जरूरत नहीं पड़ती उनमें तो बहुत हुआ अनुपान में परिवर्त्तन करने से काम चल जाता है। रसौषध योगवाही होने से सब अवस्थाओं में प्रयुक्त की जा सकती हैं [प्राचीन काल में रसौषधियों के लिये जो यह कहा गया है कि थोड़ी मात्रा में उपयोगी होने से; अरुचि आदि लक्षण उत्पन्न न करने से, जल्दी आरोग्य के कारण-रसौषधियां-काष्ठौषधियों से अधिक श्रेष्ठ हैं, यही बात आज के इंजेक्शनों के लिये भी घटती है]। इस लिये रसौषधियों के प्रयोग में दोषों की बारीक विवेचना प्रायः नहीं की जाती।

सामान्यतः रसौषधि के साथ उसी रोग या दोष को शमन करने वाला अनुपान दिया जाता है; जिससे औषध अनुपान द्वारा शरीर में शीघ्र फैल जाये। काष्ठौषधियों के चुनाव में यदि चिकित्सक की बुद्धि की परीक्षा होती है तो रसौषधियों

के विषय में अनुपान चुनने में उसकी बुद्धि की जांच हो जाती है। एक ही मकरध्वज-अनुपान भेद से सब रोगों में व्यवहार किया जाता है (देखिये पुस्तक में रस सिन्दूर-मकरध्वज का अनुपान)। इस लिये दोष को समझ कर उसी दृष्टि से काष्ठौषध और अनुपान चुनना चाहिये।

५—अनुपान और सहपान

अनुपान का अर्थ पीछे का पेय और सहपान का अर्थ है साथ का पेय; उदाहरण के लिये बृहत् पूर्णचन्द्र रस को मधु से चटाकर पीछे से शर्करा मिश्रित दूध पीने को देते हैं, इसमें मधु सहपान है और दूध अनुपान है; इसी प्रकार वात व्याधि रोगी में-बृहत् वातचिन्तामणि को मधु के साथ चटाकर पीछे से महारास्नादि क्वाथ देते हैं।

अनुपान के कारण औषध शरीर में जल्दी लय हो जाती है [जिस प्रकार कि तैल का बिन्दु पानी पर फैल जाता है, उसी प्रकार औषध अनुपान से शरीर में फैल जाती है]। वास्तव में रसौषध को अनुपान के साथ **छोटी खरल में** घिसकर देना चाहिये। बिना गोली को बारीक किये और अनुपान के साथ मिश्रित न करके देने से औषध का पूरा लाभ नहीं होता, क्योंकि औषध की मात्रा बहुत थोड़ी रहती है। इसलिये रसौषध के विषय में इस विषय पर ध्यान देना जरूरी है।

आमवात आदि रोगों में क्वाथ में एरण्ड तैल का अनुपान बरता जाता है, यह अनुपान क्वाथ में ही मिला लेना चाहिये। इससे रोगी को पीने में सुगमता रहती है।

अनुपान का चुनाव—अनुपान का चुनाव दोष और रोग को देख कर ही किया जाता है, कई अवस्थाओं में (यथा-वात, पित्त और कफ के मिश्रित होने पर) मधु, घृत और चीनी तीनों को मिलाकर देना पड़ता है, [यथा-सितोपलादि चूर्ण को मधु और घी से चाटने को कहा है-लेहयेमन्धुसर्पिषा—चरक; इसमें घी मधु-शर्करा तीनों का मिश्रण है]। उदाहरण के लिये स्त्रियों के प्रदर में चन्द्रप्रभा-वटी का उपयोग यदि इन तीनों के साथ किया जाये तो अच्छा लाभ होता है **(श्री कविराज हरिरंजन मजूमदार जी** की कृपा से अनुभव में बरता है)। इसी प्रकार रक्तरोधक औषध-अयापान या कुक्कुरमुत्ते के रस के साथ बहुत गुण करती है।

शास्त्र में भस्म बनाने की जो अनेक विधियां दी हैं, उनका आधार **मेरी दृष्टि** से यही एक है कि भिन्न भिन्न रोग में भिन्न भिन्न वनस्पतियोग से बनी भस्म

उपयोगी होती है, राजयक्ष्मा रोग में—कचनार से बनी स्वर्ण भस्म जितनी लाभदायक है, उतनी उष्ण गुणवाले उष्ण वीर्य से बने द्रव्य की उपयोगी नहीं होगी। यही बात अभ्रक भस्म के साथ है; अर्क के दूध से बनी अभ्रक भस्म श्लेष्मा को निकालने-उसका संघात तोड़ने के लिये उत्तम है, गुलाब जल या चन्दनादि क्काथ अथवा अर्क से बनी प्रवाल पिष्टी, प्रवाल भस्म की अपेक्षा अधिक शीत है, यही बात मुक्तापिष्टी और मुक्ता भस्म में है। इसलिये अनुपान के चुनने में ऐसा ही अनुपान चुनना चाहिये जो कि औषध के गुण को बढ़ाये और दोष का नाश या शमन करे।

बस, इसी दृष्टि से समय का विचार प्रात, मध्याह्न और सायंकाल का विचार करके अनुपान में परिवर्त्तन कर लेना चाहिये, भले ही औषध एक ही रहे। उदाहरण के लिये सितोपलादि को प्रातः मधु से दीजिये और मध्याह्न या अपराह्न में घी और चीनी से दीजिये, कफ अधिक हो तो इसमें मधु भी मिला दीजिये। इस विचार से आयुर्वेद में औषधयोजना करने की परिपाटी है, आंग्ल चिकित्सा के आधार पर औषधि को दिन में तीन बार या चार बार देना—बिना विचारे केवल परम्परा दृष्टि से **भारतीय प्रथा के अनुकूल नहीं।**

साथ ही, होम्योपैथिक चिकित्सा की भांति रोगी को पथ्य का ज्ञान न कराना दूसरी भूल है; भारतीय चिकित्सा में पथ्य-अपथ्य का बहुत स्थान है, यहां तो प्रचलित है कि—

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधिनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधिनिषेवणैः॥

रोगी यदि पथ्य पालता है, तो औषधिसेवन की जरूरत नहीं—वह स्वयं अच्छा हो जायेगा और यदि रोगी पथ्य नहीं पालता तो भी औषधि सेवन करने की जरूरत नहीं; उसे कुछ लाभ नहीं होगा। इसलिये पथ्य विवेचना का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

आयुर्वेद में जो अनुपान चुने हैं प्रायः वे आहार द्रव्यों के रूप में हैं था-परवल का रस, आर्द्रक का रस, पान का रस, अनार का रस, बिल्व का चूर्ण, मधु, घृत, चीनी आदि हैं। साथ ही इन अनुपानों की दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक स्थान पर सुलभ हैं; इनको लाकर बरता जा सकता है; औषध-रसौषध

गोली रूप में देर तक रहने से जल्दी विगड़ती नहीं। एक ही रसौषध अनुपान भेद से बहुत से रोगों में काम दे देती है। इसलिये भारतीय चिकित्सा में अनुपान का बहुत बड़ा स्थान है [बच्चों के लिये विशेष करके यूनानी शर्बत, अर्क भी अच्छे अनुपान हैं, उनका भी योग्य रीति से युक्ति को प्रमाणित करके उपयोग करना चाहिये]।

६—नाड़ी-श्वास और तापमाप

नाड़ी—हाथ के मणिबन्ध में अंगुष्ठ के मूल में स्थित नाड़ी की परीक्षा की जाती है। इस नाड़ी का सम्बन्ध हृदय से है। हृदय के लिये अत्रिपुत्र ने कहा है कि—

षडङ्गमङ्गविज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थपञ्चकम्।
आत्मा च सगुणश्चेतश्चिन्त्यं च हृदि संश्रितम्॥
प्रतिष्ठार्थं हि भावानामेषां हृदयमिष्यते।
गोपानसीनामागारकर्णिकेवार्थचिन्तकैः।
तस्योपघातान्मूर्च्छायं भेदान्मरणमृच्छति।

दो हाथ, दो पैर, शिर और अन्तराधि (कोष्ठ) इन छैः अंगों का विज्ञान, पांचों इन्द्रियों के विषय, आत्मा, सुख-दुःखादि गुण; मन, मन का विषय ये सब हृदय में आश्रित हैं। जिस प्रकार घर में छत की अन्य लकड़ियों को सहारा देने के लिये बीच में एक बड़ा शहतीर होता है, उसी प्रकार इन सब भावों की रक्षा के लिये यह हृदय बनाया है। इस हृदय के उपघात से मूर्च्छा होती है और भेद से मृत्यु होती है।

आज की चिकित्सा में हृदय की परीक्षा का जो महत्त्व है, वही महत्त्व प्राचीन चिकित्सा में नाड़ी का था। जिस प्रकार आज हृदय की परीक्षा में स्टैथस्कोप साधन है, उसी प्रकार प्राचीन पद्धति में चिकित्सकका हाथ से नाड़ी को स्पर्श करना ही महत्त्वपूर्ण था। जिस प्रकार आज चिकित्सक के कान-श्रवणशक्तिध्वनिज्ञान के लिये शिक्षित होने आवश्यक हैं; उसी प्रकार भारतीय चिकित्सा में चिकित्सक का स्पर्शज्ञान से अभ्यस्त होना जरूरी है। ये दोनों ज्ञान (ध्वनिज्ञान और स्पर्श ज्ञान) अभ्यास से ही प्राप्त होते हैं, शास्त्र के पढ़ लेने से नहीं होते, जिस प्रकार कि अच्छे और खोटे रत्न की परीक्षा का ज्ञान अभ्यास से ही प्राप्त होता है, केवल पढ़ने से नहीं मिलता।

नाड़ी से दोषों का ज्ञान होता है, यह विषय बहुत अभ्यास साध्य है; जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति अभ्यास के कारण ही स्पर्श से रंगों का तथा अक्षरों का ज्ञान कर लेता है; उसी प्रकार नाड़ी ज्ञान से दोषों का ज्ञान नाडी परीक्षा से चिकित्सक करता है। परन्तु आज कल इसका एतद्विषयक ज्ञान लुप्त होता जाता है। फिर भी नाड़ी का महत्त्व उसकी गति, वेग-शक्ति के रूप में आज भी है *।

नाडी की गति-श्वास गति और तापपरिमाण इन तीनों का आपस में एक सम्बन्ध है, यह सम्बन्ध जब तक बना रहता है, तब तक शरीर यंत्र नियमित रहता है। उदाहरण के लिये-युवा व्यक्ति की नाड़ी एक मिनट में ७२ से ८० बार चलती है, इसकी श्वास गति १६ से १८ प्रति मिनट, और ताप परिमाण ९८.४ फा. रहता है। सामान्यतः एक अंश ताप परिमाण बढ़ने पर नाड़ी की गति दस अंश बढ़ती है। श्वास और नाड़ी की गति में सामान्यतः एक और चार का अनुपात रहता है। निमोनिया में यह अनुपात बदल जाता है: उसमें एक और तीन, एक और दो हो जाता है; एक और दो का अनुपात भयानक स्थिति का सूचक है। टायफाईड ज्वर में नाड़ी की गति तापपरिमाण की अपेक्षा धीमी रहती है; अर्थात् ताप परिमाण के बढ़ने के साथ में नाड़ी की गति उसी अनुपात से नहीं बढ़ती। मलेरिया ज्वर में नाड़ी की गति तापपरिमाण के बढ़ने के साथ साथ बढ़ती है।

इस प्रकार से नाड़ी की गति, श्वासगति और ताप परिमाण इन सबका सम्बन्ध महत्वपूर्ण है। बहुत कुछ रोग का निर्णय इसी सम्बन्ध की सहायता से होता है; विशेष करके सान्निपातिक अवस्था में।

शिशुवों में और वृद्धों में नाड़ी की गति युवा की अपेक्षा अधिक तेज रहती है। वृद्धों में ताप परिमाण कुछ उतर जाता है। सामान्यतः ताप परिमाण में प्रातः सायं अन्तर नहीं आता। परन्तु यदि यह अन्तर नियमित रूप से होता है, तो अवश्य कुछ कहीं विकार समझना चाहिये। यक्ष्मा रोग में तथा टायफाईड रोग में ताप परिमाण का उतार-चढ़ाव नियमित रूप में मिलता है। इसी प्रकार श्रम से या अन्य उद्वेग आदि से श्वासगति तथा नाड़ी गति बढ़ जाती है; परन्तु स्वस्थ अवस्था में कुछ देर विश्रान्ति लेने पर यह अपनी पूर्व स्थिति पर आ जाती है। परन्तु यक्ष्मारोग में रोगी के पांच मिनट श्रम करके और फिर तुरन्त पांच

* नाड़ी की परीक्षा विधि के लिये लेखक की **क्लीनिकलमेडीसन** पुस्तक देखें।

मिनिट आराम करने पर नाड़ी गति और श्वास गति अपनी पूर्व अवस्था पर नहीं आती। पूर्व अवस्था पर आने के लिये अधिक समय की अपेक्षा रहती है। इससे स्पष्ट है कि शरीर यंत्र में क्षय क्रिया अधिक तेजी से है।

मोटे-स्थूल व्यक्तियों में, स्त्रियों में गर्भावस्था के समय-नाड़ी की गति में स्वभाव से अन्तर मिलता है। स्थूल व्यक्तियों की नाड़ी मन्द रहती है और गर्भवती स्त्रियों की नाड़ी तीव्र रहती है। नाड़ी की गति के अतिरिक्त उसके वेग आघात का भी ध्यान रखना होता है। यह आघात नाड़ी की-धमनी की भित्तियों का परिचयात्मक होता है। धमनी की भित्ति के तन्तुवों में काठिन्य हो जाने से (जैसा कि वृद्धावस्था में प्रायः होता है) आघात एक झटके के रूप में लगता है, जिस प्रकार कि एक नली को बीच में से दबा दें तो उसमें चलता हुआ पानी झटके के साथ फिर बाहर होता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न गतियों की तुलना पशु-पक्षियों से करके उनको दोषों के अनुसार वर्गीकरण भारतीय-आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में किया गया है; जिससे कि पशु-पक्षियों की गति देखकर विद्यार्थी नाड़ी की गति को भी (उपमान प्रमाण से) समझ सके; गाय को दिखाने से जंगल में जाकर गवय को भी पहिचान लेता है [**गौरिव गवयः**]। जिस प्रकार ठोस लकड़ी की आवाज में, खोखले पात्र की आवाज में तथा पानी से भरे पात्र की आवाज में अन्तर होता है, उसी प्रकार धमनी की भित्तियों के ठोस होने से, या अधिक भर जानें से, अथवा कम भरने से उसकी गति और वेग में अन्तर आ जाता है। इसी से कहा है—'धमनी जीव साक्षिणी', धमनी जीवन की साक्षी है*।

७—प्रलेप

प्रलेप करने के कुछ नियम हैं, चन्दन का लेप शीतलता देता है; परन्तु यही लेप जब गाढ़ा कर दिया जाता है, तो शरीर से निकलने वाली गरमी को रोक देता है; इससे शरीर में शीतलता न होकर गरमी रहती है। सरदियों में साधु लोग शरीर पर राख या विभूति लगाकर शरीर के सब छेद बन्द कर देते हैं;

* जीव का अर्थ रक्त भी है (रक्तं जीव इति स्थितिः-सुश्रुत)। रक्त का मुख्य प्रक्षेप हृदय से है; इसलिये धमनी हृदय की साक्षी-उसकी द्योतक है; यह अर्थ भी संभव होता है। नाड़ी के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी करने के लिये लेखक की **क्लीनिकल मैडीसन** देखें।

इससे उनको सरदी नहीं लगती । इसलिये लेप का परिमाण और उसके लगाने के नियम आचार्यों ने दिये हैं, यथा—

लेप की मोटाई—पानी में गीली हुई भैंस की खाल के समान होनी चाहिये। इस लेप को रात्रि में नहीं लगाना चाहिये । क्योंकि रात्रि में लेप लगाने से शरीर की उष्णिमा बाहर न आकर अन्दर ही रुक जायेगी, इससे रोग बढ़ेगा । रात्रि में शीतलता रहती है, इसलिये शरीर की गरमी लेप के बिना ही बाहर आ जाती है। परन्तु जहां पर गरमी बढ़ाने की जरूरत हो (जैसा कि पक्वाभिमुख व्रण में) वहां पर रात में भी लेप बरता जाता है । प्रायः करके चेहरे पर सुन्दरता के लिये जो लेप किया जाता है (जैसा कि बर्मी औरतें करती हैं) उसे प्रातः ही दिन में लगाना चाहिये; रात्रि में नहीं [जो औरतें सुन्दरता के लिये चौक या सेलखडी का बना पाऊडर बरतती हैं—विशेषतः सायं काल में, वे अपनी सुन्दरता का स्वयं नाश करती हैं] ।

लेप सदा ताज़ा ही बना कर बरतना चाहिये, बासा (पर्युषित) लेप कभी भी काम में नहीं लाना चाहिये । एक लेप के ऊपर दूसरा लेप नहीं करना चाहिये। पहिले किये हुए लेप को उतार कर उसी लेप को पुनः नहीं बरतना चाहिये। क्योंकि शुष्क हो जाने से वहनि वीर्य होता है; इसलिये उसका लगाना व्यर्थ है ।

प्रलेप को बारीक पीसकर अंगूठे के प्रथम पर्व का १/३ वां भाग मोटा लगाना चाहिये । यह लेप न तो बहुत चिकना, न बहुत रूक्ष; न बहुत पतला और न बहुत घना होना चाहिये। लेप को सीधा त्वचा पर ही लगाना चाहिये, त्वचा पर वस्त्र रखकर उस पर लेप नहीं लगाना चाहिये । बहुत स्निग्ध और बहुत पतला लेप त्वचा पर जमता नहीं । स्नेह रहित लेप सूखने पर अधिक दबाता है; जिससे रोगी को दर्द होता है; बहुत पतला किया लेप–सूखने पर पपड़ी बनकर झड़ जाता है–गिर जाता है । इससे ओषधि का रस रोग तक नहीं पहुंचता । इसलिये लेप को ठीक प्रकार से ही करना चाहिये* ।

---

* श्लक्ष्णपिष्टो घनो लेपश्चन्दनस्यापि दाहकृत् ।
त्वग्गतस्योष्मणोरोधात् शीतकृच्चान्यथाऽगुरो ॥
त्रिभागाङ्गुष्ठमात्रः स्यात्प्रलेपः कल्कपेषितः ।
नातिस्निग्धो न रुक्षश्च न पिण्डो न द्रवः समः ॥

८—क्रियासंकर

एक औषध दी जाने पर उसकी क्रिया को देखना चाहिये, जरूरत पड़ने पर उसी क्रिया को बढ़ाने वाली औषध देनी चाहिये। उदाहरण के लिये-मैनफल को वमन के लिये देकर यदि वमन न होता दीखे-तो नमक को गरम पानी में घोलकर देना चाहिये। परन्तु यदि मैनफल की क्रिया अभी शरीर में समाप्त नहीं हुई-इसी बीच में रोगी की बेचैनी देखकर वमन निरोधक उपचार क्रिया या विरेचन दिया जाये तो यह क्रियासंकर है। परन्तु आत्यायिक-अवस्था में-जरूरत में जरूर इसको भी काम में लाया जाता है-उस समय तो **'प्रदीप्तागारवत्'**-जलते हुए घर की भांति शीघ्र उपचार करने का विधान है। सामान्यतः एक औषधका क्रिया काल-सात दिन तक देखना चाहिये, फिर औषध बदलनी चाहिये-बीच बीच में उसी क्रिया को बढ़ाने वाली दूसरी औषध दी जा सकती है। जब पहली औषधकी क्रिया शान्त हो जाये-तब दूसरी-नये गुण की औषध देनी चाहिये।



न च पर्युषितं लेपं कदाचिदवचारयेत्।
न च तेनैव लेपेन पुनर्जातु प्रलेपयेत्॥
अतिस्निग्धोऽतिद्रवश्च लेपो यद्यवचार्यते।
त्वचि न श्लिष्यते सम्यक् न दोषं शमयत्यपि॥
तन्वालिप्तं न कुर्वीत संशुष्को ह्यवपुटायते॥
न चौषधिरसो व्याधिं प्राप्नोत्यपि च शुष्यति।
तन्वालिप्तेन ये दोषास्तानेव जनयेद् भृशम्॥
संशुष्कः पीडयेद् व्याधिं निस्नेहो ह्यवचारितः॥

चूर्ण, वटी, अवलेह आदि के प्रयोगों को समझने के लिये लेखक की **'भैषज्य-कल्पना'** तथा भस्मों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये लेखक की **'भारतीय-रसपद्धति'** से सहायता लेनी चाहिये।

श्रेष्ठ औषध और श्रेष्ठ चिकित्सक

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यः यः प्रमोचयेत् ॥ (चरक)

The Right Medicine.

'That is the right medicine which make for health; he is the best Physician who relives people of disease.'

इन योगों में एक ही बात का ध्यान रक्खा है, कि जिससे रोगी को आरोग्य लाभ हो, वही योग यहां पर लिये गये हैं। क्योंकि उचित औषध-सिद्धयोग वही है कि जिससे आरोग्य मिलता है; और वही उत्तम चिकित्सक है जो कि रोगों से मनुष्य को मुक्ति देता है।

ज्वर

सामज्वर और निरामज्वर भेद से ज्वर दो प्रकार का है। सामज्वर में कषाय रस वाले कषाय नहीं दिये जाते।

सामज्वर की चिकित्सा

इसमें निम्न रसौषध प्रायः व्यवहृत होती हैं—

मृत्युञ्जय रस (लाल)—यह आमपाचक और पित्तनिःसारक है। टायफाईड ज्वर में इसको दिन में २ या ३ बार बरतना चाहिये। श्लेष्मज्वर या वातश्लेष्म ज्वर में अर्द्रकरस और मधु के साथ १ रत्ती मात्रा में देना चाहिये। कोष्टशुद्धि न होने पर आर्द्रकरस के साथ और कोष्टशुद्धि होने पर पान के रस के साथ देना चाहिये। वातज्वर और पित्तज्वर में केवल मधु के साथ देना चहिये।

मृत्युञ्जय (काला)—ज्वर के साथ अतिसार या पेट में आध्मान, गड़गड़ाहट होने पर मधु और सेहुण्ड के पत्ते के गरम रस के साथ देना चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

हिंगुलेश्वर—यह साम-निरामज्वर की औषध है; वातज्वर में उपयोगी है। निरामज्वर में मस्तु या मिश्री के शर्बत से इसे देना चाहिये। वातश्लेष्मज्वर (इन्फ्लुयञ्जा) में, सविरामज्वर-मलेरिया में—आर्द्रक रस और मधु से अथवा निर्गुण्डी के पत्ते के रस और मधु से देना उत्तम है। दिन में दो बार देना चाहिये। पित्तज्वर में वमन होने पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

जयावटी—वातज्वर में यह औषध मधु के साथ, कफज्वर में अर्द्रक रस और मधु के साथ देनी चाहिये। पित्तज्वर में दाह प्रबल होने पर करेले के पत्तों का रस और मधु अथवा पित्तपापड़े का रस और मधु के साथ देनी चाहिये। वातश्लेष्मज्वर में आर्द्रक रस और मधु के साथ, वातपित्तज्वर में—चन्दन घिसकर उसके साथ देना उत्तम है। निरामज्वर, मध्यमज्वर, पुरातनज्वर में यह औषध उत्तम है। पित्तश्लेष्मज्वर, पित्तज्वर की निरामावस्था, वातपित्तज्वर में हरसिंगार के पत्तों का रस और मधु से इसको देना चाहिये। प्लीहा और यकृत बढ़ा हुआ होने पर पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ देना चाहिये। इस औषध को २१ बार बकरी के मूत्र की भावना देकर जीर्णज्वर में देना चाहिये। मात्रा एक रत्ती।

अग्निकुमाररस—आमदोष संशोधक, अग्निमान्ध निवारक, अजीर्ण दोष के कारण ज्वर होने से आध्मान, सम्पूर्ण शरीर में वेदना, वमन, अतिसार होने

पर विशेष उपकारी है। आमज्वर में-शुण्ठी चूर्ण और मधु; कफज्वर में आर्द्रकरस और मधु या निर्गण्डी के पत्तों का रस और मधु; सन्निपातज्वर के प्रारम्भ में पिप्पली चूर्ण और आर्द्रक रस के साथ देना चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

तरुणज्वरारि—ज्वर के पांचवें, छठें या सातवें दिन प्रातःकाल जल के साथ एक गोली (१ रत्ती की) देने से दिन में दो या तीन बार दस्त होकर ज्वर बन्द हो जाता है। वातज्वर में या वातपित्तज्वर में कोष्ठ में मलबद्धता रहने पर इसका व्यवहार होता है। ज्वर के साथ प्रलाप, दाह, तन्द्रा, गरमी प्रति दिन मलत्याग होने पर इसका व्यवहार नहीं करना चाहिये। यह औषध विरेचक है। मात्रा १ रत्ती।

ज्वरमुरारि—यह औषध अतिशय विरेचक है। इसको ज्वर के ५ वें या ७ वें दिन जल के साथ देनी चाहिये। वातज्वर या वातपित्तज्वर में कोष्ठ काठिन्य होने से इसको देते हैं। बालक, वृद्ध-गर्भिणी को नहीं देनी चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

नवज्वरेभाङ्कुश—कफज्वर या पित्तश्लेष्मज्वर तथा जिन सब ज्वरों में ज्वर के समय स्वेद नहीं आता, उन सब ज्वरों में यह औषध उपकारी है। औषधसेवन से पसीना होकर ज्वर उतर जाता है। स्वेद उतरने से ज्वर उतर जाये और फिर ज्वर आये तब इस गोली को पुनः देना चाहिये। दिन तथा रात्रि में १-१ या २-२ बार; रात्रि में १ या २ बार देना चाहिये। अनुपान आर्द्रक रस और मधु। मात्रा १ रत्ती।

महाज्वरांकुश—सामज्वर और निरामज्वर दोनों में यह औषध बरती जाती है। सम्पूर्ण शरीर में दर्द, शिर में भारीपन, अग्निमान्द्य और कास होने पर इसका उपयोग करना चाहिये। कफज्वर और वातकफज्वर में विशेष उपयोगी है। दिन में १ या दो बार, रात्रि में एक या दो बार देनी चाहिये। ज्वर के साथ वेदना, शिर में भारीपन होने पर निर्गुण्डी के पत्रों के रस और मधु से तथा मलबन्ध होने पर आर्द्रक रस और मधु से देना चाहिये। पुनरावर्त्तक मलेरियाज्वर में, वातपित्तज्वर में या प्लीहा-यकृत वाले ज्वर में जब शोथ हो जाए तब और अजीर्णयुक्त पुरातन ज्वर में इसका प्रयोग करना उत्तम है। मात्रा २ रत्ती।

पंचवक्त्र रस—वातज्वर में जब गात्रकम्प, सन्धियों में दर्द, पसीना आकर ज्वर उतरता हो, तब यह औषध उत्तम है। प्रतिदिन रात्रि में ज्वर होता हो तो उसमें यह औषध निर्गुण्डी के पत्तों के रस के साथ देनी चाहिये। जो लोग

नित्य प्रति अफीम का सेवन करते हैं, उनके लिये यह औषध उत्तम है। मलबन्ध होने पर दिन में दो या तीन बार और रात्रि में एक या दो बार आर्द्रकरस और मधु से देनी चाहिये। वातकफ ज्वर में अर्कमूलरस के साथ देनी चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

कफकेतु रस—श्लैष्मिक या वातश्लैष्मिक ज्वर में ज्वर का उतार चढ़ाव होने से दिन में दो या तीन बार और रात्रिमें दो या एक बार यह औषध देनी चाहिये। कफज्वर में जब निद्राधिक्य, स्तैमिता, अनिच्छा, मुख में दुर्गन्धि हो, तब इसको देना चाहिये। नाजुक प्रकृति, बालक तथा गर्भवती को इसे नहीं देना चाहिये। मम्पस (mumps) में, दन्तशूल, कर्णशूल, शिरःशूल तथा ग्रहणी रोग की प्रथमावस्था में, तरुण अतिसार में, वर्षाऋतु के अतिसार में यह औषध उत्तम है। अनुपान—पान का रस और मधु। मलबन्ध होने पर आर्द्रकरस और मधु से देनी चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

कस्तूरी भैरव—वातकफज्वर में पसीना, निद्राधिक्य, पार्श्ववेदना तथा कास की प्रबलता होने पर यह औषध देनी चाहिये। प्रबल पित्तकफज्वर और सन्निपातज्वर में यह औषध अधिक उपकारी है। बालक और वृद्ध व्यक्ति को आधी गोली देनी चाहिये। अनुपान आर्द्रक रस और मधु; मात्रा २ रत्ती।

अगर कस्तूरी—पित्तज्वर, पित्तश्लेष्मज्वर और वातश्लेष्मज्वर में यह औषध विशेष उपकारी है। सन्निपातज्वर में दाह और तन्द्रा होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। यक्ष्मा रोगी को तीव्रज्वर होने से रुद्राक्ष घिसकर मधु के साथ देना चाहिये। वातकफज्वर; सन्निपातज्वर तथा वातकफज्वर में पसीना, ज्वर की प्रबलता एवं निद्राधिक्य होने से आर्द्रकरस और मधु से इसको देना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

कस्तूरी भूषण—वातश्लेष्मज्वर और सन्निपातज्वर में श्लेष्मा की प्रधानता रहने से इसको आर्द्रकरस और मधु से देना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

ज्वर के उपद्रवों की चिकित्सा

हिंग्वाष्टक चूर्ण—अग्निमान्द्य, आध्मान तथा अग्निनिर्बल होने से जब भूख न लगती हो या स्वभाव से रोगी को आध्मान रहता हो, तब इस चूर्ण को गरम जल से देना चाहिये। मात्रा २ आना।

अग्निमुखचूर्ण—ज्वर में अग्निमान्द्य या आध्मान रहने से इसका व्यवहार करना चाहिये। इसके सेवन से मलशुद्धि हो जाती है। जिनको सदा अग्निमान्द्य रहता है उनके लिये यह औषध उत्तम है। ज्वर में प्लीहा और यकृत बढ़ जाने पर यह औषध विशेष लाभप्रद है। अनुपान—उष्ण जल ; मात्रा २ आना।

दारुषट्क प्रलेप और यवप्रलेप—आध्मान, तीव्र उदरशूल, आंत्रग्रन्थि (Masentric glands) और शोथ में तथा एपैन्डीसायटिस में शीघ्र लाभ करता है। अलसक और विलम्बिकारोग में ये लेप उत्तम हैं।

ज्वर में अतिसार होने पर

सिद्ध प्राणेश्वर रस—ज्वर में पित्त के प्रकोप के कारण पतला पानी जैसा मलस्रवित होने पर यह औषध मोथे का रस और मधु के साथ देनी चाहिये। यदि साथ में आध्मान भी हो तो जीराचूर्ण और मधु के साथ देनी चाहिये। मात्रा ५ रत्ती

सर्वांग सुन्दर या महागन्धक—ज्वर में पित्तप्रकोप से जब पतला मल आये, मुख से रक्त आये या मल में रक्त आये तब यह औषध अवस्थानुसार दिन में एक या दो अथवा तीन बार देनी चाहिये। स्तनपायी शिशु तथा प्रसूता के लिये ये उत्तम ओषधियां हैं। अनुपान-आमातिसार में भर्जित जीराचूर्ण और मधु अथवा दग्ध विल्व और ईक्षुगुड़, रक्तातिसार में—अनार के पत्तों का रस और गन्ने की चीनी। वयस्क मात्रा ३ रत्ती

प्राणेश्वर रस—ज्वर के साथ अति मात्रा में पतला मल आने पर जीरा चूर्ण और मधु अथवा मोथे का रस और मधु के साथ दिन में २ या ३ बार देना चाहिये। मात्रा २ रत्ती

ज्वर में वमन होने पर

पिप्पल्यादि लोह—ज्वरकाल में रोगी को वमन की प्रबलता होने पर या अन्यरूप में पित्त प्रकोप के कारण पित्तवमन, कृमिजन्य तीव्रवमन होने पर यह औषध उपयोगी है। अत्यधिक वमन के कारण हिक्का हो रही हो तो यह औषध उत्तम है। अनुपान-आम की गुठली के बीच की गिरी और कच्चादुग्ध। मात्रा ३ रत्ती

स्वर्णमत्स्यण्डी—कृमि के कारण यदि वमन हो तो यह उपयोगी है। अनुपान—आम की गुठली की गिरी और कच्चादुग्ध। मात्रा ३ रत्ती

चन्द्रकान्ति रस—ज्वर, ज्वरातिसार, अतिसार में वमनहोने से यह औषध

उत्तम है; बालक, वृद्ध के लिये यह विशेष लाभ प्रद है। **अनुपान**-आम की गुठली की गिरी और कच्चादुग्ध। मात्रा ४ रत्ती

ज्वर में प्रलाप होने पर

सिद्ध वटी—ज्वर में रोगी जब अवद्धवाक्य बोलता हो, उस समय आर्द्रक रस और मधु से प्रति दो घंटे के अन्तर से इसको देना चाहिये। मात्रा २ रत्ती

ज्वर में दाह होने पर

दाहमंजरी—ज्वर के समय पित्तप्रकोप के कारण असह्य दाह होने पर अथवा सन्निपातज्वर में अत्यधिक दाह होने पर यह औषध उत्तम है। अवस्था-विशेष में मलशुद्धि होने से ज्वर कम हो जाता है। (अतः) दाह अधिक होने पर विरेचन देकर यह औषध देनी चाहिये। **अनुपान**—दिन में दो या तीन बार करेले के पत्ते के रस और मधु के साथ दें। मात्रा २ रत्ती

दाहप्रलेप—पित्तप्रधान या वातपित्तज्वर में रोगी को प्रबल दाह होने पर यह प्रलेप लगाना चाहिये। यदि ज्वर का वेग बहुत अधिक हो तो इसका शरीर पर लेप करके समस्त शरीर पर बिन्दु बिन्दु छिड़क देना चाहिये।

ज्वर में पिपासा होने पर

षडंग पानीय—इससे प्यास और ज्वर दोनों नष्ट होते हैं। तृष्णा रोग तथा उपद्रव रूप तृष्णा में उत्तम है।

ज्वर में कास होने पर

कासकुठार—ज्वर में कास के कारण कष्ट होने के समय इस औषध को देना चाहिये। ज्वर में जब कफ तरलावस्था में या थोड़ा निकलता हो तब इस औषध को देना चाहिये। ज्वर, कास और शिरोवेदना होने से सन्निपातज्वर में भी यह लाभप्रद है। अनुपान—तुलसीपत्ररस और सैन्धव लवण अथवा वासकपत्र-स्वरस और मधु। मात्रा २ रत्ती

चन्द्रामृत रस—ज्वर में कास का वेग जब निरन्तर रहे, शुष्क कास हो, कफ निकलता हो, उस समय यह औषध देनी चाहिये। कफज्वर, वातकफज्वर या पित्तकफज्वर में इसका उपयोग करना चाहिये। अनुपान-पान का रस और मधु;

शुष्क कास होने पर वनतुलसीपत्ररस और सैन्धव लवण; पुरातन कास में वासक-पत्ररस और मधु। मात्रा २ रत्ती।

ज्वर में सर्वांगगत शूल होने पर

वातगजांकुश—ज्वर के समय जब सारे शरीर में दर्द हो, सन्धिस्थानों में तीव्र दर्द हो; तब यह औषध देनी चाहिये। वातिक, तथा वातश्लैष्मिक ज्वर में ज्वर के बढ़ने के साथ जब वेदना बढ़ती हो तब इसको देना चाहिये। अनुपान-मलबन्ध रहने पर आर्द्रकरस और सैन्धव लवण, कोष्ठशुद्ध होने पर निर्गुण्डीपत्ररस और मधु उत्तम है। मात्रा २ रत्ती।

रामबाण रस—यह पाचक, शोषक और स्तम्भक है। ज्वर के कारण अग्निमान्द्य हो या ज्वर के साथ जब अफारा, अम्लोद्गार, एक दो बार पतला मल-त्याग, पेट में गुड़-गुड़ाहट और शरीर में दर्द हो; तब इसको देना चाहिये। अनुपान-अम्लोद्गार, तथा पेट मे गड़गड़ाहट होने पर जीराचूर्ण और मधु; मलबन्ध रहने पर आर्द्रकरस और मधु; केवल अतिसार रहने पर मोथे का रस या जल और मधु। मात्रा ३ रत्ती।

रसोनादि क्वाथ—शीतक्रिया के कारण शरीर के किसी भाग में जब असह्य वेदना रहती हो; साथ में ज्वर भी हो, तब इसको देना चाहिये। यह आमवात की उत्तम औषध है। रोग की प्रबलता होने पर दिन में प्रातः सायं दो बार देना चाहिये।

वालूकास्वेद—वातकफज्वर में सर्वांग या सन्धिस्थान में दर्द रहे तो यह स्वेद देना चाहिये।

ज्वर में शिरःशूल होने पर

लक्ष्मीविलास—ज्वरकाल में शिर में अत्यन्त वेदना होने पर यह औषध अतिशय उपकारी है। अनुपान—मलशुद्धि न होने से आर्द्रकरस और मधु; मल शुद्धि होने पर पान के रस और मधु से; अन्य अवस्थाओं में निर्गुण्डी के पत्ररस और मधु। मात्र २ रत्ती।

स्वल्प लक्ष्मीविलास—ज्वर के समय या अन्य समय शिरोवेदना होने पर, वायुजनित शिरोवेदना में अथवा ज्वर से पूर्व शिरोवेदना तीव्र रहने पर इसे देना चाहिये। आँख, कान, नासिका, सन्धिगत, कफ जनित रोगों में उपकारी

है। अनुपान-मलशुद्धि होने से पान का रस और मधु, मलशुद्धि न होने पर आर्द्रक का रस और मधु । मात्रा ३ रत्ती

ज्वर में अरुचि होने पर

सुधानिधि रस—ज्वर रोगी को भोजन में अनिच्छा, अग्निमान्द्य तथा सम्पूर्ण शरीर में वेदना होने पर यह उपयोगी है। अनुपान-सोंठचूर्ण और ईक्षुगुड़। मात्रा ५ रत्ती।

दाडिमादि चूर्ण—ज्वर में अरुचि होने से अथवा अरुचि के साथ ज्वर होने पर एवं नासास्राव और कास होने पर इसे देना चाहिये; अनुपान-गुनगुना पानी। मात्रा चार आना।

आमलाद्य योग—ज्वर काल में अरुचि होने से मुख में इसको धारण करना चाहिये। गरम जल के साथ गण्डूष (कुल्ला) करना हितकर है।

सन्निपात ज्वर चिकित्सा

चन्द्रशेखर रस—सन्निपातज्वर में पित्त की या पित्त, कफ दोनों की अधिकता होने से रोगी को दाह, प्यास, स्थानविशेष में मण्डलाकार शोथ, और पसीना होने पर इस औषध को करेले के पत्ते के रस और मधु के साथ देना चाहिये। शिशु, बृद्ध और निर्बल प्रकृति को यह औषध नहीं देनी चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

त्रिदोष नीहार रस—सन्निपातज्वर में तन्द्रा, प्रलाप, ज्ञानहीनता, वक्षस्थल में पार्श्वशूल तथा उन्माद प्रतीति होने से आर्द्रकरस और मधु से इसे एक रत्ती मात्रा में देना चाहिये। वातश्लेष्म प्रधान ज्वर में विशेष उपयोगी है।

मृत्युंजय रस—सन्निपातज्वर में शरीर में जड़ता, निद्राधिक्य, आंखों का बन्द रहना, तन्द्रा, कास, शरीर में भारीपन, शिरोवेदना और अग्निमान्द्य होने पर आर्द्रक रस और मधु से यह औषधं देनी चाहिये। मस्तक और गले में वेदना होने से निर्गुण्डी के पत्ते के रस और मधु से इसको देना चाहिये। मात्रा ३ रत्ती।

श्री सन्निपात मृत्युञ्जय रस—सन्निपातज्वर में रोगी को मूर्च्छा, शरीर में जड़ता, निद्राधिक्य, पिपासा आदि उपद्रव होने पर इस औषध को भांगरे के पत्रस्वरस से देकर गरम कपड़ों से रोगी को ढांप देना चाहिये। रोगी को पसीना आने पर या बार बार मूर्च्छा आने से ज्वर उतरता हुआ जानना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

कफकेतु रस—सन्निपातज्वर में कफ की प्रबलता दीखने पर, शरीर में जड़ता, अव्यक्त शब्द का निकलना, निद्राधिक्य, शिरःशूल या छर्दि होने पर आर्द्रक रस और मधु से इस औषध को देना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

शम्भुनाथ रस—सन्निपात ज्वर में रोगी को अतीसार, भ्रम, मूर्च्छा, प्रलाप, उन्माद पार्श्ववेदना होने पर इस औषध को २ रत्ती मात्रा में देना चाहिये। औषध सेवन के पीछे रोगी को गरमी तथा निद्रा आती प्रतीत हो तो यह समझना चाहिये कि औषध कार्य कर रही है। अनुपान—आर्द्रकरस और मधु, अतीसार होने पर जीरा और मधु। ज्वरातिसार में अतीसार निवृत्त होने पर आध्मान हो तो यह औषध देनी चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

अघोरनृसिंह रस—सन्निपातज्वर में रोगी को अज्ञानता, समय समय पर मूर्च्छा, त्रिदोष के प्रकोप से प्राणनाश होने का भय होने पर इसकी एक गोली नारियल के जल के साथ देनी चाहिये। यह औषध बहुत तीव्र है, सामान्यरूप में प्रयोग नहीं करनी चाहिये। औषध देने के पीछे नाड़ी की गति तथा दूसरी बातों का ध्यान रखना चाहिये। रोगी को शीतल द्रव्य दही और मिश्री पर्याप्त देनी चाहिये।

सूचिकाभरण रस—सन्निपातज्वर में रोगी की चेतनता नष्ट हो जाने से, श्वासवायु में शीतलता, नाड़ी की गति विशृंखल या गति हीन होने पर, शरीर में ठण्डा पसीना आने पर इस औषध को नारियल के जल के साथ देना चाहिये। एक गोली से लाभ न हो तो दूसरी गोली देनी चाहिये, जब तक नासावायु में गरमी न आवे। औषध की क्रिया स्पष्ट होने पर रोगी के सिर पर तिलतैल मलना चाहिये, शीतल जल की धारा का प्रयोग करना चाहिये। शिशु-वृद्ध और गर्भवती को यह औषध नहीं देनी चाहिये। इसमें कृष्ण-सर्पविष होता है।

कस्तूरी भैरव—सन्निपातज्वर में कफ या वात-कफ का प्रकोप होने से शरीर में जड़ता, तन्द्रा, पार्श्ववेदना, निद्राधिक्य, सन्धिस्थान में वेदना, मुख में कफ-लिप्तता और कास होने पर आर्द्रकरस और सैन्धव लवण के साथ इसे देना चाहिये। वात श्लेष्मज्वर में यह ओषधि उपयोगी है। मसूरिका में रुद्राक्ष घिसकर उसमें मधु मिलाकर इसका प्रयोग करना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

अगर कस्तूरी—सन्निपातज्वर में जड़ता, निद्राधिक्य, आखों में जड़ता, पार्श्ववेदना, तन्द्रा, स्पन्दनहीनता, नासाग्रभाग में शीतलता, जिह्वा में कृष्णवर्णता, वाक्‌शक्ति की हीनता, अग्निमान्द्य आदि रहने पर-अभिन्यासज्वर की अवस्था में

यह औषध देनी चाहिये। वातश्लेष्मज्वर में यह विशेष उपयोगी है। अनुपान—घिसा हुआ रुद्राक्ष और मधु। मात्रा २ रत्ती।

मृगाङ्क कस्तूरी—सन्निपातज्वर में अतीसार, तन्द्रा, अतिशय दाह, मूर्च्छा, अन्तर्दाह, पिपासा, स्वेद, दोनों आंखों में स्पन्दनहीनता और नासाग्रभाग में शीतलता होने पर आशुकारी तंत्रिक, रक्तष्ठीवी, रुग्दाह सन्निपात में यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—वमन होने पर श्वेत चन्दन और कच्चादुग्ध; अन्य अवस्थाओं में तालपत्र रस और मधु। मात्रा २ रत्ती।

नवज्वरेभ केशरी—सन्निपातज्वर में रोगी के शरीर में जड़ता, निद्राधिक्य, स्वेदाभाव, स्तब्धता, प्यास, शिरोवेदना, गले में दर्द, मूकत्व, होनेपर सन्धिग सन्निपात में आर्दकरस और मधु से यह औषध देनी चाहिये। दाह और प्यास प्रवल होने पर श्वेत चन्दन और कच्चेदुग्ध के साथ, निद्राधिक्य होने पर तालपत्ररस और मधु से देनी चाहिये। मात्रा १ रत्ती

महालक्ष्मीविलास—शरीर में जड़ता, गद्गद वाक्य, निद्राधिक्य, शीतज्वर, प्रवल तन्द्रा, कटि-पार्श्व-ग्रीवा-वक्ष में दर्द, सन्धिस्थान में दर्द, कर्णमूल में तीव्र शोथ, कण्ठरोध तथा गले में शूल प्रतीति होती हो तो इस कम्पन-शीघ्रकारी-कूटपालक-कर्कटक-तंत्रिक-जिह्वक-सन्धिग-कर्णिक सन्निपात में तथा भिन्न २ कफरोग में यह औषध दी जाती है। अनुपान—आर्द्रकरस और मधु अथवा पान का रस और मधु। मात्रा २ रत्ती।

चतुर्भुज रस—सन्निपातज्वर में मूर्च्छा, गात्रकम्प, भ्रम, भ्रान्ति, पक्षाघात, पार्श्व-ग्रीवा-सन्धिस्थान में वेदना प्रलाप, ज्ञानशून्यता तथा वायुजनित विविध विकारों में एवं कफप्रधान उन्माद रोग में यह औषध विशेष उपकारी है। अनुपान—तालपत्ररस और मधु। मात्रा २ रत्ती।

कस्तूरी भूषण—रोगी में जड़ता, अस्पष्ट वाक्य, निद्राधिक्य, तन्द्रा, पार्श्व वेदना, कटिशूल, कर्कटक और वैदारिक जिह्वक सन्निपात में उपयोगी है। अनुपान—घिसा हुआ रुद्राक्ष और कच्चादुग्ध। श्वास प्रवल होने पर सोंठ और भार्गी का क्वाथ और सैन्धावलवण; मलवन्ध होने पर आर्द्रक रस और मधु। मात्रा २ रत्ती।

बृहत्कस्तूरी भैरव—पार्श्वशूल, प्रलाप, शीतलता, ज्ञानलोप, नाड़ी की गति क्षीण होने पर यह औषध सन्निपातज्वर में अमृत के समान है। उन्माद रूप

-से मृत्युसूचक लक्षण दीखने पर, वायुविकार, सूतिकाविकार, रक्तपित्तविकार आ में यह औषध बरती जाती है। वात, कफ प्रधान विषमज्वर, सब प्रकार सन्निपातज्वरों में यह औषध उत्तम है। अनुपान—वातश्लेष्म, पित्तश्लेष्म, त्रिदो प्रधान विकार में तालशाखा का रस और मधु, वमन होने पर चन्दन घिसक कच्चेदुग्ध के साथ, विषमज्वर में आर्द्रक रस और मधु अथवा पिप्पली चूर्ण औ मधु, कफप्रधान ज्वर में पान का रस और मधु बरतें। मात्रा २ रत्ती।

सन्निपातज्वर में उपद्रव चिकित्सा

कास में अष्टांगावलेहिका—आर्द्रकरस के साथ, क्लोमनलिका में शो होने से देनी चाहिये (ब्रौंकोएक्टसिस में)।

कासान्तक रस—कास का परिपाक न हुआ हो और कफ पतला पानी जै आता हो, तो इसे देना चाहिये, शुष्क कास में देना वर्जित है। अनुपान–तुलसं पत्ररस और सैन्धव लवण। मात्रा २ रत्ती।

कासकुठार—सन्निपातज्वर में कास में कफ पतला थोड़ा या अधिक नि लता हो; शिरोवेदना या भारीपन हो तो इस औषध को आर्द्रक रस और मधु साथ, अतीसार या मल पतला हो तो कण्टकारी के क्वाथ के साथ देना चाहिये मात्रा २ रत्ती।

एलादि चूर्ण—कास शुष्क हो, कफ थोड़ा निकलता हो, तो इसको दे चाहिये। अनुपान—उष्ण जल।

श्वास में भार्ग्यादि क्वाथ—कास के कारण या ज्वर के कारण श्वास व वेग जब प्रबल हो जाए तब यह क्वाथ देना चाहिये। वक्षस्थल से कफ निकलता हो तो यह क्वाथ विशेष उपयोगी है।

शृंग्यादि चूर्ण—श्वास का वेग उपस्थित होने पर यह औषध आधे घंटे अन्तर से देनी चाहिये। ज्वर के प्रकोप के कारण कास शुष्क हो जाये, वक्षस्थ से सन सन शब्द सुनाई दें तथा वेदना और उदराध्मान हो, यह औषध दे चाहिये। यह औषध अनुलोमक और कोष्ठ शुद्धिकारक है। अनुपान—उष जल। मात्रा १ मासा।

श्वासकुठार—वात-कफ-प्रधान सन्निपातज्वर में क्षुद्र श्वास के साथ का का वेग उपस्थित होने पर यह औषध देनी चाहिये। वक्ष तथा पार्श्व में वेदना हो

पर इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। अनुपान-सोंठ और भार्गी का क्काथ और सैन्धव लवण। मात्रा २ रत्ती।

श्वासचिन्तामणि—सन्निपातज्वर में किसी भी प्रकार का श्वास रोग होने पर यह औषध देते हैं। श्वास काल में ज्ञानशून्यता; उदराध्मान; मोह, बार-बार हिक्का या वमन आदि उपद्रव होने से जब कफ बाहर न आता हो तब इस औषध को देना चाहिये। अनुपान—बहेड़े को घिसकर मधु मिलाकर दें; वमन और हिक्का होने पर आम की गुठली की गिरी और कच्चादुग्ध। मात्रा २ रत्ती।

हिक्का में—पिप्पली, आंवला और सोंठ का चूर्ण समभाग लेकर सबके बराबर चीनी मिलाकर मधु के साथ बार-बार चटायें। बकरी के दूध के साथ सोंठ का दूधपाक बनाकर दें। निम्बू का रस, संचललवण और मधु मिलाकर पिलावें। चीनी और बड़ी इलायची का चूर्ण मिलाकर बार-बार चटायें।

पिप्पल्यादि लोह—सन्निपातज्वर में पित्त का प्रकोप होने से रोगी को जब वमन और हिक्का हो तब इसको देना चाहिये। अनुपान बहेड़े की मज्जा और कच्चादुग्ध।

एलादि गुटिका—ज्वर में पित्तप्रकोप से जब रक्त वमन हो तब मधु के साथ मिलाकर देनी चाहिये। यह औषध रक्तपित्त, कास और यक्ष्मा रोग में प्रशस्त है। मात्रा १ मासा।

प्रलाप में—शिर पर ठण्डा जल डालें, वर्फ की थैली रखें; पान का रस और पुराना घृत मिलाकर लेप करना चाहिये। कुक्कुट के अण्डे का तरल भाग पुरातन घृत के साथ मिलाकर माथे पर मलें। नाड़ीसमूह की दुर्बलता से जब तन्द्रा और प्रलाप हो तब पुष्टिकारक और उत्तेजक औषध [यथा कस्तूरी भैरव] देनी चाहिये। शिर पर आर्द्रक रस-की पट्टी या सोंठ पीस कर लेप करना चाहिये।

सिद्ध वटी—सन्निपातज्वर में रोगी जब सदा प्रलाप करे,तब इसको यह वटी देनी चाहिये, परन्तु जब रोगी को उदराध्मान या वायु की रुक्षता के कारण श्लेष्मा शुष्क हो तब इसका देना निषिद्ध है। एक एक घण्टे पर १ गोली पानी के साथ देनी चाहिये। मात्रा ३ रत्ती।

सन्निपात में दाह होने पर

दाहान्तक लोह—सन्निपातज्वर में पित्त के प्रकोप के कारण जब असह्य

दाह एवं अतिसार और वमन हो रहें हों तब इसका प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—जल, दस्त होने पर इन्द्रजव का शीत कषाय। मात्रा २ रत्ती।

धान्य शर्करा—सन्निपातज्वर में अन्तर्दाह और प्यासाधिक्य रहने से २–१ घण्टे के अन्तर से थोड़ी थोड़ी मात्रा में यह औषध देनी चाहिये।

सन्निपातज्वर में शोथ होने पर

रक्तमोक्षण—ज्वर के अन्त में कान की जड़ में शोथ दीखने पर जौंक लगवानी चाहिये। पीछे से रोगी को पंचतिक्त घृत या त्रिफलादि घृत सेवन करने को देना चाहिये।

हिंग्वादि लेप—कर्णिक सन्निपात में या अन्यान्य सन्निपातज्वर में कान के मूल में शोथ होने से हिंग्वादि लेप (हींग, हल्दी, भांर्गी; सैन्धव लवण, देवदारु, कूठ, विडंग इनको पीसकर गरम करके लेप करे) या **कुलत्थादि लेप** (कुलत्थ, कायफल, सोंठ, कालाजीरा इनका चूर्ण भांग के पत्ररस के साथ मिलाकर गरम करके) लगाना चाहिये। सन्निपातज्वर में मूर्च्छा, ज्ञानलोप तथा श्लैष्मिक विकार होने से—**वचादिनस्य**—देना चाहिये। रोगी का ज्ञानलोप, माथे में दर्द; वक्षःस्थल की क्रिया के बन्द होने से आर्द्रकरस से मिलाकर नासिका रन्ध्रद्वारा फूत्कार द्वारा प्रयोग करना चाहियें।

सिद्धार्थक लेप—ज्वर में ज्ञानलोप के साथ नाड़ीगति का विपर्यय होने से, शरीर में शीतलता आभासित होने पर वक्षःस्थल और पार्श्व में लेप करना चाहिये।

बृहत् कफकेतु—ज्वर में कफप्रकोप के कारण रोगी को प्रबल तन्द्रा, ज्ञानलोप, वक्षःस्थल में श्लेष्मा संचित रहने से जब घड़ घड़ आवाज आती हो तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—तालशाखा का रस और मधु। सन्निपात ज्वर में आक्षेप, मूढता या बुद्धि भ्रम होने पर यह औषध अमोघ गुणकारी है।

वातकुलान्तक—ज्वर में वायु या वायुपित्त के कारण मत्तता, बुद्धिभ्रम या आक्षेप होने पर, प्रलाप, कम्प, निद्रानाश, पक्षाघात, श्रवणशक्ति लोप, इन्द्रियों में विकलता, भ्रम, और भय होने पर इसको २ रत्ती मात्रा में आर्द्रक रस और मधु के साथ देना चाहिये।

त्रैलोक्यचिन्तामणि—वायु के प्रकोप से या रुक्ष वायु के साथ श्लेष्मा

का प्रकोप होने पर रोगी में मत्तता, मतिभ्रम तथा आक्षेप से जब मोह उपस्थित हो, तब ताल की शाखा के रस और मधु से और मलबन्ध होने पर आर्द्रक रस और मधु से देनी चाहिये।

सन्निपातज्वर में उदराध्मान एवं मल-मूत्र-रोध चिकित्सा

मल अवरुद्ध होने पर **फलवर्ति**—(ग्लैसरीन सपोजैटरी या अन्य) बरतें। वायु की अधिकता से मलावरोध होने पर उदर पर हींग का चूर्ण पानी में घोलकर मलें; पुरातन घृत मालिश करके हाथ को गरम करके सेक देना चाहिये। अतिसार के कारण यदि मूत्रावरोध हो तो **तृणपंचमूल क्वाथ** दें। प्रकुपित वायु के द्वारा वस्तिद्वार संकुचित होने पर मूत्ररोध हो तो गोखरु, वरुणाकी छाल और पाषाणभेद का क्वाथ दें।

हिंग्वाष्टक चूर्ण—सन्निपातज्वर में उदराध्मान होने पर यह औषध १ आना से २ आना मात्रा में गरम पानी से देनी चाहिये।

चतुर्मुख रस—उदराध्मान, श्वास, पार्श्व में वेदना, गुड़ गुड़ शब्द और मल-मूत्र का अवरोध होने पर यह औषध देनी चाहिये। वायु-पित्तजनित रोग में इसका व्यवहार होता है। अनुपान—तण्डुलोदक। मात्रा २ रत्ती।

आगन्तुज ज्वरचिकित्सा

वातश्लेष्मज्वर सन्निपातज (Pneumonia) **में**—कस्तूरीभैरव, महालक्ष्मीविलास, चन्द्रामृत, शृंगाराभ्र, कटफलादि पाचन, अष्टांगावलेह; तथा चतुर्भुज देना चाहिये।

निरामज्वर और मध्यम ज्वर चिकित्सा

वातपित्तान्तक रस—वात-पित्ताश्रित ज्वर में दाह, प्यास, भ्रम होने पर सायंकाल में ज्वर का वेग मन्द रहने पर इस औषध को ३ रत्ती मात्रा में मुलेहठी का चूर्ण और चीनी से देना चाहिये।

मध्यमज्वरांकुश—निरामज्वर में ज्वर का वेग अल्प तथा मध्यमज्वर में ज्वर के समय गात्रदाह और भ्रम होने पर प्रातः, मध्याह्न और रात्रि में तीन बार यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—पिप्पली चूर्ण और मधु अथवा हरसिंगार के पत्तों का रस और मधु। मात्रा १ रत्ती।

ज्वरारि अभ्र—वातश्लेष्माश्रित ज्वर या सन्निपातज्वर की निरामावस्था में रोगी को कास, प्लीहा और यकृतवृद्धि, तथा अग्निमान्द्य रहने पर यह औषध देनी चाहिये। प्लीहा की वृद्धि होने पर सुहागे के स्थान पर ताम्रभस्म का मिश्रण करके देना चाहिये। रोगी के शरीर में दर्द, शिरःशूल आदि होने पर इसको देना उत्तम है। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु; प्लीहा बढ़ी हो तो स्नुही के पत्तों को अग्नि में गरम करके उनका रस, पिप्पलीचूर्ण और मधु देना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

चिन्तामणि रस—एक दोष या द्विदोषाश्रित या सन्निपातज्वर की निराम अवस्था में, अन्येद्युष्क आदि विषम ज्वरों में रोगी को कास, शरीरवेदना, दुर्बलता आदि रहने से तथा वृद्ध व्यक्तियों में मृदु ज्वर होने से यह औषध उपयोगी है। जीर्ण ज्वर में तो यह औषध बहुत उपयोगी है। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु; कास होने पर पिप्पली चूर्ण और मधु। मात्रा २ रत्ती। समय—प्रातः सायं।

सौभाग्य वटी—सब प्रकार के ज्वरों की निरामावस्था या मध्यम ज्वर तथा जीर्ण एवं विषम ज्वरों में रोगी को कास, शिरोवेदना, अरुचि, अग्निमान्द्य, आंखों में जलन, तृषा आदि उपद्रव होने से; चिरकालीन प्लीहा के बढ़ा होने पर साथ में यकृत भी कुछ बढ़ा हो तो इस औषध का उपयोग अमृत तुल्य है। अनुपान-प्लीहा और यकृत बढ़ा होने से कास होने पर सेहुण्ड के पत्तों का रस, पिप्पली चूर्ण और मधु। केवल ज्वर और कास होने पर वासकस्वरस और मधु; ज्वर के साथ शिर में भार प्रतीत होने पर निर्गुण्डीपत्ररस और मधु; मलबन्ध होने पर आर्द्रक रस और मधु। मात्रा २ रत्ती।

मकरध्वज वटी—सब प्रकार के ज्वरों की निरामावस्था में, ज्वरवेग के मन्द रहने से, शरीर अतिकृश होने पर दुर्बलता दूर करने के लिये यह औषध देनी चाहिये। जिनको दुर्बलता और शुक्राल्पता के कारण बार बार ज्वर आता हो उनको एवं क्षयकासादि जनित दुर्बलता में इस औषध को प्रातः सायं देना चाहिये। अनुपान-पान का रस और मधु। मात्रा दो रत्ती।

सर्वतोभद्र रस—वातश्लैष्मिक सन्निपातज्वर की निरामावस्था में या मध्यमज्वर में तथा विषमज्वर में कास, प्रबलज्वर, शिरोवेदना, सर्दी तथा प्लीहावृद्धि होने पर दिन में तीन बार यह औषध ३ रत्ती मात्रा में पिप्पलीचूर्ण और मधु से देनी चाहिये।

बृहत् विश्वेश्वर रस—वातश्लैष्मिक या सान्निपातिकज्वर की निराम

अवस्था में-७,९, १०,१२, १४,१८, २२ दिन के पीछे उपद्रव होने से जब ज्वर की गरमी कुछ कम हो जाए; तब सन्तत-सततज्वर में यह उत्कृष्ट औषध है। अनु-पान—कोष्टशुद्धि और कास की शान्ति के लिये पिप्पलीचूर्ण और मधु; कोष्ठ काठिन्य होने पर आर्द्रक रस और मधु। मात्रा २ रत्ती।

ज्वर में कषाय (क्वाथ) प्रयोग विधि

वातज्वर में ७ दिन, पित्तज्वर में १० दिन, कफज्वर में १२ दिन वातश्लेष्म ज्वर में ९ दिन, वातपित्तज्वर और पित्तश्लेष्म ज्वर में ७ दिन और सन्निपातज्वर में ७, ९, १०, १२, १४, १८ या २६ दिन पीछे जब उपद्रव कम हो जाएँ तब कषाय देना चाहिये।

शुण्ठ्यादि क्वाथ—रोगी के शरीर में वेदना, अल्पज्वर और भूख की कमी होने पर इस क्वाथ को देना चाहिये।

श्रीफलादि क्वाथ—रोगी में निद्रा की कमी, माथे में चक्कर, सर्वांगवेदना, तथा ज्वरकाल में कम्पन होने पर इसे दें; मलवन्ध होने पर इसमें सनाय की पत्ती ४ आना मिलाकर देना चाहिये।

पर्पटादि क्वाथ—पित्तज्वर के दस दिन बीतने पर भी रोगी में दाह तथा अग्निमान्द्य होने से यह क्वाथ प्रातः देना चाहिये।

ह्रीवेरादि क्वाथ—पित्तज्वर में रोगी को प्यास, दाह, पतला मल आदि उपसर्ग होने पर इसे देना चाहिये।

किरातादि क्वाथ—पित्तज्वर में दाह, तृष्णा, वमनवेग, या वमन तथा मुख में कटु स्वाद होने से प्रतिदिन प्रातः काल देना चाहिये।

द्राक्षादि क्वाथ—पित्तज्वर में असह्य दाह, प्रलाप, मुखशोष, शरीर के अन्दर दाह, मूर्च्छा, प्यास, मलवद्धता रहने पर यह क्वाथ देना चाहिये।

गुडूच्यादि क्वाथ—वातपैत्तिक ज्वर में अतिशय प्यास, वमन, दाह होने पर यह क्वाथ देना चाहिये। इसमें मधु मिलाकर देना उत्तम है।

सिन्धुवार क्वाथ—कफज्वर में वारह दिन के पीछे रोगी की श्रवणशक्ति कम एवं बोलने के शक्ति मन्द होने पर यह क्वाथ देना चाहिये।

मरिच्यादि क्वाथ—कफज्वर में शरीर में भारीपन, अग्निमान्द्य रहने से, कास होने पर वमन की इच्छा रहने पर यह क्वाथ देना चाहिये।

पंचभद्र क्वाथ—वातपित्तज्वर में सात दिन के पीछे भी शरीर में दाह, ज्वर के प्रारम्भ में अत्यधिक कम्प, दाह आदि होने पर यह क्वाथ देना चाहिये। मलबन्ध रहने से इसमें अमलतास का गूदा मिला देना चाहिये।

कट्फलादि क्वाथ—कफप्रधान या वातकफप्रधान सन्निपातज्वर की निरामावस्था में रोगी को कास, शिरोवेदना, श्वास, स्वरभंग, बधिरता, कर्णशूल, तथा कर्णशोथ होने में यह क्वाथ उत्तम है। इसे प्रातः काल में देना चाहिये। ज्वर की निरामावस्था में जब प्लीहा और यकृत बड़े हों तब इसको देना चाहिये।

विषमज्वर और जीर्णज्वर चिकित्सा

चन्दनादि लौह—वातपित्ताश्रित या पित्ताश्रित जीर्णज्वर में जब मृदु वेग उपस्थित होकर थोड़े समय तक ही रहे तब यह औषध विशेष उपयोगी है। जिन सब रोगों में प्रति दिन ८-१० दिन के अन्तर से अथवा पूर्णिमा या अमावस्या के उपलक्ष में २ या तीन दिन तक अल्प ज्वर रहता हो, शरीर में रक्त की कमी हो, ज्वर के समय दाह, प्यास लगती हो, ज्वर के साथ में प्रमेह के लक्षण हों, तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-पित्तपापड़े का रस और मधु। मात्रा २ रत्ती

पुटपुक्व विषमज्वरान्तक लौह—वातपित्त, पित्तश्लेष्मप्रधान विषम ज्वर और जीर्णज्वर में जब ज्वर का वेग अल्प हो; निरामावस्था में यह औषध उपयोगी है। ज्वर के साथ ग्रहणी, आमरक्त मिश्रित मल, प्लीहा या यकृत के बढ़े होने से अग्निमान्द्य या अरुचि हो; तब यह औषध उपकारी है। यकृत् की वृद्धि और शोथ होने से यह औषध विशेष उपकारी है। अनुपान-उदर विकार होने से जीराचूर्ण और मधु; कोष्ठ में मलबद्धता और प्लीहा वृद्धि होने पिप्पली चूर्ण, हींग और सैन्धव लवण के साथ देना चाहिये। मात्रा २ रत्ती

बृहत् सर्वज्वरहर लौह—चिरकालीन ज्वर जब मन्द मन्द थोड़े समय तक बना रहे, रोगी कृश-शीर्ण हो रहा हो, तब यह उत्तम है। प्लीहा और यकृत् बढ़कर शोथ हो, परन्तु वेदना न हो (Acute अवस्था निकल जाये); उदररोग-ग्रहणी-प्रवाहिका की शिकायत हो; यह औषध अधिक कार्य करती है। परन्तु सर्दी; शरीर में वेदना, तरलकास आदि श्लैष्मिक लक्षण होने से यह औषध बहुत लाभ नहीं करती। अनुपान-पित्तपापड़े का रस और मधु; हारसिंगार के पत्तों का रस और मधु; प्रवाहिका-ग्रहणी में कालाजीरा चूर्ण और मधु; प्लीहा में पिप्पली चूर्ण और मधु। मात्रा २ रत्ती

ज्वरसंहार चूर्ण—सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक, चतुर्थक और संक्रामक ज्वर में तथा दीर्घकालीन ज्वर में यह औषध उपयोगी है। ज्वर में प्लीहा और यकृत बढ़े हों तब इसका देना उत्तम है। अनुपान—मधु और उष्ण जल, कास होने पर तुलसीपत्र रस और मधु। मात्रा १½ माषा

सुदर्शन चूर्ण—सब प्रकार के ज्वरों में बरता जाता है। जलदोषोद्भव (मलेरिया आदि) ज्वरों में यह उत्कृष्ट औषध है। थोड़े समय के ज्वर की अपेक्षा दीर्घकालीन ज्वरों में अधिक गुणकारी है। इस औषध का पूर्ण फल प्राप्त करने के लिये एक मास पर्यन्त सेवन करना आवश्यक है। पांच या सात मास से जब ज्वर आता हो, तब इसका लाभ अच्छा होता है; अनुपान-गरम जल। मात्रा चार आना

क्षीरषट्पलक घृत—जीर्ण ज्वर में कफ की क्षीणता होने पर, वायु और पित्त की अधिकता; रोगी में रूक्षता होने पर यह घृत देना चाहिये। रोगी को घृत प्रातःकाल में देना चाहिये। मात्रा ४ आने से ८ आना भर।

दशमूल षट्पलक घृत—जीर्णज्वर में कफ की क्षीणता दीखने पर, वायु और पित्त की अधिकता स्पष्ट होने से; रूक्षता के कारण कास बना रहता हो, ज्वर भी मृदु हो; प्लीहा और यकृत में वेदना रहित वृद्धि (जीर्ण ज्वर) रहती हो; तब यह घृत अतिशय उपकारी है। गरम दूध के साथ सायंकाल या प्रातःकाल देना चाहिये। मात्रा ४ आने से ८ आना

पिप्पल्याद्य घृत—जीर्ण ज्वर में वायु और पित्त की रुक्षता के कारण शरीर कृश एवं ज्वर मृदु रहता हो, इससे रोगी को कास, शिरोवेदना, अरुचि, क्षुण्णाश आदि उपद्रव हों; तब यह घृत रोगी को देना चाहिये। ज्वर के व्यतीत होने पर क्षयकास एवं दीर्घकालीन प्रतमक श्वास हो तब भी यह लाभकारी है। अनुपान-थोड़ा सा गरम दूध। मात्रा ४ आने से ८ आना

वासाद्यघृत—जीर्णज्वर में रोगी का कफ क्षीण हो; वायु और पित्त की रुक्षता के कारण ज्वर मृदु रूप में रहता हो; शरीर में कृशता; पुरातन कास; प्रमेह दोष, प्रस्राव में ज्वाला; हाथ-पैर में समय समय पर दाह होता हो; तब अपराह्न में इस घृत को थोड़े गरम गौ दूध से सेवन कराना चाहिये।

अङ्गारक तैल—जीर्ण ज्वर में रोगी में वायु की प्रबलता दीखने पर, ज्वर अतिमृदु भाव से बहिर्भाग में ५-७-१० दिन के अन्तर से शरीर में दीखता हो;

तब यह तैल शरीर पर मर्दन करना चाहिये । जीर्णज्वर रोगी को दीर्घकालीन अल शोथ एवं शरीर में पाण्डुता दिखाई दे, तब यह तैल विशेष उपकारी है ।

महालाक्षादि तैल और लक्षादि तैल—जीर्ण ज्वर में वायु जनित रुक्षता दिखाई देती हो एवं ५-७-१० दिन के अन्तर से ज्वर प्रतिदिन आता हो; तब शरीर पर तैल मलना चाहिये । ज्वर में प्रमेह हो, मूत्र में दाह; शरीर में कृशता होने पर यह तैल उत्तम है । अति पुरातन जीर्ण ज्वर में यह तैल बरतना चाहिये

किराताादि तैल—जीर्ण ज्वर में वायु जनित रुक्षता होने पर स्नान एवं आहार सेवन करने से ५-७-१० दिन पीछे ज्वर मन्द रूप में आता हो; अस्थि और मज्जागत जीर्ण ज्वर में यह तैल उपयोगी है। प्लीहा और यकृत, जीर्णज्वर में बढ़े हों, शोथ हो तब इस तैल को शरीर पर मलना चाहिये ।

ज्वरातिसार चिकित्सा

ह्रीवेरादि क्काथ—ज्वरातिसार रोगी को पतला मल आने पर अथवा मल में पिच्छिलता, आम, रक्त आये, नाभिभाग में वेदना, ज्वर उपद्रव रूप में हों, तब इस क्काथ को प्रातः अथवा आवश्यकता होने पर दोनों समय देना चाहिये ।

नागरादि क्काथ—ज्वरातिसार रोगी को शोथ होने पर यह क्काथ देना चाहिये ।

सिद्धप्राणेश्वर रस—ज्वरातिसार रोगी को पतला मल आये, जिसमें आम भी हो, उदर में वेदना, गुड़गुड़ ध्वनि, ज्वर उपद्रव रूप में हो; केवल अतिसार या वातज ग्रहणी रोग में यह औषध अत्यन्त उपकारी है । अनुपान–जीरा चूर्ण और मधु अथवा मोथे का रस और मधु या तण्डुलोदक ।

प्राणेश्वर—ज्वरातिसार रोगी को आमसहित मल आये, उदर में वेदना, अजीर्ण या केवल अतिसार होने पर यह औषध देनी चाहिये । अनुपान–जीरा चूर्ण या मोथे का रस और मधु । मात्रा १ रत्ती

कनकसुन्दर रस—ज्वरातिसार रोगी को पतला मल आता हो; उदर में गुड़गुड़ ध्वनि रहे; ज्वर की अधिकता हो; अग्निमान्द्य एवं अतिसार श्लैष्मिक हो तो यह औषध देनी चाहिये । अनुपान–जीरा चूर्ण और मधु ।

महागन्धक—ज्वरातिसार रोगी को आम एवं रक्त मिश्रित मल आता हो; उदर में वेदना, ज्वर आदि उपद्रव रहने से यह औषध देनी चाहिये । बालक, वृद्ध

और प्रसूता की अवस्था में यह औषध आश्चर्यकारक लाभ दिखाती है, विशेष करके बच्चों के अतिसार और प्रवाहिका रोग में। अनुपान-मोथे का रस और मधु; जीरा चूर्ण और मधु।

आनन्दभैरव रस—ज्वरातिसार रोगी में ज्वर की प्रवलता रहने पर मल पतला, उदरशूल, अग्निमान्द्य, अजीर्ण होने पर इस औषध को जीरा चूर्ण और मधु के साथ देना चाहिये। अग्निमान्द्य के कारण आमरस के होने से शरीर में वेदना होने पर पान के रस और मधु से, कास होने पर पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ देना चाहिये। मात्रा १ रत्ती

मृतसञ्जीवनी वटी—ज्वरातिसार में ज्वर का वेग प्रबल होने से, इसके कारण अतिसार होने पर; इस औषध को जीरा चूर्ण और मधु या शीतल जल के साथ देना चाहिये। विसूचिका रोग में उत्तम है।

ज्वरातिसार में उपद्रव चिकित्सा

वमन होने पर-चन्द्रकान्ति रस—ज्वरातिसार रोगी को जब लगातार अवाधगति से वमन हो रहा हो; वायु और श्लेष्माजनित उपद्रव स्पष्ट हो, अर्थात् रोगी में विसूचिका या अलसक के लक्षण उपस्थित रहें, तब वमन निवारक इस औषध का व्यवहार करना चाहिये। प्रवल ताप होने पर इस औषध को बरतना चाहिये। अनुपान-खीरे के बीज पीसकर कच्चादुग्ध या बकरी के दूध से देना चाहिये।

प्लीहा-यकृत और उरोग्रह चिकित्सा

अर्क लवण—प्लीहा और यकृत के बढ़ने से वेदना होती हो, तब प्रातः यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-शीतल जल। मात्रा ६ रत्ती

रोहितकाद्य चूर्ण—प्लीहा और यकृत बढ़ गये हों, इनमें काठिन्य आ जाये, रोगी का ज्वर बढ़ता हो, तब इस औषधि को देना चाहिये। यह औषधि उष्ण वीर्य है। ज्वर के साथ प्लीहा और यकृत की वृद्धि होने पर यह औषध बहुत उपयोगी है। अनुपान-शीतल जल। मात्रा १ आने से दो आना

प्लीहार्णव रस—प्लीहा के बढ़ने के साथ ज्वर, अग्निमान्द्य, कास भी बढ़ता हो, प्लीहा और यकृत में कठिनाई हो, तब यह औषध शेफालिका रस और मधु के साथ देनी चाहिये। यह औषध अग्निवर्द्धक और कफ प्रबल प्लीहा रोग में उपकारी है। मात्रा २ रत्ती

रोहितक लौह—यकृत और प्लीहा रोग में रोगी के शरीर में रक्त के कमी, पाण्डुता; ज्वर, प्यास, दाह हो अथवा पैत्तिक प्लीहा के लक्षण दीखने में यह उपयोगी है। हाथ पैर में प्लीहा वृद्धि से शोथ होने पर यह अति उपयोगीहै इसको पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ मध्याह्न या अपराह्न में १ रत्ती देना चाहिये

यकृदरि लौह और बृहत् यकृदरि लौह—प्लीहा और यकृत बढ़कर कठिन हो जायें, अग्निमान्द्य, अल्पज्वर, पाण्डुता, कास में यह औषध प्रातः या अपराह्न में तालजटाभस्मावस्रुत जल के साथ १ और २ रत्ती क्रमशः सेवन करानी चाहिये। यह औषध अग्निवर्धक, बल वृद्धि कारक और प्लीहा दोषनाशक है। बृहद् यकृदरि लौह—यकृत के रोग में विशेष उपकारी है। अनुपान आर्द्रक रस और मधु। अथवा पिप्पली चूर्ण और मधु।

महामृत्युञ्जय रस—प्लीहा और यकृत के बढ़ने के साथ में रोगी को ज्वर, अग्निमान्द्य, अरुचि रहने से यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से प्लीहा के आश्रित दीर्घकालीन ज्वर और सामान्य ज्वर नष्ट होता है; प्लीहा वृद्धि की अवस्था में यह औषध अतिशय उपयोगी। मात्रा १ रत्ती

लोकनाथ और बृहत् लोकनाथ रस—प्लीहा और यकृत बड़े होने पर, जीर्णज्वर, अग्निमान्द्य, पाण्डुता इनमें से कोई एक भी लक्षण होने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-पिप्पलीचूर्ण और मधु; कोष्ठकाठिन्य होने पर हरड़ का चूर्ण और पुराना गुड़; अतिसार होने पर जीरा चूर्ण और मधु। मात्रा २ रत्ती

बृहत् गुड़ पिप्पली—बच्चों में प्लीहा या यकृत बढ़ जाने पर अथवा इसके कारण उदररोग बढ़ जाये; तब यह औषध देनीचाहिये। प्लीहा या यकृत के साथ में जीर्णज्वर, शोथ, कास और अग्निमान्द्य होने से यह औषध प्रयुक्त करनी चाहिये। बच्चों की प्लीहा के बढ़ने पर यह विशेष उपकारी है। अनुपान पिप्पली चूर्ण और मधु या गाय का दूध अथवा शीतल जल। मात्रा ५ रत्ती

मानकादि गुटिका या बृहन्मानकादि गुटिका—प्लीहा या यकृत के बढ़ जाने पर प्लीहोदर या यकृद्दाल्युदर के लक्षण स्पष्ट हो जायें, अर्थात् हाथ-पैर पर सूजन, मलबन्ध होने पर यह औषध प्रातः या अपराह्न में देनी चाहिये। यह औषध वातज अर्शनाशक, ग्रहणीनाशक, कोष्ठ शुद्धिकारक, अग्निवर्धक; मूत्र-कारक और शोथादिनाशक है। अनुपान-जल। मात्रा ४ आने से ८ आना

चित्रकादि लौह—प्लीहा और यकृत की वृद्धि होने पर काठिन्य उत्पन्न

हो जाने पर, प्लीहोदर और यकृद्दाल्युदर के लक्षण-पाण्डुता, हाथ, पैर पर शोफ, अग्निमान्द्य, अर्शरोग के लक्षण-अल्प ज्वर रहने पर यह औषध प्रातः या अपराह्ण में १½ मासे से ३ मासा देनी चाहिये। पाण्डु, कामला और शोथ में विशेष उपकारी है।

अभया लवण—यकृत और प्लीहा के बढ़ने से जब वेदना होती हो, यही वेदना अवस्थानुसार हृदय, पार्श्व, उदर में फैल जाती हो; अंस में भी निकलती हो: तब यह औषध देनी चाहिये। प्लीहा या यकृत की वृद्धि से रोगी को मलबन्ध या अतिसार रहता हो तब इस औषध को प्रातः या सायंकाल देना चाहिये। यह औषध कोष्ठ शुद्धिकारक और अग्निदीपक है। वायु-पित्त जन्य अवस्था में अधिक प्रशस्त है; अनुपान उष्ण जल। मात्रा ½ तोले से १ तोला

वर्धमान पिप्पली—प्लीहा और यकृत बढ़े हों जिससे वेदना होती हो; ज्वर; कास; हाथ-पैर आदि में शोथ हो तब इस औषध को रोगी की आयु के अनुसार प्रातः सेवन करानी चाहिये। यह औषध रक्त और बलवर्धक है। अनुपान-गोदुग्ध।

महामृत्युञ्जय लौह—प्लीहा और यकृत बहुत बड़े हों; ज्वर और कास रोगी को रहता हो, यकृत में वेदना, पार्श्वशूल, श्वास में कष्ट, शिरोवेदना, यकृत की वृद्धि से पाण्डुता, अर्श; हाथ-पैर आदि में शोथ, उदराध्मान, मन्दाग्नि रहती हो; तब इस औषध से जल्दी लाभ होता है। प्रातः और सायं दोनों समय-ताल जटाभस्म प्रस्रावित जल के साथ देनी चाहिये। प्लीहा एवं यकृत रोग की प्रबल अवस्था में बहुत उपयोगी है। मात्रा ६ रत्ती

वारिशोषण रस—प्लीहा और यकृत बढ़े हों; कोष्ठबद्धता, अग्निमान्द्य; पाण्डुता, मृदुज्वर, यकृत और प्लीहा में वेदना, अतिसार, आध्मान, या जलोदर के लक्षण हों; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। औषधि प्रातः और अपराह्ण दो रत्ती मात्रा में देना उत्तम है। अनुपान-मरिच चूर्ण; पाण्डु रोग में त्रिफला का जल।

शंखद्रावक—यकृत या प्लीहा बढ़े हों, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, उदराध्मान, आदि उपद्रव रहते हों; तब इस औषध की १०-१२ बूंद जल के साथ में भोजन के पीछे देनी चाहिये। यह औषध अतिशय अग्निवर्धक है।

रोहितक घृत—प्लीहा, यकृत रोग चिरकालीन हो जाये; रोगी में वायु और पित्त का प्रकोप हो; अग्नि बढ़ी हो-भूख लगती हो; तब इस घृत को २ मासे

से ६ मासा देना चाहिये। वायु और पित्त की रूक्षता के कारण प्लीहा या यकृत जनित अल्प ज्वर, श्वास उपस्थित हो; शरीर में पाण्डुता होने पर यह घृत अपराह्न में गरम दूध से देना चाहिये। प्लीहा और यकृत वृद्धि की तरुणावस्था (Acute stage) में ज्वर, श्वास; कास आदि होने से यह घृत नहीं देना चाहिये।

प्लीहा और यकृद् रोग में कोष्ठ बद्धता होने पर

प्लीहा शार्दूल रस—प्लीहा और यकृत के नीचे बढ़ जाने से; मलबन्ध रहने पर यह औषध प्रातः देनी चाहिये। गुल्मरोग में यह औषध उत्तम है। विषमज्वर में प्लीहा या यकृत बढ़ जायें तब इसको देना चाहिये। अनुपान–पिप्पली चूर्ण और मधु। मात्रा १ रत्ती

प्लीहारि रस—प्लीहा या यकृत बढ़ जायें मलबद्धता रहे; प्लीहा, यकृत में अल्प वेदना रहती हो अर्थात् कफज य प्लीहा में यह औषध उत्तम है। वातज अर्श, शूल, उदावर्त्त, श्वासकासार्त्त रोगी को विरेचन के लिये यह औषध देनी चाहिये। आमवात रोग में कोष्ठकाठिन्य होने से यह औषध देनी चाहिये। रोगी को मल अधिक आने पर प्रतिदिन औषध नहीं देनी चाहिये। अनुपान–आर्द्रक रस और मधु। मात्रा १ रत्ती

यकृत प्लीहारि लौह—प्लीहा और यकृत के बढ़ जाने पर मलबन्ध रहने से, दीर्घकालीन पाण्डुता; ज्वर, उदर रोग (प्लीहोदर या यकृद्दाल्युदर), हाथ-पैर आदि पर शोथ; कोष्ठ में कठिनाई रहने से यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-जल या आर्द्रक रस। मात्रा २ रत्ती

प्लीहा और यकृद् रोग में पाण्डु चिकित्सा

नवायस चूर्ण—यकृत या प्लीहा रोग में पाण्डुवर्ण; कामला शरीर में हो जाये, पित्त की प्रबलता होने से शरीर में कृशता होने पर यह औषध उत्तम है। मात्रा १ रत्ती से छः रत्ती; अनुपान–घृत और मधु।

पुनर्नवादि मण्डूर—प्लीहा या यकृत रोग में रोगी के शरीर में पाण्डु वर्ण; कामला, हाथ-पैर आदि में शोथ होने से यह औषध देनी चाहिये। अनुपान–जल; शोथ होने पर पुनर्नवा रस और मधु।

पंचामृत लौह मण्डूर—प्लीहा-यकृत रोग में पाण्डु रोग उत्पन्न हो जाये;

इसके कारण सर्वांग शोथ; कामला होने पर यह औषध देनी चाहिये। इससे ये उपद्रव और जीर्ण ज्वर नष्ट होता है। मात्रा १½ मासे से ३ मासा

प्लीहा और यकृद्रोग में शोथ चिकित्सा

पुनर्नवाष्टक क्वाथ—प्लीहा या यकृत की वृद्धि के कारण प्लीहोदर या यकृद्दाल्युदर उपस्थित रहता हो, जीर्णज्वर; रोगी के हाथ-पैर आदि पर शोथ हो, तब यह क्वाथ देना चाहिये। पाण्डु रोग में शोथ, पार्श्वशूल, श्वास उपद्रव दिखाई दे तब यह क्वाथ देना चाहिये।

पथ्यादि क्वाथ—प्लीहा और यकृत के बढने से प्लीहोदर या यकृद्दाल्यदर उपस्थित हो, इसके कारण रोगी के मुख, हाथ-पैर-उदर पर शोथ हो जाये, अथवा जीर्णज्वर में कास, शोथ आदि लक्षण हों तब यह क्वाथ देना चहिये।

त्र्युषणाद्य लोह—प्लीहा यकृत रोगी के हाथ-पैर आदि पर शोथ हो जाने पर रोगी को उदर रोग या रक्त की न्यूनता होने पर यह औषध देनी चाहिये यह औषध मूत्रकारक है। अनुपान-त्रिफला जल। मात्रा २ रत्ती

प्लीहा-यकृद् रोग में वमन चिकित्सा

रक्तपित्तान्तक रस—प्लीहा और यकृत के बढ़ने के कारण रोगी को ज्वर, मुख या नासिका से रक्त निकलता हो; यकृत या प्लीहा रोग में पाण्डु या कामला होने से वमन होता हो; रोगी को मध्याह्न और अपराह्ण में कच्ची दूर्वा घास के रस और मधु से देना चाहिये। मात्रा ३ रत्ती

शतमूलाद्य लौह—प्लीहा और यकृत के बढ़ने से ज्वर, वमन हो, मुख और नासिका से रक्त निकलता हो; पाण्डुता और कामला होने पर वमन हो रहा हो तब मध्याह्न में या सायंकाल में दूर्वा रस और मधु से देना चाहिये। मात्रा ३ रत्ती

धात्री लौह—प्लीहा और यकृत के बढ़ने से रोगी को वमन हो रहा हो, अथवा अम्लपित्त रोग उत्पन्न होने से वमन होता हो तब यह औषध दिन में २ या ३ बार सेवन करनी चाहिये। अनुपान-पटोल पत्र रस और मधु। मात्रा ६ रत्ती

प्लीहा और यकृद् रोग में वेदना चिकित्सा

तिलाद्यलेप—(तिल, अलसी, एरण्डबीज, गौरसर्षप) इस लेप को यकृत

की वृद्धि के कारण वेदना, पार्श्वशूल, हृच्छूल और कास आदि होने से यकृत पर लगाना चाहिये।

शूलहरणयोग—यकृत और प्लीहा स्थान में वेदना अनुभव होती हो; अग्निमान्द्य, ज्वर, पार्श्वशूल आदि शिकायत रहती हो; यह औषध प्रातः जल के साथ सेवन करनी चाहिये। विविध शूल रोग में यह औषध उपकारी है। मात्रा २ रत्ती।

शंखादि चूर्ण—यकृत और प्लीहा में अत्यन्त वेदना उत्पन्न होने पर यह औषध देनी चाहिये; अग्निमान्द्य, उदावर्त्त, ज्वर आदि उपद्रव होने पर यह औषध उत्तम है। अनुपान-उष्ण जल। मात्रा ३ मासा

पाण्डु-कामला और हलीमक चिकित्सा

लोहयोग—पित्त प्रधान पाण्डु रोगी में शरीर में पीला वर्ण, ज्वर, दाह उपद्रव होने से यह औषध प्रातः और सायंकाल देनी चाहिये। कामला रोग और श्लैष्मिक पाण्डु रोग के लिये भी उत्तम है। अनुपान घृत और मधु। मात्रा ६ रत्ती से ३ मा०

विडङ्गादि लौह—पित्तज पाण्डु रोग में मल, मूत्र, नख और शरीर का रंग जब पीला पड़ जाये, ज्वर, दाह, उदर रोग उपस्थित हों, कामला रोग में मल-मूत्र-चर्म-नखादि में भी हल्दी का रंग दृष्टिगोचर होता हो; तब यह औषध प्रातः और सायं काल में देनी चाहिये। अनुपान-पुरातन गुड़। मात्रा २ रत्ती

नवायस चूर्ण—वातज पाण्डु रोग में मल-मूत्र-मुख-नख सम्पूर्ण शरीर में पीलापन दीखता हो; कामला या हलीमक के लक्षण दीख रहे हों; ज्वर, दाह, उदर रोग, शोथ उपस्थित हो; तब इस औषध का उपयोग प्रशस्त है। यह औषध प्लीहा ज्वर, यकृत, जीर्ण ज्वर, शोफ, पाण्डु-कामला में अतिशय उपयोगी है। अनुपान-मधु और घृत; प्रातः सायंकाल देनी चाहिये।

त्रिकत्रयादि लौह—वातज, पित्तज पाण्डु रोग, कामला रोग, कुम्भकामला रोग, हलीमक में रोगी की त्वचा, आँख, मुख, नख आदि पाण्डु, पीत या ईषत्कृष्ण हो जायें, उदर रोग, ज्वर भी रहे तब इस औषध को भोजन के आदि, मध्य और अन्त में देना चाहिये। प्रातः और सायं भी दे सकते हैं। ऊर्ध्वगत अम्लपित्त; परिणामशूल, पैत्तिकप्लीहा; प्रतमक श्वास; वातपित्त प्रधान जीर्णज्वर, रक्तगुल्म, उदर रोग में उपयोगी है। अनुपान-कोकिलाक्ष का रस। मात्रा २ रत्ती

पञ्चामृतलौह मण्डूर—पाण्डु, कामला, कुम्भकामला, हलीमक रोगों में उदर रोग, शोथ, मृदु ज्वर उपद्रव रूप में रहते हों; तब यह औषध प्रातः और सन्ध्या से पूर्व सेवन करानी चाहिये। प्लीहा, यकृत और उदर रोगी के लिये अतिशय लाभकारी है। प्लीहा या यकृत रोग में पाण्डु रोग के लक्षण उपस्थित होने पर यह औषध दी जाती है। अनुपान-तालमखाने का पत्र स्वरस।

पुनर्नवामण्डूर—पाण्डु या कामला रोगी को मृदु ज्वर, प्लीहा, यकृतवृद्धि इत्यादि उपद्रव रहते हों; तब यह औषध प्रातः और सायं पुनर्नवा रस या तालमखाने के रस से देनी चाहिये। मात्रा ४ आने से ८ आना

हरिद्राद्य घृत—पाण्डु, कामला या कुम्भकामला जब दीर्घ स्थायी हो जायें; रोगी की चक्षु, मुख, नख, मल, मूत्र पीले हो जायें, ज्वर, उदर रोग और शोथ आदि सब उपद्रव नष्ट हो जायें तब यह घृत अपराह्न में रोगी की अग्निबल परीक्षा करके गरम दूध से देना चाहिये।

व्योषाद्य घृत—मृत्तिकाभक्षण जनित पाण्डु रोग में रोगी की चक्षु, मुख आदि में पीलापन आ जाये; चक्षु आदि इन्द्रियों का तेज नष्ट हो जाये; रोगी को यह घृत अपराह्न में सेवन करना चाहिये। अनुपान-उष्ण दुग्ध।

पुनर्नवा तेल—पाण्डु कामला; हलीमक रोग चिरकाल स्थायी हो जाये, रोगी की आँख-नख आदि पीले दिखाई दें; तब रोगी के शरीर पर इस तैल की मालिश करनी चाहिये। रोगी को उदर रोग; कास, वमन आदि उपद्रव रहते हों; मृदु ज्वर, हाथ-पैर आदि में सामान्य शोथ दिखाई दे, तब इसका प्रयोग उत्तम है। पुरातन ज्वर में दीर्घकालीन शोथ रोग, प्रमेह, प्लीहादि जनित पाण्डु रोग, कामला रोग में यह तैल प्रयोग करना चाहिये।

पाण्डु-कामला में अतिसार की चिकित्सा

पीयूषवल्ली रस—पाण्डु या कामला में आम या रक्त से मिश्रित मल आता हो; रोगी को मृदु ज्वर और शोथ रहता हो; तब इस औषध को प्रातः मध्याह्न और सायंकाल में देना चाहिये। अनुपान-दग्धबिल्व और ईक्षुगुड़; रक्त संयुक्त मल होने पर अयापान का रस

जातिफलादि वटिका—पाण्डु या कामला रोग में मल पतला आता हो, आम आती हो, तब इस औषध को प्रातः और सायंकाल में देना चाहिये।

अतिसार के साथ शोथ, कास आदि उपद्रव उपस्थित होने पर यह औषध देना उत्तम है। अनुपान-जीरा चूर्ण और मधु अथवा मोथे का रस और मधु।

लोहपर्पटी—पाण्डु या कामला रोग में रोगी को तीव्र अतिसार तथा आम एवं रक्त मिश्रित मल पुनः पुनः निर्गत होता हो, तब इस औषध को प्रतिदिन प्रातः देना चाहिये। इस रोग में अतिसार के साथ हाथ-पैर आदि में शोथ हो, ज्वर आता रहे, कास होने पर यह औषध उत्तम है। इसका प्रारम्भ एक रत्ती से करके प्रतिदिन एक एक रत्ती बढ़ा दें। इस प्रकार दसवें दिन दस रत्ती देकर एक-एक रत्ती कम करके बीसवें दिन एक रत्ती देनी चाहिये। औषध सेवन काल में सैन्धव लवण और निरामिष भोजन सेवन करना चाहिये; प्यास लगने पर दूध पीना चाहिये; पानी नहीं। शोथ होने पर केवल दूध देना चाहिये। अनुपान-भूना जीरा चूर्ण और दूध; अथवा धनिया और जीरे का क्वाथ।

पंचामृतपर्पटी—पाण्डु, कामला रोग में तीव्र अतिसार होने पर, मल में आम और रक्त आने से, जल और नमक बन्द करके यह औषध देनी चाहिये। अतिसार के साथ ज्वर, शोथ वमन आदि उपद्रव रहने पर यह औषध देना उत्तम है। इसका प्रारम्भ दो रत्ती से करके प्रतिदिन एक एक रत्ती मात्रा बढ़ाकर ९ या १० रत्ती मात्रा औषध देनी चाहिये। पीछे एक रत्ती के अनुपात से इसका ह्रास करना चाहिये। अनुपात-घृत और मधु अथवा जीरा चूर्ण और दूध।

शोथ होने पर

शोथकालानल चूर्ण—पाण्डु या कामला रोग में हाथ-पैर आदि में शोथ होने पर इसके साथ ज्वर या अतिसार उपस्थित हो, तब इस औषध को प्रातः या अपराह्न में सेवन कराना चाहिये। यह औषध ग्रहणीनाशक और अग्निवर्धक है। अनुपान-तालमखाने के पत्तों का रस।

त्र्युषणाद्य लोह—पाण्डु या कामला रोगी के हाथ-पैर आदि पर शोथ होने पर यह औषध अपराह्न में देनी चाहिये। इस औषध से मूत्र अधिक आता है; जिससे शोथ कम हो जाता है। अनुपान-त्रिफला जल।

मलबन्ध होने पर

प्राणवल्लभ रस—पाण्डु-कामला रोग में मल शुद्धि न होने पर यह औषध प्रातःकाल एक बार देनी चाहिये। कोष्ठबद्धता के साथ ज्वर, शोथ आदि

उपद्रव होने पर यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से प्लीहा वृद्धि यकृत वृद्धि जलोदर और ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट हते हैं। यदि अधिक मल आये तो २-२ दिन पीछे औषध लेनी चाहिये। अनुपान-जल। मात्रा दो या ३ रत्ती

पाण्डुसूदन रस—पाण्डु या कामला रोग में मलबद्धता होने पर यह औषध प्रातः देनी चाहिये। अनुपान-शीतल जल।

पाण्डु-कामला रोगों में कृमिचिकित्सा

पाण्डु या कामला रोग में उदर के अन्दर कृमि होने से मल पतला, आम या रक्त से मिश्रित आता है। इस अवस्था में **विडंग लौह** को प्रातः और सन्ध्या काल में देना चाहिये। इससे कृमि के कारण वमन, नाभि प्रदेश पर वेदना, पतला मल; चक्षु-मुख में शोथ, ज्वर आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। कृमिजनित शूल और वमन आदि रोग में यह अति उपकारी है। अनुपान-शठी का रस, उदर में वेदना होने. पटोल पत्र रस।

कृमिकालानल रस—उदर में कृमि, पाण्डु, कामला रोग होने पर, अतिसार; चक्षु और मुख भाग में शोथ दीखने पर प्रातः और सायं यह औषध देनी चाहिये। यह अग्निवर्द्धक है। अनुपान-धनिया और जीरे का क्वाथ अथवा-शठी का रस।

कृमिभद्र वटिका—बालकों में उदर कृमि होने से पाण्डु या कामला रोग हो; हाथ-पैर-आँख पर शोथ, वमन, अग्निमान्द्य; अल्पज्वर आदि उपद्रव दीख रहे हों, तब इस औषध को देना चाहिये। शिशुवों के कृमि रोग में यह अतिशय उत्तम है। अनुपान-शठी का रस या स्वभाव से ही मलबद्धता होने पर चम्पा के पत्तों का रस।

पाण्डु रोग में सर्दि और कास चिकित्सा

महालक्ष्मी विलास—रोगी को अत्यधिक कास, सर्दि, तन्द्रा हो; या कफ-जन्य पाण्डु रोग में मन्दज्वर, अरुचि, सारे शरीर में भार बोध होता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-पान का रस या आर्द्रक रस।

श्लेष्मशैलेन्द्र रस—पाण्डु-कामला रोगी को अल्प ज्वर, सर्दि, कास, गले में दर्द; शरीर में भारीपन होने पर, इस औषध को प्रातः देना चाहिये। अनुपान-पान का रस और मधु अथवा सम्भालु के पत्ते का रस और मधु।

पाण्डु-कामला रोग में वमन चिकित्सा

सप्तामृत लौह—इस अवस्था में वमन होने से अरुचि, अल्प ज्वर, हाथ-पैरों पर शोफ आदि उपद्रव उपस्थित होने से यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-गाय का दूध।

धात्री लौह—वमन होने के साथ में अरुचि, ज्वर आदि उपद्रव होने पर इस औषध को प्रातः तथा अपराह्न में देना चाहिये। यह औषध अम्लपित्त और शूल में बरती जाती है। अनुपान-परवल पत्र रस और चीनी।

पाण्डु-कामला रोग में अरुचि चिकित्सा

आर्द्रक मातुलुंगावलेह—मुख में अरुचि, खान पान की अनिच्छा होने से यह औषध देने पर भूख बढ़ती है; अरुचि के साथ मृदु ज्वर, शोथ, कास, श्वास आदि उपद्रव रहने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-जल।

सुधानिधि रस—अरुचि होने पर यह औषध देनी चाहिये, इससे अन्न की चाह उत्पन्न होती है; अग्निमान्द्य और गात्र वेदना नष्ट होती है।

उदररोग-चिकित्सा

उदर की प्रथमावस्था में मृदु विरेचन तथा अग्निदीपक औषध देनी चाहिये, यथा-पुनर्नवादि क्वाथ, पुनर्नवादि चूर्ण, पटोलादि क्वाथ, रोग की द्वितीयावस्था में क्रमशः शोफ बढ़ने लगता है; इस अवस्था में जब रोगी बलवान् हो तब तीव्र विरेचक औषध देनी चाहिये, यथा-दुग्धवटी, इच्छाभेदी आदि। तृतीयावस्था में-शोथ अतिशय बढ़ जाता है और रोगी कृश होता है; इस अवस्था में विरेचक औषध नहीं देनी चाहिये; अपितु स्वर्णपर्पटी या रसपर्पटी का प्रयोग करना चाहिये।

पुनर्नवादि क्वाथ—वातोदर की प्रथमावस्था में रोगी को कोष्ठबद्धता, कुक्षिशोथ तथा कटिप्रदेश में वेदना, उदर में गुड़-गुड़ ध्वनि; हाथ-पैर में शोथ होने पर गोमूत्र में शोधित गुग्गुलु चार आना मिलाकर देना चाहिये। श्लैष्मिक और पैत्तिक उदररोग में भी यह क्वाथ दिया जाता है।

दशमूलादि क्वाथ—वातोदर रोगी में मलबद्धता, उदर, पार्श्व और कटि-भाग में वेदना होने पर आधा तोला एरण्ड तैल मिलाकर रोगी को प्रातः देना चाहिये।

देवदार्व्यादि क्वाथ—सान्निपातिक उदर में वातोदर या श्लैष्मिक उदर के लक्षण दीखते हों, तब रोग की प्रथमावस्था में गोमूत्र के साथ यह क्वाथ देना चाहिये; इससे शोथ नष्ट होता है और कृमि निकल जाते है।

पटोलाद्य चूर्ण—सब प्रकार के उदर रोगों में मलबद्धता; हाथ-पैर-उदर पर शोथ दीखने पर यह चूर्ण प्रथम एक दिन गोमूत्र के साथ देना चाहिये। औषध सेवन के पीछे मल साफ आने पर दो दिन तक त्रिकटु के साथ दूध का पाक करके दूध पीने को देना चाहिये। सातवें दिन फिर यही चूर्ण देना चाहिये। मात्रा २ तो०

इच्छाभेदी रस—वातिक, श्लैष्मिक और सन्निपातिक उदर रोगी में मलबद्धता होने पर जब रोगी बलवान हो, तब यह औषध देनी चाहिये। इससे पाँच सात बार मलत्याग होने पर कुछ शीतल जल देना चाहिये। अनुपान—बीहीदाने का रस।

दुग्धवटी—वातिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक या जलोदर रोगी में मलबन्ध रहने पर तथा रोगी के बलवान होने से यह औषध सात दिन तक देनी चाहिये। रोगी का अतिसार बन्द होने पर शालि चावल का भात और निर्जल दूध देना चाहिये। प्यास लगने पर केवल दूध ही पीलाना चाहिये। अनुपान-गोदुग्ध। मात्रा ३ रत्ती

जलोदरारि रस—जलोदर रोगी में मलबद्धता होने पर उदर में अधिक जल या शोथ होने पर रोगी को यह औषध प्रातः दी जाती है। इससे बार-बार अतिसार होने पर, रोगी के निर्बल होने से उसे तक्र मिश्रित अन्न प्रदान करना चाहिये। प्यास लगने पर थोड़ा २ तक्र पीना चाहिये। अनुपान-उष्ण जल। मात्रा २ रत्ती

पिप्पल्याद्य लोह—उदर रोगों में शोथ और अतिसार होने के साथ साथ जब पाण्डुता, कामला, ज्वर, कास आदि लक्षण उपस्थित हों; तब यह औषध प्रातः और अपराह्न में देनी चाहिये। पित्त की प्रबलता में इसका प्रयोग करना उचित है। अनुपान-पुनर्नवा का रस। मात्रा ३ रत्ती

स्वर्ण पर्पटी—सब प्रकार के उदर रोगों की तृतीयावस्था में अर्थात् जब रोगी दुर्बल हो; और उदर रोग की प्रबलता दीखे तब यह औषध प्रातः एक रत्ती मात्रा में आरम्भ करके क्रमशः एक रत्ती बढ़ाते हुए देनी चाहिये। इस प्रकार दस दिन देकर क्रमशः एक एक रत्ती कम करनी चाहिये। इस के साथ में लवण और जल का निषेध है। प्यास लगने पर निर्जल दूध और भोजन में मानमण्ड

देना चाहिये। उदर रोग के साथ ज्वर आदि उपद्रव रहने पर यह औषध बहुत उपकारी है। अनुपान-निर्जल पक्व गोदुग्ध एवं अतिसार में जीरा चूर्ण और मधु।

रसपर्पटी—उदर रोग की तृतीयावस्था में जब रोगी निर्बल हो और विरेचक औषध सेवन न कर सके, तब इस औषध को दो रत्ती मात्रा में प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक रत्ती मात्रा बढ़ाकर दस रत्ती पर्यन्त देना चाहिये; इसके पीछे प्रति दिन एक रत्ती मात्रा बढ़कर दस रत्ती पर्यन्त देना चाहिये, इसके पीछे प्रतिदिन एक रत्ती मात्रा कम करके दो रत्ती मात्रा पर ले आना चाहिये। लवण और जल का निषेध है; पथ्य में मानमण्ड। पर्पटी मृदुपाक लेनी चाहिये; अनुपान-गरम किया निर्जल दूध।

लोहपर्पटी—वातिक, पैत्तिक, सन्निपातिक तथा बद्धोदर रोगी अति दुर्बल, हो, उसे अतिसार एवं शोथ होने पर यह औषध १ रत्ती मात्रा में प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक रत्ती मात्रा बढ़ाकर दस रत्ती तक ले जाना चाहिये। फिर एक रत्ती कम करते जाना चाहिये; अनुपान और पथ्य अन्य पर्पटी के समान।

बिन्दुघृत—उदर रोगी को ज्वर, शोथ (द्रव वाली) तथा अन्य उपद्रव अधिक रहें, शरीर में अतिशय कृशता रहे; मलबन्ध रहता हो; उस समय यह घृत उपयुक्त औषध है। यह घृत अवस्थानुसार ४-५-६ अथवा अधिक बूँद दिया जाता है; यह घृत विरेचक है; अनुपान-गुनगुनाता दूध।

चित्रकघृत—प्लीहोदर या यकृद्दाल्युदर रोग में शोथ, द्रवसंचय, ज्वर, कोष्ठबद्धता, शरीर में दुर्बलता या कामला दीखता हो, तब इस घृत को प्रातःकाल में देना चाहिये, अनुपान-गरम दूध।

रसोनतैल—उदर व्याधि में जब शोथ, ज्वर आदि उपद्रव कम हो जायें; मलबन्ध रहता हो; तब यह तैल २५-३० बूँद प्रातः सेवन कराना चाहिये। इसके सेवन से उदावर्त्त अंत्रवृद्धि; कृमि, कुक्षिशूल; पार्श्वशूल उपद्रव नष्ट होते हैं। अनुपान-उष्ण दुग्ध।

उदराध्मान होने पर

कुष्ठादि चूर्ण—उदर रोगी को विशेषतः वातोदर या बद्धोदर रोगी में आध्मान होने पर यह औषध उष्ण जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

सामुद्राद्यचूर्ण—उदराध्मान होने पर इस औषध को प्रातः उष्ण जल के साथ देना चाहिये। मात्रा २ आना से ४ आना।

स्वल्प अग्निमुख चूर्ण—उदररोगी को जब मलबन्ध होने के साथ उदर में आध्मान हो तब यह चूर्ण प्रातः गरम पानी से दो आने से चार आना मात्रा में देना चाहिये।

उदररोगी को अतिसार होने पर

स्वर्णपर्पटी—अतिसार तथा सर्वांग शोफ होने पर एक रत्ती मात्रा से आरम्भ करके क्रमशः एक रत्ती बढ़ा कर दस रत्ती ले जाकर क्रमशः एक रत्ती कम करके यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-भूना हुआ जीरा चूर्ण और दुग्ध।

लोहपर्पटी—अतिसार, शोथ, तथा पाण्डु होने पर इस औषध को पर्पटी विधि से बरतना चाहिये। अनुपान-भुना जीराचूर्ण और दूध।

शोथ-चिकित्सा

कृष्णाद्य लेप—श्लैष्मिक शोथ रोग में रोगी का शोथ स्थान कठिन एवं पाण्डुवर्ण होने पर उस स्थान पर यह लेप बरतना चाहिये।

तिल लेप—आगन्तुक शोथ अर्थात् विषधर प्राणी के स्पर्श से उत्पन्न अथवा शस्त्रादि के आघात द्वारा शोथ उत्पन्न होने पर इस प्रलेप को लगाना चाहिये। शोथ के स्थान पर उष्णता एवं पित्त का आधिक्य होने पर अर्थात् जब दाह-उष्णिमा प्रतीत होता है, तब इसका प्रयोग किया जाता है।

पुनर्नवाद्य लेप—रोगी के हाथ-पैर आदि पर शोफ हो, तब इस लेप को कांजी के साथ पीसकर रोगी के शोथ स्थान पर लगाना चाहिये।

शालदल चूर्ण—भिलावे का तेल या रस शरीर पर लगाने से जब शोथ उत्पन्न हो तब शाल के पत्तों को धूप में सुखाकर उनका चूर्ण करके वस्त्र में छान कर लगाना चाहिये [इस अवस्था में नारियल का तेल या तिल को मक्खन में पीसकर भी लगाते हैं]।

फलत्रिकादि क्वाथ—अण्डकोष में शोथ दीखने लगे या रोगी में वायु और श्लेष्माजनित शोथ दीखता हो; तब यह क्वाथ देना चाहिये।

पुनर्नवाष्टक क्वाथ—रोगी के हाथ-पैरों पर शोथ ह्रास वृद्धिक्रम से

दीखता हो; इसके साथ में ज्वर, कोष्ठकाठिन्य प्लीहा और यकृतवृद्धि, पाण्डु या कामला रोग होने पर यह क्वाथ प्रातः सिद्ध करके सेवन कराना चाहिये।

पटोलादि क्वाथ—रोगी के हाथ-पैर या अन्य स्थानों पर शोथ दृष्ट होती हो, यह शोथ एक स्थान पर कम अधिक होती रहे; साथ में रोगी को ज्वर, कोष्ठकाठिन्य, पिपासा होने पर यह क्वाथ सिद्ध करके प्रातः देना चाहिये, इसमें गुग्गुलु चार आना मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है। प्लीहा, यकृत, व्रण आदि द्वारा समाश्रित शोथ में उपकारी है।

पथ्यादिक्वाथ—रोगी के हाथ-पैर-मुख पर शोथ दिखाई देता हो, शोथ के साथ ज्वर, कास, प्लीहा या यकृत वृद्धि होने यह पर क्वाथ रोगी को प्रातःकाल देना चाहिये।

त्र्युषणाद्य लोह—रोगी के हाथ-पैर-मुख या सर्वांग पर शोथ दिखाई देता हो, इसक साथ में ज्वर, कास या अतिसार आदि उपद्रव हों तब इस औषध को प्रातः सायं देना चाहिये। इससे मूत्र का परिमाण बढ़कर शोथ नष्ट होता है। रोगी में रक्तहीनता दीखती हो या वात-पित्त प्रधान कृश शरीर में शोथ दिखाई देता हो; तब यह औषध अतिशय उपकारी है। अनुपान-त्रिफला समान मात्रा में, जल में भिगोकर हिम कषाय।

शोथकालानल रस—रोगी के हाथ-पैर-मुख पर शोथ होने पर साथ मे ज्वर, कास, श्वास, प्लीहा, यकृत वृद्धि आदि उपद्रव हों, अग्निमान्द्य; अतिसार दीखता हो, तब इसको बरतना चाहिये। शोथ के साथ ज्वर और अतिसार य उदर रोग दीखता हो तब यह औषध विशेष लाभप्रद है। अनुपान—कोकिलाक्ष पत्ते का रस और मधु।

शोथाङ्कुररस—रोगी के हाथ पैर पर शोथ हो, जीर्णज्वर, विषमज्वर, पाण्डु कामला आदि दीखता हो, तब रोगी को पुनर्नवा के रस और मधु के साथ यह औषध दो रत्ती मात्रा में देनी चाहिये।

पंचामृत रस—रोगी के हाथ-पैर आदि पर शोथ होने पर तथा अग्निमान्द्य, ज्वर, शिरःशूल या अतिसार होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये वातश्लेष्म प्रधान शरीर में यह औषध अतिशय उत्तम है। अनुपान—बिल्वपत्र रस और मधु, मलबन्ध होने पर आर्द्रक रस और मधु।

दुग्धवटी—रोगी के हाथ-पैर आदि पर शोथ दिखाई देता हो, अतिसार, ग्रहणी रोग प्रबल हो तथा अल्प ज्वर रहता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन काल में नमक और जल नहीं देना चाहिये; केवल निर्जल दूध और तण्डुल भात देना चाहिये। प्यास लगने पर निर्जल दूध देना चाहिये।

क्षेत्रपाल रस—हाथ-पैर आदि पर शोथ दीखने पर, ज्वर की तीव्रता रहने पर यह औषध देनी चाहिये। इस औषध को प्रातः भूने हुए जीरे और दूध से देना चाहिये; औषध सेवन काल में लवण और जल निषेध है; दूध और पुराने चावल देना चाहिये।

हरगौरी रस—हाथ-पैर-मुख आदि पर सर्वांग शोथ होने पर तथा इसके साथ में अल्प ज्वर और अतिसार रहता हो; तब यह औषध जीरा चूर्ण और गोदुग्ध से देनी चाहिये। नमक और जल वर्जित है।

दधिवटी—रोगी के हाथ-पैर-मुख आदि पर शोथ की अल्पता रहे, पाण्डु, कामला, अतिसार, ज्वर रहता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवनकाल में नमक और जल का निषेध है; दधि और अन्न पथ्य है। कास होने से यह औषध नहीं देनी चाहिये। पाण्डु और कामलाश्रित शोथ में यह औषध दी जा सकती है।

तक्रमण्डूर—रोगी के हाथ-पैर-मुख आदि पर शोथ होने से, इसके कारण पाण्डु, ज्वर आदि उपद्रव दीख रहे हों; तब नमक और जल बन्द करके यह औषध देनी चाहिये। पथ्य—तक्र मिश्रित और अन्न। प्यास लगने पर तक्र पीने को देना चाहिये। अनुपान—कसेरु का रस। मात्रा २ रत्ती।

सुधानिधि रस—रोगी के हाथ-पैर-मुख आदि पर शोथ थोड़ा रहता हो; साथ में अतिसार, ग्रहणी, पाण्डु, कामला आदि उपद्रव, ज्वर रहता हो, तब लवण और जल के बिना यह औषध देनी चाहिये। पथ्य-तक्र मिश्रित अन्न, प्यास लगने पर तक्र पिये।

रसपर्पटी—रोगी के हाथ-पैर-मुख पर शोथ होने पर इसके कारण प्लीहा वृद्धि, कास आदि उपद्रव होने पर प्रथम दिन २ रत्ती मात्रा देकर प्रतिदिन एक रत्ती मात्रा बढ़ा कर दस रत्ती पर्यन्त ले जायें; फिर इसको क्रमशः एक रत्ती कम करके असली २ रत्ती मात्रा पर ले आयें। अनुपान दूध; अतिसार होने पर धनिया और जीरे का क्वाथ।

लोहपर्पटी—हाथ-पैर-मुख या सर्वांगशोफ होने पर इसके साथ में अल्प ज्वर, अतिसार, कास, सूतिका ग्रहणीरोग, प्रवाहिका, पाण्डु, कामला आदि उपद्रव दृष्ट हो रहे हों; तब १ रत्ती से आरम्भ करके दस रत्ती पर्यन्त एक रत्ती बढ़ाकर ले जायें फिर इसी क्रम से लम करें। औषध सेवन काल में दुग्धान्न देना चाहिये। प्यास के समय दूध दें; शोथ अधिक होने पर मानमण्ड देना उत्तम है।

पुनर्नवादि तैल—वातिक-पैत्तिक-श्लैष्मिक; सान्निपातिक, द्वन्द्वज शोथ रोगी के कास, श्वास आदि उपद्रव नष्ट हो जायें; तथा स्थान विशेष पर अल्पशोथ रह गया हो; तब इस तैल की सारे शरीर पर मालिश करनी चाहिये; शोथ रोगी को जीर्ण ज्वर; कास, पाण्डु, कामला, प्लीहा, यकृत वृद्धि हो तो तैल मलना उत्तम है।

शुष्कमूलाद्य तैल—शोथ रोग में अतिसार, कास, श्वास आदि उपद्रव कम हो जायें तथा अग्निबल प्रबल हो, रोगी के स्थान विशेष में शोथ लक्षित होता हो, तब तैल सारे शरीर पर मलना चाहिये।

उपद्रव चिकित्सा—शोथ रोग में अतिसार होने पर दुग्धवटी, रसपर्पटी और स्वर्णपर्पटी वरतनी चाहिये।

कास होने पर

पुरसुन्दरीवटी—रोगी के शरीर में शोथ होने पर उसके साथ कास हो; कफ थोड़ा निकलता हो; तब इस औषध को वासकपत्र रस और मधु के साथ देना चाहिये।

तरुणानन्दरस—शोथ होने पर कफ थोड़ा निकलता हो; शुष्क कास रहता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से कास और उसके साथ में श्वास का प्रकोप एवं जीर्णज्वर ये इससे नष्ट होते हैं। अनुपान-वासक पत्र रस और मधु।

चन्द्रामृतरस—रोगी के सब अंगों में हाथ-पैर आदि पर शोफ होने पर कफ सूखा होने से थोड़ा बाहर आता हो, या पतला निकलता हो; तब यह औषध पान के रस और मधु के साथ देनी चाहिये।

कास चिकित्सा

पंचमूलादि क्वाथ—वातजन्य कास में कास के शुष्क होने पर एवं रोगी के दोनों पार्श्वों में तथा शिर में वेदना एवं स्वरभंग दीखता हो; तब यह क्वाथ प्रातः

सिद्ध करके उसमें पिप्पली चूर्ण २ आना प्रक्षेप देकर रोगी को पिलाना चाहिये। यह क्वाथ वातज कास में बहुत उपकारी है। ज्वर होने पर भी इसको दिया जा सकता है।

बृहत्यादि क्वाथ—पैत्तिक कास में मुख का स्वाद तिक्त रहे, ज्वर, दाह आदि लक्षण दीखते हों तब यह क्वाथ सिद्ध करके इसमें ईक्षु चीनी और मधु मिलाकर रोगी को पीने के लिये देना चाहिये

द्राक्षाद्यवलेह—पैत्तिक कास में कफ का अनुबन्ध दीखने पर अर्थात् कास में गाढ़ी श्लेष्मा आती हो; शरीर में भारीपन रहता हो, रोगी का मुख तिक्त तथा कास के कारण बार-बार वमन होता हो; तब यह औषध घृत और मधु के साथ देनी चाहिये।

पुष्करादिक्वाथ—कफ जन्य कास रोग में रोगी के शिर में भारीपन, आहार में अरुचि, शरीर में भार बोध एवं इसके कारण ज्वर, श्वास में प्रबलता दीखती हो; तब इस क्वाथ को प्रातः सिद्ध करके देना चाहिये। ज्वर और कास के साथ श्वास की प्रबलता रहने पर यह क्वाथ उत्तम है।

ककुभाद्ययोग—क्षतज कास या क्षय कास रोग में कास के साथ पूय से युक्त रक्त अथवा केवल रक्त निकलता हो तब इस औषध को घृत, मधु और चीनी के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिये।

पिप्पल्याद्यचूर्ण—कास में केवल श्लेष्मा निकलती हो; अथवा रोगी में श्वास रोग प्रतीत हो तब इसको घृत और मधु के साथ चटाना चाहिये।

एलादि चूर्ण—पैत्तिक कास में रोगी के मुख में तिक्तता; क्षय कास के रोग के कारण वमन और ज्वर आदि उपसर्ग दीखते हों, या क्षतज या कास रोगी के मुख से केवल रक्त या पूय मिश्रित रक्त आता हो; तब यह चूर्ण उष्ण जल के साथ देना चाहिये। रक्तपित्तरोग तथा यक्ष्मा रोग में यह औषध बरती जाती है। रक्त आने पर अनुपान-शीतल जल।

समशर्कर चूर्ण—कास रोगी के शरीर में वेदना, पार्श्ववेदना, ज्वर, मुख में तिक्तता, तथा घट्ट श्लेष्मा निकलता हो अथवा कास वेग के कारण वमन हो तब इस चूर्ण को जल के साथ देना चाहिये। यह चूर्ण अग्निवर्धक; कासरोग में अग्निमान्द्य एवं अतिसार होने पर यह चूर्ण बरता जाता है। अनुपान-गरम जल।

तालीशाद्य चूर्ण—पैत्तिक कास रोगी के मुख में तिक्तता; ज्वर, हृदय में दाह, कास के निरन्तर वेग के कारण रोगी को वमन होता हो, शरीर में भारीपन आदि लक्षण हों, तब इस चूर्ण को वेग के समय जल के साथ देना चाहिये। कास की अधिकता से श्वास, अरुचि आदि लक्षण होने पर एवं अतिसार, हृदयरोग, या यक्ष्मा आदि रोगों में यह दिया जाता है।

मनःशिलाद्यधूम—रोगी को निरन्तर कास रहता हो; एवं कास के कारण श्वास, वमन, ज्वर आदि लक्षण दीखते हों, रोगी को यह धूमपान कराना चाहिये। धूमपान के पीछे गुड़मिश्रित दूध सेवन कराना चाहिये। यह औषध छोटी आयु के बच्चों को नहीं देनी चाहिये।

मनःशिलाधूम—रोगी को कास का वेग प्रबल हो एवं कास वेग के कारण वमन, श्वास आदि लक्षण दीखते हों; उसे यह धूम देकर पीछे से गायका दूध पिलाना चाहिये।

अगस्त्य हरीतकी—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक कास के सब लक्षण होने पर, रोगी को ज्वर, मलबद्धता, कास की अधिकता से श्वास, हृदय में वेदना, अरुचि आदि लक्षण दीखते हों; यह औषध उपयोगी है। दीर्घकालव्यापी कास में शीर्ण शरीर वाले रोगी के लिये यह उत्कृष्ट रसायन है। हृदय रोग और कास रोग में यह औषध देने से लाभ होता है।

कण्टकार्याद्यवलेह—वातिक कास में रोगी को अल्पज्वर, कास वा श्लेष्मा विहीन शुष्क कास, कास के कारण पार्श्ववेदना, हृदय में शूल आदि लक्षण दीखते हों, कास दीर्घ कालव्यापी हो तब यह औषध देनी चाहिये। विशेष कर कास के कारण श्वास का वेग प्रबल होने पर यह अतिशय उपकारी है। प्रतमक श्वास, कास, हिक्का आदि में यह औषध उत्तम है।

वासावलेह—क्षतज कास, क्षयज कास में रोगी को कास के साथ में ईषत्कृष्णवर्ण या विशुद्ध रक्त निकलता हो; या केवल मुख से रक्त निःसृत होता हो; पार्श्व और हृदय में वेदना, ज्वर, हृदय में दाह आदि उपद्रव रहते हों; तब यह औषध देनी चाहिये। वातश्लेष्म प्रधान कास रोग में कास वेग के कारण श्वास अवस्था दीखती हो, तब यह औषध देनी चाहिये। ऊर्ध्वगत रक्तपित्त में, मुख, नासिका आदि से रक्त आता हो, साथ में ज्वर भी रहता हो अथवा श्वास कास रोग में यह देने योग्य है। अनुपान-उष्ण जल।

कासकुठार—श्लैष्मिक कास रोग में गाढ़ा या तरल श्लेष्मा मुख से निकलता हो; वातिक कास थोड़े दिनों का हो; इस कास के कारण वक्षःस्थल, पार्श्व-देश तथा मस्तक में वेदना एवं ज्वर अनुभव होता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—कोष्ठकाठिन्य होने पर आर्द्रक रस और सैन्धव लवण अथवा तुलसीपत्र रस और सैन्धव लवण।

अमृतार्णव रस—वातिक कास में रोगी को निरन्तर कास का वेग प्रबल हो और श्लेष्मा रहित खांसी शुष्क होती हो; कास वेग के कारण हृदय, पार्श्व, शिर में दर्द होती हो तब यह औषध मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये। कास के साथ ज्वर होने पर यह औषध देनी चाहिये।

चन्द्रामृत रस—कास का वेग निरन्तर बना रहे तथा गाढ़ा या पतला श्लेष्मा अधिक परिमाण में निकलता हो; मुख में तिक्तता, तृष्णा, जीर्णज्वर आदि उपद्रव विद्यमान होने पर इस औषध को देना चाहिये। कास के कारण हृदय एवं वक्षःस्थल में वेदना तथा कास के साथ रक्त निकलता हो; श्वास भी रहता हो, तब इसका सेवन कराना चाहिये। अनुपान-पान का रस और मधु अथवा वासक पत्र रस और मधु या पिप्पली चूर्ण और मधु, मलबन्ध होने पर आर्द्रक रस और सैन्धव लवण।

चन्द्रामृतलौह—पैत्तिक कास में मुख में तिक्तता, विशेष कर प्यास, वमन आदि उपद्रव रहते हों, क्षतज कास में रक्त वमन होता हो; तब इस औषध को वासक पत्र रस और मधु के साथ देना चाहिये। रक्त वमन होने पर दूर्वा रस और मधु के साथ प्रयोग करना चाहिये।

शृंगाराभ्र और सार्वभौम रस—श्लैष्मिक कास में, पैत्तिक कास में और क्षय कास में रोगी को गाढ़ी श्लेष्मा अथवा रक्त मिश्रित श्लेष्मा आता हो; मुख का स्वाद मधुर या तिक्त रहता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। कास के प्रकोपकाल में रोगी को ज्वर, पार्श्वशूल, हृच्छूल, शरीर में कृशता प्रभृति लक्षण विद्यमान होने पर इसे देना उत्तम है। जिस कास रोगी में अग्निदुर्बल एवं मुख से दुर्गन्ध युक्त श्लेष्मा निकलता हो; वमन और श्वास का प्रकोप हो; तब यह औषध देनी चाहिये। यह अतिशय बलवर्धक है, यक्ष्मा रोग में यह औषध दी जा सकती है। इस औषध से श्लेष्मा का परिपाक हो जाता है और कास वेग शनैः शनैः कम हो जाता है। वात

श्लेष्मा प्रधान रोगी के लिये यह अतिशय उपकारी है। अनुपान-आद्रक रस और मधु; पान का रस और मधु; अथवा वासक पत्र रस और मधु।

कासलक्ष्मीविलास—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, क्षयकास में रोगी को ज्वर, हृदय-पार्श्व में वेदना; शरीर में अतिशय कृशता; पुनः पुनः कास के प्रकोप से श्वास की प्रबलता, मुख से घन श्लेष्मा निकलती हो, मुख में तिक्तता, शरीर में पाण्डुता, प्रमेह दोष, हाथ-पैर में शोथ आदि उपद्रव दीखते हों तब यह औषध देनी चाहिये। कास रोगी में जीर्ण शरीर रोगी को इस औषध से विशेष लाभ होता है। अनुपान-शीतल जल।

विजय भैरव रस—कास रोगी में श्वास की प्रबलता और कोष्ठकाठिन्य होने पर तथा हृदय-पार्श्व और सर्वांग में वेदना रहने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। कास के साथ में ज्वर, प्लीहा या यकृत वृद्धि तथा पाण्डुता रहने पर यह औषध देना लाभप्रद है, परन्तु क्षय तथा क्षतज कास में यह औषध कभी भी नहीं देनी चाहिये; अनुपान-आर्द्रक रस और मधु।

जया गुटिका—कास रोग में श्वास की प्रबलता और कोष्ठकाठिन्य रहने पर, जीर्ण ज्वर, प्रमेह दोष, शरीर में वेदना आदि लक्षण होने से यह औषध देनी चाहिये। पुरातन सूतिका रोग मे कास रहने पर यह गुणकारी औषध है। दुर्बल, क्षतज और क्षयसंक्रान्त रोगी को यह औषध नहीं देनी चाहिये। कास रोग में पाण्डुता, कामला, अरुचि, हृदय में वेदना, प्लीहा-यकृत वृद्धि रहने पर यह औषध लाभप्रद है; अनुपान-आर्द्रक रस और मधु।

काञ्चनाभ्र रस—क्षय कास रोगी को पूय या रक्त मिश्रित श्लेष्मा आने से, हृदय एवं पार्श्व में वेदना रहने से, प्रबल ज्वर तथा प्रमेह दोष-शुक्र क्षीण आदि शिकायतें रहने पर यह औषध पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ सेवन करानी चाहिये। यह बल और पुष्टिजनक है। पैत्तिक और श्लैष्मिक कास में रोगी को प्रबल ज्वर और शरीर में कृशता रहने से इसका प्रयोग करना चाहिये।

नित्योदय रस—वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक कास दीर्घ काल तक रहे; इसके साथ में ज्वर, अरुचि या प्रमेह आदि उपद्रव रहें अथवा क्षय या राज यक्ष्मा के सम्पूर्ण लक्षण दीखते हों, तय यह औषध देनी चाहिये। कास रोग के प्रकोप के कारण हृदय-पार्श्व आदि स्थानों में वेदना एवं स्वरभंग हो तब यह औषध देनी

चाहिये। विशेष करके पुरातन कास रोग के साथ जीर्ण ज्वर, प्रमेह, पाण्डु अथवा कामला दोष रहने पर यह औषध अतिशय उपकारी है। यह पुष्टिकारक और बलवर्धक है। अनुपान-श्लेष्मा के पतला होने पर पिप्पली चूर्ण और मधु, श्लेष्मा शुष्क हो तथा साथ में श्वास की प्रबलता रहे; तब तुलसीपत्र रस और सैन्धव लवण, कास के साथ रक्त मिश्रित कफ निकलता हो, तब वासापत्र रस और मधु।

वसन्ततिलक रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक-क्षय अथवा क्षतज कास के रोगी का शरीर अतिशय कृश हो तब यह औषध देनी चाहिये। पूय या रक्त मिश्रित कफ अथवा अधिक परिमाण में कफ निकलता हो; या कास के साथ श्वास की प्रबलता रहती हो तब यह औषध देनी चाहिये। कास दीर्घ काल व्यापी तथा रोगी का शरीर अतिशय कृश होने पर रोगी की बलरक्षा करने के लिये यह औषध देनी चाहिये। इससे शरीर का बल बढ़ता है। श्लेष्माधिक या वातश्लेष्माधिक हृद्रोग में, तमक श्वास रोग में एवं पुरातन कास के साथ ज्वर तथा प्रमेह रोग रहने पर यह औषध उपकारी है। अनुपान-वासकपत्र रस और मधु।

च्यवन प्राश—वातिक कास के पुराना होने पर तथा कास के साथ श्वास की प्रबलता रहने पर यह औषध देनी चाहिये। जो व्यक्ति कास के प्रकोप के कारण शरीर में अतिकृश हो जायें उनके लिये यह औषध बहुत उपयोगी है। क्षयकास या क्षय कास रोग में पूय या रक्तमिश्रित कफ निकलता हो; ज्वर या अन्य उपद्रव न हों तब यह औषध देनी चाहिये। पुरातन कास रोग में वायु या पित्त की प्रबलता, प्रमेह दोष रहने पर यह औषध देना उत्तम है। वृद्ध व्यक्तियों के कास रोग की बहुत उत्तम दवा है। बालकों में भी अवस्था भेद से प्रयोग कर सकते हैं। तमक श्वास रोग से कृश एवं दुर्बल वात-पित्ताधिक रोगी के लिये, हृद्रोग तथा यक्ष्मारोग में यह बरती जाती है। यह औषध अतिशय अग्नि-बलवर्धक एवं पुष्टि कर हैं। अनुपान-मधु।

दशमूल षट्पलक घृत—वातज कास रोग की पुरातन अवस्था में मलबन्ध, शरीर में कृशता एवं कास के प्रकोप से श्वास अवस्था, हृदय और पार्श्व में दर्द; तथा श्लैष्मिक कास में कृशता और गाढ़ा श्लेष्मा बाहर आता हो, तब यह घृत देना चाहिये। यदि कास रोगी को अतिसार, ज्वर, शोथ आदि उपद्रव हों तब यह घृत रोगी को कभी भी नहीं देना चाहिये। जिनकी अग्नि प्रबल हो और

घृत सेवन से पतला मल जिनको न आये; उनको यह घृत देना चाहिये। अनुपान—गरम दूध।

छागलाद्य घृत—वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक कास की पुरातन अवस्था में शरीर के अतिकृश होने पर मलबन्ध, हृदय-पार्श्व में दर्द; श्वास, जीर्ण ज्वर दीखने पर यह घृत देना चाहिये। क्षतज और क्षय कास रोग में श्लेष्मायुक्त पूय या रक्त अथवा श्लेष्मा रहित रक्त निकलता हो; रोगी का शरीर अतिकृश होने पर यह घृत बहुत उपयोगी है। जिन रोगीयो में कास के साथ में अतिसार, प्रबल ज्वर, हाथ-पैर आदि पर शोथ आदि उपद्रव हों; उनको यह घृत नहीं देना चाहिये। यह घृत अतिशय बलवर्धक, मांसवर्धक, हृद्रोग और क्षयरोग में बरता जाता है। अनुपान-गरम दूध।

वासाचन्दनादि तैल—पुरातन कास रोग में रोगी का शरीर कृश, जीर्ण ज्वर, पाण्डु, कामला आदि उपद्रव साथ में रहते हों, तब यह तैल रोगी के शरीर पर मालिश करना चाहिये। कास की प्रबलता के कारण श्वास, मलबन्ध रहता हो; तब २० से ३० बूंद गरम दूध के साथ देना चाहिये। इस तेल का यक्ष्मा और रक्त पित्त रोग मे व्यवहार किया जा सकता है। कास के साथ में ज्वर, शोथ, अतिसार आदि लक्षण होने पर यह तैल मर्दन या पान नहीं कराना चाहिये। वाताधिक तथा कृश व्यक्ति के लिये यह तैल बहुत उपयोगी है; वातिक कास, क्षय कास, क्षतज कास एवं तमक श्वास रोग तथा पुरातन श्वास रोग में यह तैल प्रयोग करना चाहिये।

उपद्रव चिकित्सा

कासरोग में पाण्डु और कामला होने पर

नवायस चूर्ण—पैत्तिक क्षय या क्षतज कास में विविध कारणों से पाण्डुता या कामला दीखने पर यह औषध देनो चाहिये। कास के साथ में ज्वर, दाह; शरीर में कृशता एवं पित्त का प्रकोप दीखता हो, तो यह औषध देने से बहुत लाभ होता है।

अष्टादशांग लौह—कास रोगी मे विविध कारणों से पाण्डु या कामला दीखने पर एवं इसके साथ में रोगी को अतिसार, ज्वर, शोथ, प्रमेह तथा अन्यान्य उपद्रव दीखने पर यह औषध देनी चाहिये। वातपित्ताश्रित कास

में तथा क्षय एवं क्षतज कास में कामला या पाण्डुता दीखने पर यह औषध देने से विशेष लाभ होता है।

कास रोग में रक्तवमन आने पर

एलादि गुटिका—क्षतज या क्षयज कास में रक्त वमन होता हो अथवा रक्त मिश्रित श्लेष्मा निकलता हो; तब इस औषध को प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल अथवा अवस्था भेद से प्रतिदिन दो या तीन बार सेवन कराना चाहिये। अनुपान—उष्ण जल।

वासाखण्ड—क्षतज या क्षयज कास में रक्त वमन या रक्तमिश्रित कफ निकलता हो; इसके साथ में श्वास की प्रबलता; कोष्ठकाठिन्य, कास आदि उपद्रव रहते हों; तब यह औषध देनी चाहिये। यह कास, प्रतमक श्वास; यक्ष्मा, ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त रोग में अति उत्तम है; पुष्टिकर और बलवर्धक। अनुपान-जल।

शतमूल्याद्य लोह—वात पित्त प्रधान रोगी को पैत्तिक कास रोग में वमन एवं श्लेष्मा मिश्रित रक्त वमन अथवा केवल मात्र रक्त वमन निकलता हो; उसे यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—कच्ची दूर्वा का रस और मधु।

कास रोग में स्वरभंग होने पर

भैरवरस—कास रोग की प्रथमावस्था में जब स्वरभंग और श्वास का प्रकोप होने से एवं गाढा श्लेष्मा अधिक मात्रा में निकलता हो, तब यह औषध देनी चाहिये।

राजयक्ष्मा रोग चिकित्सा

अश्वगन्धा क्वाथ—क्षयरोग में पार्श्व आदि में वेदना, ज्वर, रक्तवमन आदि लक्षण दीखने पर यह क्वाथ प्रातः रोगी को देना चाहिये; मांस यूष और दूध पथ्य देना उत्तम है।

त्रयोदशांग क्वाथ—यक्ष्मा रोगी को पार्श्व वेदना, ज्वर, श्वास आदि उपद्रव रहने पर यह क्वाथ प्रातः देना चाहिये।

शृंगार्जुनाद्य चूर्ण—यक्ष्मा रोगी को पार्श्व में या वक्षःस्थल में वेदना, कास एवं श्वास आदि उपद्रव दीखने से यह औषध घृत और मधु के साथ देनी चाहिये।

बलादि चूर्ण—उरःक्षत रोगी में रक्त एवं पूयमिश्रित कफ निकलने पर

एवं शरीर में अतिशय कृशता दीखने पर यह औषध दूध के साथ प्रति दिन देनी चाहिये।

यक्ष्मारि लौह—उरःक्षत, व्यायाम शोष, यक्ष्मा रोग में रोगी को रक्त एवं पूय मिश्रित श्लेष्मा निकलने पर तथा शरीर के अतिशय कृश होने पर, वात पित्त की प्रबलावस्था में यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-दूध।

क्षय केशरी—यक्ष्मा, उरःक्षत तथा व्यायाम शोष रोगी में रक्त एवं पूय मिश्रित कफ निकलने पर तथा शरीर के अतिकृश होने पर, अतिसार, शोथ दीखने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-वासापत्ररस और मधु।

वसन्त मालती रस—जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, कास, अनुलोमज या प्रतिलोमज राजयक्ष्मा में वायु की अधिकता; शरीर में रूक्षता, क्रमशः क्षय के लक्षण प्रकाशित होने पर यह औषध देनी चाहिये, यह अतिशय पुष्टिकारक, ज्वर, कास और क्षय निवारक है। अनुपान-पिप्पली चूर्ण और मधु।

मृगाङ्क रस—यक्ष्मा या उरःक्षत रोगी को मृदु ज्वर, वक्षःस्थल और पार्श्व में वेदना, प्रमेह, रक्त एवं पूय संयुक्त कफ निकलता हो; शरीर अतिकृश होने पर यह औषध देनी चाहिये। औषध सेवन काल में रोगी को मांस यूष एवं बकरी का दूध मुख्य रूप से देना चाहिये। अनुपान-मरिच चूर्ण और मधु अथवा पिप्पली चूर्ण और मधु।

राजमृगाङ्क रस—यक्ष्मा रोग में व्यायाम शोष या उरःक्षत रोग में रोगी को केवल कफ ही निकलता हो; इसके साथ तीव्र या मध्यम ज्वर, श्वास, वक्षःस्थल या पार्श्व में दर्द; मस्तक में वेदना, प्रमेह, स्वरभेद, अरुचि आदि उपद्रव दीखते हों तब यह औषध देनी चाहिये। ज्वर, प्रमेह आदि उपद्रव होने पर इसके देने से विशेष लाभ होता है। अनुपान-पिप्पली चूर्ण और मधु।

वसन्ततिलक रस—यक्ष्मा, उरःक्षत रोग, अन्यान्यशोष रोग में जब रोगी को नाना प्रकार की श्लेष्मा निकलती हो, पूयादि से मिला कफ आता हो; इसके साथ में वक्षशूल या पार्श्वशूल, मध्यम ज्वर, श्वास, प्रमेह आदि उपद्रव दीखते हों, रोगी अति कृश, दुर्बल हो; तब उसको यह औषध देनी चाहिये। यह शरीर के लिये पुष्टिवर्धक है। अनुपान-पिप्पली चूर्ण और मधु अथवा वासकपत्र रस और मधु।

कांचनाभ्र रस—यक्ष्मा रोगी को या उरःक्षत रोगी को कफ के साथ रक्त या पूय निकलता हो अथवा केवल कफ निकलता हो तथा इसके साथ प्रबल ज्वर, श्वास, प्रमेह; स्कन्ध एवं पार्श्व देश में वेदना आदि उपद्रव रहते हों; तथा पित्त एवं कफ की प्रबलावस्था में यह औषध देनी चाहिये। यक्ष्मारोगी को प्रबल ज्वर; प्रमेह आदि उपद्रव रहने पर यह औषध बहुत उपयोगी है। अनुपान-पिप्पली चूर्ण और मधु।

सार्वभौम रस—यक्ष्मा रोग में रोगी को कास के साथ अधिक श्लेष्मा निकलता हो; साथ में ज्वर, प्रमेह, अग्निमान्द्य, श्वास, शिर में भारीपन, स्वरभेद; वक्षस्थल तथा पार्श्वभाग में वेदना रहती हो, वात-कफ की प्रबल अवस्था में यह औषध देनी चाहिये। यक्ष्मा रोग की पुरानी अवस्था में ज्वर तथा अन्य उपद्रव अल्प होने पर यह औषध दी जा सकती है। अनुपान-वासकपत्र रस और मधु।

च्यवनप्राश—यक्ष्मा या अन्यान्य शोष अथवा उरःक्षत रोग में रोगी को श्वास, प्रमेह, वक्षःस्थल तथा पार्श्व में वेदना, रक्त या पूयमिश्रित कफ के निकलने से, स्वरभंग, शिर में भारीपन आदि उपद्रव दीखते हों; तब कृश व्यक्ति को यह देना चाहिये। यक्ष्मा, उरःक्षत रोगी में कफ की प्रबलावस्था में एवं ज्वरादि उपद्रव प्रबल होने पर यह औषध नहीं देनी चाहिये। रोग की पुरानी अवस्था में अथवा वृद्ध व्यक्ति को यह औषध देनी चाहिये। कृश, बालक, युवा व्यक्ति को वायु और पित्त की प्रबलावस्था में इसके सेवन कराने से लाभ होता है। यह औषधि नाना रोगों में बरती जाती है यह बलवर्धक है। अनुपान-मधु।

छागलाद्यघृत—यक्ष्मा, व्यायाम शोष, व्यवाय शोष, अध्वशोष तथा उरःक्षत रोग में रोगी के शरीर में अतिशय कृशता हो जाने पर एवं पूय या रक्त मिश्रित कफ के निकलने पर, विशुद्ध फेनवत् श्लेष्मा खांसी में निकलती हो; साथ में प्रमेह, अल्प ज्वर, वक्ष और पार्श्व में वेदना, स्वरभङ्ग, पाण्डु, कामला, आदि लक्षण उपस्थित होने पर यह घृत रोगी को देना चाहिये। यक्ष्मा या अन्यान्यशोष रोग में रोगी को अतिसार, शोथ या श्वास की प्रबलता रहने पर यह घृत रोगी को नहीं देना चाहिये। पाचकाग्नि प्रबल होने पर घृत सेवन करना चाहिये यह घृत क्षत कास और रक्तपित्त रोग में रोगी की निर्बलावस्था में प्रयोग नहीं करना चाहिये। अनुपान-ईषदुष्ण दुग्ध।

बृहत् अश्वगन्धा घृत—यक्ष्मा, उरःक्षत, व्यवायशोष, अध्वशोष तथा अन्यक्षय रोग में रोगी का शरीर अतिकृश हो, रक्त या पूय मिश्रित कफ खासी में निकलता हो; इसमें झाग की अधिकता रहे; वक्षस्थल, पार्श्व और स्कन्ध में वेदना रहती हो, स्वरभङ्ग, जीर्णज्वर आदि उपद्रव दीखते हों, तब इस घृत को उष्ण दूध के साथ देना चाहिये । रोगी को अतिसार; शोष या अग्निमान्द्य होने पर यह घृत नहीं देना चाहिये । अग्निबलवान हो, तो घी देना चाहिये । यक्ष्मा रोगी की बलरक्षा करने के लिये यह औषध अति आवश्यक है । कास, इन्द्रियशक्ति-हीनता (पुरुषत्व की कमी) में यह घृत बरता जाता है ।

बृहत् चन्दनादि तैल—यक्ष्मा, अन्य प्रकार के शोष रोगों में रोगी को ज्वर, पार्श्वशूल, अतिसार, शोथ आदि उपद्रव कम हो जायें अथवा वातपित्ताधिक रोगी में कृशता, श्वास, कास, रक्तवमन आदि लक्षण दीखते हों; तब यह तैल रोगी के शरीर पर मालिश करना चाहिये । किन्तु यक्ष्मा रोग की प्रबलावस्था में तैलमर्दन नहीं करना चाहिये ।

वासाचन्दनादि तैल—यक्ष्मा, उरःक्षत, व्यायामशोष आदि रोगों में जब शरीर अति निर्बल हो जाये; रोगी को ज्वर, अतिसार और शोथ आदि उपद्रव न हों, अथवा वायु और पित्त प्रधान रोगी को श्वास, कास हों, तब सम्पूर्ण शरीर में, विशेषतः वक्षःस्थल मे और अंस भाग पर तैल मलना चाहिये । यह तैल प्रबल अग्निवाले व्यक्ति को १० से १५ बूंद उष्ण दूध के साथ देना चाहिये । रोग की प्रबलता होने पर तथा श्लेष्म प्रधान अवस्था में तैल मर्दन निषिद्ध है । तैलमर्दन कराके रोगी को ईषदुष्ण जल से स्नान कराना चाहिये ।

उपद्रव चिकित्सा

यक्ष्मा, शोष, उरःक्षत रोग में रक्तवमन या श्लेष्मा-मिश्रित रक्त आने पर—

अलक्तक योग—क्षय; शोष या उरःक्षत रोग में रक्तवमन होने पर यह औषध प्रातः, मध्याह्न अथवा सायंकाल में अवस्थाभेद से दिन में तीन चार बार और रात्रि में दो या तीन बार देनी चाहिये ।

विशल्याकरणी (अयापान) योग—यक्ष्मा, शोष, उरःक्षत रोग में रोगी को शोष होने पर पुनः पुनः रक्तवमन दीखने पर यह औषध सिद्ध करके

(क्वाथ रूप से) प्रातः और सायंकाल देनी चाहिये । यह औषध आमाशय से रक्त आनेपर और रक्तातिसार में बरती जाती है ।

एलादि गुटिका—यक्ष्मा, उरःक्षत रोग तथा अन्यान्य शोष रोग में रक्त-वमन अथवा जब रक्त या पूयमिश्रित श्लेष्मा निकलता हो; तब यह औषध प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में या अवस्थाभेद से रात्रि में सेवन करानी चाहिये । यह औषध रक्तपित्त रोग में व्यवहृत होती है । अनुपान—जल ।

वासावलेह—यक्ष्मा, उरःक्षत या अन्यान्य शोष रोग में रोगी को जब रक्त-मिश्रित श्लेष्मा निकलती हो, साथ में श्वास, वक्षःस्थल और शरीर में दर्द, स्वरभंग आदि लक्षण हों, तब यह औषध उष्ण जल से सेवन करानी चाहिये ।

वासाखण्ड कुष्माण्ड—यक्ष्मा, उरःक्षत अथवा शोष रोग में जब प्रबल वमन अथवा रक्त के साथ श्लेष्मा या पूयमिश्रित कफ निकलता हो अथवा कास में दुर्गन्ध आती हो, उस समय यह औषध देनी चाहिये । यक्ष्मा रोगी के वक्षःस्थल और पार्श्व में वेदना, श्वास और पाण्डुता या कामला और वमन आदि उपद्रव होने पर यह औषध अतिशय लाभकारी है । रक्तपित्त, क्षय और क्षतज कास में यह औषध व्यवहार में आती है ।

रक्तपित्तान्तक रस—यक्ष्मा, उरःक्षत और अन्य शोष रोगों में रक्त-वमन, ज्वर, दाह आदि लक्षण दीखते हों; इसके साथ में हृदय और पार्श्व भाग में वेदना होती हो, तब यह औषध देनी चाहिये । यह रक्तपित्त रोग में बरती जाती है । अनुपान—कच्ची दूर्वारस और मधु अथवा ईक्षुचीनी और मधु ।

यक्ष्मा रोग में श्वास रोग होने पर

श्वासकुठार रस—यक्ष्मा, उरःक्षत अथवा अन्य शोष रोग की प्रबला-वस्था में रोगी को श्वास का वेग रहता हो; साथ में ज्वर, रक्तमिश्रित अथवा विशुद्ध कफ निकलता हो; वक्षःस्थल और पार्श्व में वेदना एवं अन्य लक्षण दीखते हों, तब यह औषध देनी चाहिये । यह औषध वात श्लेष्मा की प्रबलावस्था में सेवन करानी चाहिये । अनुपान—बहेड़ा का छिलका ।

श्वासचिन्तामणि—यक्ष्मा और अन्य शोष रोगों में श्वास की प्रबलता दीखने पर तथा श्वास अतिशय कष्टजनक होने पर एवं साथ में ज्वर, पार्श्व-

शूल आदि उपद्रव दीखते हों, तब यह औषध सेवन करानी चाहिये। अनुपान—पिप्पलीचूर्ण और मधु अथवा बहेड़ा का छिलका और मधु।

श्वासकासचिन्तामणि—यक्ष्मा, उरःक्षत और अन्यान्य रोग की प्रबलावस्था में श्वास की प्रबलता और श्वास में कष्ट होने पर तथा साथ में रक्त या पूयमिश्रित श्लेष्मा निकलता हो, अथवा केवल मात्र श्लेष्मा कास में आता हो; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। यह औषध श्वासज कास तथा वातज कास में बरती जाती है। अनुपान—पिप्पली चूर्ण और मधु।

यक्ष्मा रोग में प्रमेह चिकित्सा

बृहत् वंगेश्वर—व्यवाय शोष या यक्ष्मा रोग में शुक्रक्षरण, मूत्राधिक्य अथवा प्रमेह के अन्य लक्षण दीखते हों; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—गूलरचूर्ण और मधु अथवा गाय का दूध।

अपूर्व मालती वसन्त—यक्ष्मा, व्यवाय शोष या अन्य क्षय रोग में शुक्रक्षरण-मूत्रत्याग में दाह, मूत्राधिक्य; प्रमेह के अन्य लक्षण दीखते हों; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। यह प्रमेहाश्रित ज्वर और जीर्ण ज्वर में व्यवहृत होती है। व्यवाय शोष रोगी के अतिकृश होने पर यह औषध दे सकते हैं। अनुपान—गिलोय का रस और चीनी।

वसन्त कुसुमाकर रस—यक्ष्मा, व्यवाय शोष; शोष रोगों में शुक्रक्षरण, मूत्राधिक्य, मूत्र की अधिकता, मूत्रदाह अथवा प्रमेहजनित अन्य लक्षण दीखने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। व्यवाय शोष में अत्यधिक शुक्रक्षय होने से नाना प्रकार के लक्षण दीखने पर यह औषध देने से विशेष लाभ होता है। यह अतिशय शुक्रवर्धक एवं बहुमूत्र निवारक है। अनुपान—घृत, मधु और चीनी।

चन्द्रकान्ति रस—यक्ष्मा, व्यवाय शोष, अन्य क्षयरोगों में रोगी का शुक्रक्षय, मूत्र में दाह; मूत्राधिक्य अथवा प्रमेह जनित अन्य लक्षण दीखने पर एवं रोगी के अतिकृश होने पर यह औषध देनी चाहिये। यह औषध मूत्रातिसार में विशेष लाभकर है। अनुपान—मूत्राधिक्यावस्था में-आमलकी चूर्ण; शुक्रक्षय में-गूलर का चूर्ण या शतावरी का रस।

बृहत् मकरध्वज—यक्ष्मा, व्यवाय शोष या अन्य क्षयरोग में शुक्रक्षरण, मूत्राधिक्य आदि कारणों से शरीर में अतिकृशता आजाने पर तथा यक्ष्मा,

उरःक्षत या शोष रोगी के रसादि धातुओं को पोषण देने के लिये यह औषध देनी चाहिये। व्यवाय शोष एवं यक्ष्मा रोग में प्रमेह रोग होने पर यह औषध देने से विशेष लाभ होता है। अनुपान—पान का रस और मधु।

यक्ष्मा रोग में वेदना होने पर

शतपुष्पादि लेप—यक्ष्मा रोग में स्कन्ध, शिर और पार्श्व में वेदना होने पर यह प्रलेप थोड़ा सा गरम करके रात्रि में और प्रातः काल लगाना चाहिये। इस प्रकार प्रतिदिन २ या ३ बार लगाना चाहिये।

पलंकषादि लेप—यक्ष्मा रोग में रोगी के शिर, पार्श्व भाग और वक्षःस्थल में वेदना रहने पर यह प्रलेप थोड़ा गरम करके दिन में दो या तीन बार तथा रात्रि में एक या दो बार लगाना चाहिये।

यक्ष्मा रोग में अतिसार चिकित्सा

जातिफलादि चूर्ण—यक्ष्मा रोग में रोगी को पतला मल आता हो, साथ में स्वरभंग, स्कन्धदेश में या शिर में दर्द; शिर में भारीपन, अन्न में अरुचि; कास, श्वास आदि लक्षण दीखने हों तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—गरम जल; प्रातः और सन्ध्याकाल में देना चाहिये।

महाराज नृपतिवल्लभ रस—यक्ष्मा रोगी को प्रबल अतिसार रहता हो; अथवा मल के साथ आम निकलता हो; साथ में उदर के अन्दर दर्द, कास, श्वास; पार्श्व और शिर में वेदना, कास में अत्यधिक रक्त या श्लेष्मा निकलती हो, अरुचि, हृदय में दाह, प्रमेह आदि उपद्रव दीखने हों तो उन को जीराचूर्ण और मधु के साथ प्रातः-सायंकाल औषध देनी चाहिये।

पञ्चामृत पर्पटी—यक्ष्मा एवं अन्य शोष रोगी को प्रबल अतिसार होने पर साथ में हृदय, पाद और अन्य अंगों में शोथ रहने पर यह औषध देनी चाहिये। यक्ष्मा या अन्यान्य शोष रोगी को कास, श्वास, मेह; रक्त वमन अथवा अन्य उपद्रव अतिसार के साथ हों, तब यह औषध देनी चाहिये। प्रथम दिन प्रातः दो रत्ती दें, फिर प्रति दिन २ रत्ती क्रमशः बढ़ाकर १४ रत्ती तक दें, पीछे से दो रत्ती मात्रा कम करके दो रत्ती मात्रा ले आनी चाहिये। अनुपान—धनिया और जीरे का क्वाथ, शोथ की अधिकता रहने पर लवण और जल बन्द करके केवल दूध पर ही रोगी को रखना चाहिये।

स्वर्णपर्पटी—यक्ष्मा, उरःक्षत तथा शोष रोगी को अतिसार प्रबल होने पर साथ में शोथ क्रमशः बढ़ता हो; तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। क्षय रोगी को ज्वर, कास, श्वास, पार्श्वभाग में और हृदय आदि स्थानों में वेदना; ये सब उपद्रव अतिसार के साथ में हों अथवा अतिसार के साथ ये सब उपद्रव न होने पर यह औषध देनी चाहिये। औषध प्रातः एक रत्ती देकर प्रतिदिन १ रत्ती मात्रा बढ़ाकर १० रत्ती पर्यन्त ले जानी चाहिये। पीछे १ रत्ती कम करनी चाहिये। औषध के सेवन काल में अतिसार अत्यन्त प्रबल हो तो प्रथमावस्था में सजल दूग्ध, अथवा जीरा, मरिच, धनिया और सैन्धव लवण के साथ बकरी का मांस और जांगल मांस का पतला यूष रोगी को देना चाहिये। इसके पीछे जब मल गाढ़ा हो जाये अर्थात् २-३ दिन पीछे लवण और जल रहित दुग्धान्न देना चाहिये; अनुपान दूध।

विजय पर्पटी—यक्ष्मा, एवं शोष रोगी को प्रबल अतिसार अर्थात् आम वा रक्त मिश्रित मल अथवा पतला दस्त होता हो, उसके साथ में हाथ-पैर आदि शरीर अंगों पर शोथ दीखता हो, तब यह औषध देनी चाहिये। यक्ष्मा रोगी को ज्वर, कास, पार्श्व वेदना, प्रमेह, श्वास, स्वरभंग एवं अन्यान्य सम्पूर्ण लक्षण अतिसार के साथ दीखते हों, तब यह औषध देनी चाहिये। प्रथम दिन दो रत्ती मात्रा; पीछे १ रत्ती मात्रा क्रम से बढ़ाकर १० रत्ती पर्यन्त सेवन कराके क्रमशः १ रत्ती कम करें। पथ्य—स्वर्ण पर्पटी के समान; शोथ अधिक हो, तब लवण और जलरहित औषध देनी चाहिये; अनुपान—दूध।

यक्ष्मारोग में शोथ चिकित्सा

शोथकालानल रस—यक्ष्मा, उरःक्षत और शोष रोगी के हाथ-पैर आदि पर शोथ हो जाये तथा उसके साथ में ज्वर, कास, आदि हों; सामान्य अतिसार भी रहता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। यक्ष्मा रोगी में शोथ की प्रबलता दीखती हो; और अतिसार के कारण रोगी कृश हो जाये तब इसका व्यवहार करना चाहिये; अनुपान—तालमखाने के पत्र का रस और मधु।

क्षेत्रपाल रस—यक्ष्मा, उरःक्षत और शोष रोगी के हाथ-पैर आदि स्थानों पर शोथ दीखता हो; साथ में अतिसार, ज्वर, कास, अग्निमान्द्य, श्वास एवं पार्श्वभाग में, स्कन्ध में और वक्षःस्थल में वेदना रहती हो, तब यह औषध देनी चाहिये।

इसके सेवन काल में दूध और जलरहित दुग्धान्न पथ्य देना चाहिये; अनुपान-दूध।

स्वर्ण पर्पटी—यक्ष्मा, उरःक्षत तथा शोथ रोग में शोथ प्रबल होने पर अथवा उसके साथ में अतिसार दीखता हो, तब यह औषध यथा नियम सेवन करानी चाहिये; अनुपान—दुग्धान्न; लवण और जल रहित अन्न देना चाहिये।

रक्तपित्त-चिकित्सा

फल्गुयोग—अधोगत रक्तपित्त रोग में रक्त मूत्रमार्ग से निकलता हो, या मल में रक्त आता हो; तब यह औषध (पके गूलर का रस दो तोला, मधु २-३ बूंद मिलाकर) देनी चाहिये।

लाक्षायोग—ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में रक्त का वमन होने पर लाक्षा चूर्ण ½ तोला, घृत दो आना और मधु १ आना भर लेकर प्रातः, मध्याह्न और अवस्था भेद से रात्रि में देना चाहिये।

वासायोग—ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त रोग में रक्तवमन होने पर यह क्वाथ प्रातः और मध्याह्न में देना चाहिये; रक्तपित्त रोग में हृदय वेदना, ज्वर और कास आदि उपद्रव होने पर यह क्वाथ बहुत उपयोगी है।

दूर्वानस्य—ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में रोगी की नासिका से रक्तस्राव होता हो तो यह औषध प्रातः और सायंकाल में नासिका द्वारा थोड़ा थोड़ा नस्य रूप में देनी चाहिये।

तृणपंचमूलक्षीर—अधोगत रक्तपित्त रोग में रोगी के मूत्र में रक्त निकलता हो, तो यह दूध नियम पूर्वक प्रस्तुत करके रोगी को प्रातः देना चाहिये।

शतमूल्यादि क्षीर—अधोगत रक्तपित्त रोग में मूत्रमार्ग से रक्तस्राव होता हो; यह दूध नियम पूर्वक प्रस्तुत करके रोगी को प्रातः एक वार और सन्ध्याकाल से पूर्व एक वार देना चाहिये।

चन्दनादि क्षीर—अधोगत रक्तपित्त रोग में रक्तातिसार या मल में रक्त आने पर अथवा बूंद बूंद रक्त आने पर यह दूध नियम पूर्वक पाक करके रोगी को प्रातः देना चाहिये। अवस्थाभेद से सायंकाल में भी दे सकते हैं; ज्वर, कास आदि उपद्रव होने पर भी यही व्यवस्था करनी चाहिये।

ह्रीवेरादि क्वाथ—ऊर्ध्वगत रक्तपित्त रोग में रोगी को दाह; तृषा रहती हो;

मुख, कान, नाक आदि इन्द्रियों से रक्त निकलता हो; तब यह क्वाथ तैय्यार करके प्रातः पीने को देना चाहिये।

आटरूषकादि क्वाथ और वासक क्वाथ—ऊर्ध्वगत रक्तपित्त रोग में रोगी के मुख या नाक से रक्त निकलता हो, तब यह क्वाथ प्रातः सेवन कराना चाहिये। यह क्वाथ वातानुलोमक और कोष्ट शुद्धिकारक है।

एलादिगुटिका—रक्तपित्त रोग में रोगी को रक्त वमन होता हो, साथ में ज्वर, कास, श्वास, पार्श्वशूल, अरुचि आदि लक्षण दीखते हों; तो यह औषध जल के साथ सेवन करानी चाहिये।

शतमूल्यादि लौह—रक्तपित्त रोग में रक्तवमन या रक्तातिसार अथवा मूत्र में रक्त आता हो, तब यह औषध प्रातः तथा सायंकाल सेवन करानी चाहिये। रक्तपित्त रोग में अल्प ज्वर, दाह और पिपासा आदि उपद्रव दीखते हों तब इसके सेवन से वे नष्ट हो जाते हैं। अनुपान—रक्तवमन में पका हुआ गूलर का रस और मधु। मूत्र में रक्त आने पर बकरी का दूध।

समशर्कर लौह—रक्तपित्त रोग की पुरातन अवस्था में रक्तस्राव या रक्त वमन होता हो, एवं रोगी का शरीर अतिकृश हो, तब यह औषध देनी चाहिये। यह औषध अम्लपित्त रोग में भी वरत सकते हैं। अनुपान—नारियल का जल।

धात्रीलौह—रक्तपित्त रोग में वमन दीखता हो एवं तज्जन्य वक्षस्थल में वेदना और दाह आदि दीखता हो, तब इसकी एक वटी अपराह्न में सेवन करानी चाहिये। अनुपान—पटोल पत्र रस और मधु।

वासावलेह—रक्तपित्त रोग में प्रबल रक्तवमन या रक्त के साथ कफ निकलता हो; साथ में ज्वर, पार्श्वशूल, और हृदय में वेदना और श्वास आदि उपद्रव रहते हों, तब इस औषध को आधा तोला मात्रा में सेवन करना चाहिये। अनुपान—उष्ण जल।

कुष्माण्ड खण्ड—रक्तपित्त रोग में मुख, नासिका एवं मलद्वार से या मूत्र-मार्ग से रक्त निकलता हो, रोगी की प्रकृति में वात-पित्त की अधिकता हो; यह औषध सेवन करानी चाहिये। रक्तपित्त रोग में ज्वर का वेग कम होने पर यह औषध देनी चाहिये। रक्तार्श रोग में यह औषध विशेष गुणकारी है।

कुटजाष्टक—अधोगत रक्तपित्त रोग में रोगी को रक्तातिसार तथा इसके साथ में नाना प्रकार के उपद्रव होते हों; रोग की अवस्था कुछ पुरानी हो जाये;

या मध्यमावस्था हो तब यह औषध देनी चाहिये। प्रथमावस्था में अधिक परिमाण में रक्तातिसार हो, तब यह औषध देने से रक्त बन्द हो जाने से अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है। यह औषध रक्तार्श, रक्तप्रदर, रक्तातिसार एवं आमाशय में रक्तस्राव होने में बरती जाती है। अनुपान—बकरी का दूध और शीतल जल।

त्रिवृत्तादि मोदक—रक्तपित्त रोग में मुख और नासिका से रक्तस्राव होता हो, साथ में ज्वर भी रहता हो; यह मोदक रोगी को देने चाहियें। अनुपान-जल।

दूर्वाद्य घृत—रक्तपित्त रोग की पुरातन अवस्था में अर्थात् ज्वर, कास, श्वास आदि उपद्रव हट जायें और समय विशेष में रक्त वमन दीखता हो; यह घृत दूध के साथ रोगी को देना चाहिये। नासिका से रक्तस्राव होने पर इसको नस्य रूप में नासा से दे सकते हैं। कान से रक्तस्राव होने पर कान में डाल सकते हैं। आंख से रक्तस्राव होने पर आंख में लगा सकते हैं। लोमकूपगत रक्तस्राव में शरीर पर मर्दन कर सकते हैं।

वासाघृत—रक्तपित्त रोग में श्वास, पार्श्ववेदना आदि उपद्रव निवृत्त हो जायें; श्लेष्मा के साथ में अथवा विशुद्ध रक्त मुख से निकालता हो; यह घृत गरम दूध से रोगी को देना चाहिये।

ह्रीवेरादि तैल—रक्तपित्त रोग की पुरानी अवस्था में अर्थात् ज्वर, पार्श्वशूल आदि उपद्रव निवृत्त हो जायें; ऊर्ध्व एवं अधोगत रक्तपित्त में अथवा केवल लोमकूपों से रक्तस्राव होता हो; तब रोगी के शरीर पर यह तैल मर्दन करना चाहिये।

रक्तपित्त रोग में ज्वरचिकित्सा

जयावटी—ऊर्ध्वगत रक्तपित्त रोग की नई अवस्था में श्वास, कास आदि उपद्रवों की अल्पता होने पर एवं रोगी को मृदु ज्वर रहता हो; इस अवस्था में रोगी को प्रातः सायं रक्त चन्दन के क्वाथ से यह औषध देनी चाहिये।

बृहत् कस्तूरी भैरव—ऊर्ध्वगामी या अधोगामी रक्तपित्त की अवस्था में रोगी को ज्वर अथवा श्लैष्मिक विकार अर्थात् शरीर में शीतलता, दाह, मूर्च्छा, पिपासा और नाडी की गति में विपर्यय आदि लक्षण दीखते हों, तब यह औषध खीरे की मींगी और चन्दन के साथ घिसकर सेवन करानी चाहिये।

सर्वज्वरहर लौह—अधोगत रक्तपित्त रोग की चिरकालीन अवस्था में रक्त

के साथ मल आता हो या रक्तातिसार हो; साथ में ज्वर रहता हो; तब यह औष रोगी को देनी चाहिये। अनुपान पित्तपापड़े का रस और मधु।

चन्दनादि लौह—अधोगत रक्तपित्त रोग की पुरातन अवस्था में र स्राव, रक्त मिश्रित अतिसार या अकेला ही रक्तातिसार हो; साथ में ज्वर रहता हो; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—पित्तपापड़े का र और मधु या लालचन्दन का क्वाथ और मधु।

महाराज वटी—ऊर्ध्वगत रक्तपित्त रोग में रक्त मिश्रित कफ अथवा मु नासिका आदि से केवल मात्र रक्त निकलता हो; रोगी को प्यास, दाह, हृदयवेद आदि लक्षण रहते हों; अथवा केवल ज्वर मात्र ही हो; तब यह औषध दे चाहिये। रक्तपित्त रोग की पुरातन अवस्था में अर्थात् सात दिन के पीछे ज्वर हो तब इस औषध को देना चाहिये, किन्तु सद्यः उत्पन्न ज्वर में अर्था ४ या ५ दिन के रक्तपित्त में ज्वर की प्रबलता हो, तब यह औषध लाभकर न होती; अनुपान—वासकपत्र रस या पान का रस और मधु।

सर्वतोभद्र रस—ऊर्ध्व या अधोगत रक्तपित्त रोग में ज्वर उपस्थित हे साथ में कास, हृदयवेदना और अतिसार आदि लक्षण रहते हों तब यह औष पान के रस अथवा वासकपत्र रस और मधु के साथ सेवन करानी चाहिये।

रक्तपित्त रोग में कासचिकित्सा

चन्द्रामृत रस—रक्तपित्त रोग में कास दीखता हो, अर्थात् रक्त के सा श्लेष्मा मुख से निकलती हो, अथवा गले में घर्घराहट के साथ श्लेष्मा निकलत हो; यह औषध वासकपत्र रस और मधु अथवा बकरी का दूध या कसेरु के र और मधु के साथ सेवन करानी चाहिये।

चन्द्रामृत लौह—रक्तपित्त रोग में अल्प या अधिक रक्तमिश्रित श्लेष्म अथवा केवल मात्र श्लेष्मा निकलती हो; यह औषध प्रातः और संध्याकाल रोग को देनी चाहिये। कास के साथ अधिक रक्त निकलता हो एवं उसके साथ में ज्व और श्वास आदि उपद्रव रहते हों, तब यह औषध बहुत लाभकारी है। अनुपान—वासकपत्र रस और मधु।

समशर्कर चूर्ण—रक्तपित्त रोग में कास के साथ अल्प अथवा अधिक रक्त निकलता हो; अथवा रक्तमिश्रित श्लेष्मा निकलता हो; साथ में श्वास और

ज्वर रहता हो; तब यह औषध जल के साथ प्रातः और सन्ध्याकाल में देनी चाहिये।

तालीशादि चूर्ण—रक्तपित्त रोग में कास के साथ रक्तमिश्रित श्लेष्मा निकलता हो; रोगी को ज्वर तथा श्वास आदि उपद्रव रहते हों; यह औषध जल के साथ प्रातः और सन्ध्याकाल में देनी चाहिये।

रक्तपित्त रोग में श्वासचिकित्सा

श्वासचिन्तामणि—रक्तपित्त रोग में कास के साथ श्वास रहता हो अथवा रक्त के प्रकोप के कारण श्वास वेग दीखता हो; तब यह औषध बहेड़ा का चूर्ण और मधु के साथ देनी चाहिये।

महाश्वासारि लौह—रक्तपित्त रोग में कास के साथ में श्वासरोग का प्रकोप दीखता हो अथवा रोग के प्रकोप के कारण श्वासवेग दीखता हो; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—घिसा हुआ बहेड़ा और मधु।

रक्तपित्त रोग में दाहचिकित्सा

दाहान्तक लौह—अधोगत और ऊर्ध्वगत अथवा दोनों प्रकार के रक्तपित्त रोग में दाह की प्रबलता रहने पर यह औषध इन्द्रयव के क्वाथ अथवा लालचन्दन के क्वाथ के साथ रोगी को सेवन करानी चाहिये।

धान्यशर्करा—रक्तपित्त रोग में दाह प्रबल हो; साथ में प्यास बलवान हो; यह औषध जल के साथ सेवन करानी चाहिये।

रक्तपित्त रोग में अतिसार चिकित्सा

बृहत् गगनसुन्दर रस—रक्तपित्त रोग में अतिसार रहता हो, यह औषध रोगी को जीरे का चूर्ण और मधु के साथ सेवन करानी चाहिये। रोगी को बहुत अधिक पतला मल आता हो; तब इसको मोथे के रस और मधु के साथ सेवन कराना चाहिये। रक्तस्राव होने पर बकरी के दूध के साथ देना चाहिये।

अमृतार्णव रस—रक्तपित्त रोग में पतला मल आता हो, अथवा रक्त-मिश्रित मल निकलता हो, यह औषध गेंदे के पत्तों के रस अथवा मोथे के रस के साथ दिन में २ या ३ बार देनी चाहिये।

रक्तपित्त में पिपासाचिकित्सा

षडङ्गपानीय—रक्तपित्त रोग मे ज्वर, दाह और साथ में पिपासा प्रबल होने पर अथवा केवल मात्र प्यास रहने पर सोंठ को निकालकर इसको सिद्ध करके रोगी को देना चाहिये।

अतिसार चिकित्सा

पथ्यादि क्वाथ—वातातिसार रोगी को उदर में और मलद्वार में वेदना एवं अल्प-अल्प मल बार-बार निकलता हो, तब यह क्वाथ देना चाहिये।

चव्यादि क्वाथ—श्लैष्मातिसार में रोगी को मल, आम और दुर्गन्धयुक्त आता हो; वमन होता हो; यह क्वाथ उसे देना चाहिये। यह आमपाचक, सुतरां उदर वेदना को नष्ट करता है।

गुडूच्यादि क्वाथ—वातपित्तातिसार में रोगी को वमन अरुचि, पिपासा और दाह आदि लक्षण होने पर, मल में नाना प्रकार के वर्ण हों, मल पतला आता हो; यह क्वाथ सेवन कराना चाहिये। अतिसार में ज्वर होने पर भी यह क्वाथ दे सकते हैं।

पृश्निपर्ण्यादि क्वाथ—शोकजन्य अतिसार में रक्त से युक्त दुर्गन्ध वा गन्धहीन मल निकलता हो एवं अन्यान्य लक्षण उपस्थित हों, तब यह क्वाथ देना चाहिये।

विशल्याकरणी क्वाथ—रक्तातिसार में अधिक मात्रा में रक्त आता हो अथवा प्रवाहिका रोग में रक्त मिश्रित मल निकलता हो, तब यह क्वाथ देना चाहिये।

उशीरादि क्वाथ—पित्तातिसारमें, आमातिसारमें, रक्तातिसारमें, पित्त श्लेष्मातिसारमें और सान्निपातिक अतिसार में मल की अपक्वावस्था में उदर में वेदना तथा जल के समान पतला मल आता हो, यह क्वाथ देना चाहिये। सब प्रकार के अतिसारों की प्रथमावस्था में यह क्वाथ उपयोगी है। इस क्वाथ के सेवन से मलबद्धताजन्य नाभिदेश की वेदना नष्ट होती है तथा अतिसार उत्पन्न होने के पीछे जो ज्वर होता है, वह नष्ट होता है।

ह्रीवेरादि क्वाथ—पित्तातिसार में, आमातिसार में, रक्तातिसार में, पित्त श्लेष्मातिसार में और सान्निपातिक अतिसार में जब प्रथमावस्था में मल अतिशय

तरल एवं जल की भांति पतला आता हो; तब रोगीको यह क्वाथ देना चाहिये। इस औषध के सेवन करने से उदर की वेदना, मल की बद्धता नष्ट होती है; अथवा रक्तातिसार होने के पीछे साथ में ज्वर भी हो जाये; तब यह क्वाथ देना चाहिये।

धान्यचतुष्क—पित्तातिसार की प्रथमावस्था में रोगी को नाना प्रकार के रंग का मल निकलने पर एवं उदर में वेदना होने पर यह क्वाथ देना चाहिये।

धान्यपञ्चक—सब प्रकार के अतिसार रोग में मल की बद्धता एवं नाभिदेश में वेदना, पतला मल आता हो, यह क्वाथ देना चाहिये। इस क्वाथ के सेवन से अग्नि स्वभाविक रूप में आती है।

कुटजादि क्वाथ—पित्तातिसार में बार-बार नाना प्रकार का पतला मल आता हो एवं आमातिसार में उदर में वेदना और अपक्व मल आता हो अथवा रक्तातिसार में रक्त आता हो तब प्रथमावस्था में रोगी को यह क्वाथ देना चाहिये।

बिल्वादि क्वाथ—पित्तातिसार में नाना वर्ण का जल की भांति पतला मल आता हो; एवं गुदा में ज्वाला की भांति दाह होता हो; तब यह क्वाथ रोग की प्रथमावस्था में मल के परिपाक के लिये देना चाहिये।

कुटज दाडिम क्वाथ—रक्तातिसार में अधिक परिमाण में अथवा बार बार रक्तस्राव होता हो, तब यह क्वाथ सेवन कराना चाहिये।

मुस्तक क्षीर—आमातिसार में अत्यधिक श्लेष्मा से युक्त मल बार-बार आता हो, उदर में वेदना रहती हो अथवा आमातिसार में श्लेष्मा का परिपाक दीखता हो, तब यह देना चाहिये।

बिल्व क्षीर—रक्तातिसार में रक्तसंयुक्त अपक्व मल अर्थात् आम और रक्तमिश्रित मल आता हो अथवा प्रवाहिका रोग में नाना वर्ण का मल और रक्त आता हो, तब यह दूध अति उपयोगी होता है। मल में आम और रक्त होने पर यह दूध बहुत उपयोगी है। रोग होने के ३ या ४ दिन पीछे इसका सेवन कराना चाहिये। यह औषध पाचक, धारक है, इसलिये रोग की प्रथमावस्था में नहीं देनी चाहिये।

हिंग्वादि चूर्ण—श्लैष्मिकातिसार में रोगी को उदरवेदना एवं दुर्गन्ध युक्त अपक्व मल निकलता हो, तब मल के परिपाक के लिये यह चूर्ण रोगी को प्रातः और सन्ध्याकाल में देना चाहिये। इस औषध के सेवन से अग्नि की दीप्ति होती है और भूख बढती है।

आम्र लेप—पित्तातिसार में, वातपित्तातिसार में अथवा अन्य प्रकार के अतिसार में बार, बार पतला मल आता हो, तब यह प्रलेप नाभिप्रदेश पर लगाना चाहिये। अतिसार में जल की भांति पतला मल आता हो, तब इसका उपयोग करना चाहिये।

जातिफल लेप—अतिसार में पतला मल आता हो, तब यह प्रलेप नाभि के चारों ओर करना चाहिये।

तिल योग—रक्तातिसार में अधिक रक्त आता हो, तब यह योग दिन में दो या तीन बार बकरी के दूध के साथ सेवन कराना चाहिये, किन्तु रक्तातिसार की प्रथमावस्था में यह नहीं बरतना चाहिये। ज्वर या अन्य उपद्रव होने पर भी यह औषध नहीं बरतनी चाहिये।

कुटजाष्टक—रक्तप्रवाहिका और रक्तातिसार में रक्तमिश्रित विविध रंग का मल पतला या गाढ़ा आता हो अथवा केवल रक्त ही मल में आता हो, यह औषध अति लाभदायक है। रोग की प्रथमावस्था में यह औषध नहीं देनी चाहिये, प्रवाहिका, ग्रहणी, रक्तप्रदर और रक्तार्श रोग में प्रयोग करते हैं। अनुपान बकरी का दूध या शीतल जल।

कुटजावलेह—रक्तातिसार में और रक्तप्रवाहिका रोग में रक्त मिश्रित नाना रंग का मल पतला या गाढ़ा आता हो अथवा केवल रक्तस्राव ही होता हो; यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इसको रोग की प्रथमावस्था में नहीं देना चाहिये। अनुपान बकरी का दूध या शीतल जल।

अमृतार्णव रस—आमातिसार की प्रबलावस्था में दुर्गन्ध और श्लेष्म बहुल अपक्व मल बार, बार निकलता हो, उदर में वेदना रहती हो; यह औषध रोगी को देनी चाहिये। आमातिसार की मध्यमावस्था में जब मल परिपक्व हो जाये, प्रथमावस्था से मल में परिवर्त्तन आजाये, तब यह औषध देनी चाहिये। पित्तातिसार में या पित्तश्लेष्मा अतिसार में बार-बार मल पतला आता हो, एवं सान्निपातिक अतिसार में पित्त के प्रकोप के कारण विविध वर्ण का पतला मल निकलता हो; प्रथमावस्था और मध्यमावस्था में यह औषध देनी चाहिये। पित्तातिसार में पित्तश्लेष्मातिसार में या पित्तप्रबल सन्निपातातिसार में मल की परिपक्वावस्था में यह विशेष लाभकारी होता है। पित्ताश्रित ग्रहणी रोग में यह औषध बहुत उपयोगी

है। अनुपान—आमातिसार और पित्तातिसार की प्रथमावस्था में केले के फूल का रस अथवा भर्जित जीराचूर्ण और मधु। आमातिसार और पित्तातिसार में मल की परिपक्वावस्था में बकरी का दूध; ग्रहणी रोग में बकरी का दूध या शीतल जल।

लवंगादि वटी—श्लैष्मातिसार में, वातातिसार में, वातश्लैष्मिकातिसार में, सान्निपातिक अतिसार की प्रथमावस्था में मल में दुर्गन्ध, अपक्वता, बार-बार मल का आना, उदर में वेदना हो, तब मल के परिपाक के लिये यह औषध देनी चाहिये। जब अजीर्ण के कारण अतिसार हो; तब यह औषध देने से अग्निवृद्धि और क्षुधावृद्धि होती है। रोग की मध्यमावस्था में अर्थात् जब आमदोष नष्ट हो जाये एवं वातातिसार में यह औषध विशेष उपकारी होती है। अनुपान—भर्जित जीराचूर्ण और मधु।

सिद्धप्राणेश्वर रस—वातातिसार, श्लैष्मिकातिसार, वातश्लैष्मिकातिसार और सान्निपातिकातिसार के लक्षण उपस्थित होने पर तथा प्रथमावस्था में आम दोष के परिपाक के लिये यह औषध देनी चाहिये। मल के साथ में श्लेष्मासंयुक्त होने पर एवं मलबद्धताजन्य शूल आदि उपद्रव रहने पर यह औषध देनी चाहिये। यह औषध अतिसार की मध्यमावस्था में एवं पित्तातिसार में देने से लाभ होता है। यह औषध ग्रहणी दोषनाशक है। अतिसार रोग में ज्वर होने पर यह औषध देने पर लाभ होता है। अनुपान-भर्जित जीराचूर्ण और मधु अथवा उष्ण जल।

अग्निकुमार रस—वातातिसार में, वातश्लैष्मिकातिसार में, सान्निपातिकातिसार में, विशेष करके अजीर्ण के कारण जब रोगोत्पत्ति हुई हो; तब प्रथमावस्था में दोष के परिपाक के लिये रोगी को यह औषध देनी चाहिये। इस औषध के सेवन करने से अग्नि का बल बढ़ता है; मल की अपक्वता नष्ट होती है। अनुपान—उष्ण जल।

महागन्धक—आमातिसार में, प्रवाहिका में, पित्तातिसार में, पित्तश्लेष्मातिसार में अथवा रक्तातिसार की प्रथमावस्था में जल की भांति पतला एवं नाना रंग का मल आता हो, अथवा श्लेष्मा से मिला अपक्व मल बार-बार अल्प या अधिक परिमाण में निकलता हो; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अतिसार रोग में ज्वर रहता हो; तब यह औषध विशेष लाभदायक है। अनुपान—मोथे का रस और मधु।

जातीफलाद्य वटी—आमातिसार, पित्तातिसार अथवा प्रवाहिका की प्रथमावस्था में पतला अपक्व मल आता हो अथवा पक्वातिसार में कफ से मिश्रित घट्ट मल बार-बार आता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। अतिसार में ज्वर और शोथ होने पर भी यह औषध दी जा सकती है। अनुपान—भर्जित जीराचूर्ण और मधु; अथवा मोथे का रस और मधु।

अहिफेन वटी—रक्तातिसार की प्रथमावस्था में अधिक मात्रा में रक्तस्राव होता हो; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—मोथे का रस या अयापान का रस अथवा अनार के कच्चे पत्तों का रस और मधु।

पीयूषवल्ली रस—आमातिसार में, रक्तातिसार में, विविध प्रवाहिका की मध्यमावस्था में जब रक्तमिश्रित या कफमिश्रित मल पिच्छिल या पक्वरूप से बार-बार आता हो, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अतिसार में और प्रवाहिका की पुरातन अवस्था में एवं आमातिसार, रक्तातिसार या प्रवाहिका के साथ साथ ज्वर और शोथ उपद्रव रूपमें रहता हो, तब इसका प्रयोग करना चाहिये। यह औषध अतिसार और प्रवाहिका की सब अवस्थाओं में उपकारी है। परन्तु इसका लाभ देर में दीखता है। प्रसूति के अतिसार में और ज्वर में इसका व्यवहार होता है। अनुपान—दग्धबिल्व और इक्षुगुड़।

कनकसुन्दर रस—वातश्लैष्मिकातिसार में या श्लैष्मिकातिसार की प्रथमावस्था में अपक्व मल आता हो, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इस अवस्था में यदि रोगी को ज्वर भी हो तब भी यह औषध दी जा सकती है। अनुपान—भर्जित जीरक चूर्ण और मधु।

दुग्धवटी—आमातिसार, पैत्तिकातिसार और पित्तकफातिसार जब दीर्घ काल स्थायी हो जाये अथवा रोग उत्पन्न होने के कुछ दिनों पीछे ही हाथ-पैर आदि पर शोथ हो जाये तब एक वटी प्रातः काल दूध के साथ देनी चाहिये। इसके सेवन से अतिसार, ज्वर और शोथ नष्ट होते हैं। पथ्य-दुग्धान्न। लवण और जल संयुक्त आहार तथा स्नान निषिद्ध है। शोथ अधिक होने पर केवल मानमण्ड देना चाहिये।

जातीफल रस—आमातिसार रोग की मध्यमावस्था में या तृतीय अवस्था में मल का परिपाक हो जाने पर एवं रक्तप्रवाहिका और श्लैष्मिक प्रवाहिका की

मध्यमावस्था में रोगी को यह औषध देनी चाहिये। आमातिसार और प्रवाहिका आदि रोग में अल्प ज्वर होने पर यह औषध देनी चाहिये। ग्रहणी रोग में पित्त की अधिकता दीखने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—कच्चा विल्वचूर्ण और मधु।

रसपर्पटी—आमातिसार दीर्घकाल स्थायी रहे, एवं साथ साथ में ज्वर, शोथ, कास आदि उपद्रव दीखते हों, तब विधिक्रमानुसार रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अतिसार जन्य शोथ और ज्वर होने पर इस औषध से लाभ होता है; परन्तु वृद्ध एवं जिनका शरीर कृश हो या वात-पित जन्य रोग होने पर इस औषध के छोड़ने से रोग पुनः उत्पन्न हो जाता है; औषध सेवन काल में ही रोग निवृत्ति रहती है। वात-कफ प्रधान रोगी में, बच्चों में इस औषध से विशेष लाभ होता है। अग्निवृद्धि, शोथ नाश, आमवाताश्रित अपक्व रस का शोषण करने में यह औषध शक्तिशाली होती है। इस औषध के सेवन काल में रोगी को केवल दूध ही आहार लेना चाहिये। पीछे से भूख बढ़ने पर क्रमशः पुराने चावलों का भात और दूध लेना चाहिये। रोग की प्रबलावस्था में शोथ न होने पर यूष भी दे सकते हैं, परन्तु दूध का सेवन अधिक रखना चाहिये। अनुपान-निर्जल पक्व दूध।

पंचामृत पर्पटी—आमातिसार, पित्तातिसार, पित्तश्लेष्मातिसार अथवा श्लेष्माश्रित प्रवाहिका रोग दीर्घकालीन होने पर बढ़ता जाता हो तथा साथ में शोथ, ज्वर आदि उपद्रव भी हों, तब रोगी को विधि अनुसार यह औषध देनी चाहिये। अतिसार में शोथ हो तो केवल दुग्धान्न देना चाहिये। अनुपान—घृत और मधु।

स्वर्ण पर्पटी—वातातिसार, पित्तातिसार, वातपित्तातिसार या रक्तातिसार अथवा प्रवाहिका रोग के पुराना होने पर अथवा इसके साथ ज्वर, शोथ आदि लक्षण होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। जिनका शरीर कृश हो, अथवा अन्य कारण से शरीर में दुर्बलता अधिक रहती हो; उनके लिये यह औषध उत्तम है। अनुपान—दूध, अतिसार में शोथ होने पर केवल दूध देना चाहिये।

विजय पर्पटी—आमातिसार की प्रथमावस्था में अथवा मध्य या पुरातन अवस्था में मल में परिपक्वता दीखती हो, प्रवाहिका रोग में, पित्तातिसार में, पित्त-श्लेष्मातिसार में और सान्निपातिक अतिसार की पुरातन अवस्था में यह औषध

देने से विशेष लाभ होता है। अतिसार की पुरातन अवस्था में यह औषध प्रयोग करने से शोथ एवं ज्वर आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। विषमज्वर, पाण्डु, यकृत आदि रोगों में अतिसार होने पर यह औषध दी जा सकती है। इन समस्त रोगों में दुर्बलता, कृशता दीखने पर यह औषध देने से लाभ होता है।

अतिसार में शूलचिकित्सा

हरितक्यादि कल्क (चूर्ण)—आमातिसार की प्रथमावस्था में रोगी को कफ मिश्रित दुर्गन्ध वाला मल आता हो; उदर में वेदना रहती हो; यह चूर्ण गरम पानी के साथ दिन में २ या ३ बार देना चाहिये। यह औषध आमपाचक और अग्नि वर्धक है [हरड़, अतीस, वच, संचल लवण, सैन्धव लवण, हींग इनके चूर्ण समभाग लेकर दो आने से चार आना मात्रा में देना चाहिये]।

शंखादि चूर्ण—अतिसार रोग में उदर में वेदना होने पर गरम पानी से यह औषध देनी चाहिये।

शूलहरण योग—वातातिसार, आमातिसार, वातश्लैष्मिक अतीसार, प्रवाहिका आदि रोगों में उदर में वेदना होने पर यह औषध देनी चाहिये। कृमिजन्य उदर शूल में यह विशेष लाभकारी है। मलबन्ध होने पर गरम दूध के साथ इसको देना चाहिये।

अतिसार में पिपासा-चिकित्सा

ह्रीवेरादि पानीय—अतिसार रोग में बार-बार प्यास रहती हो तथा उदर में वेदना हो, यह जल रोगी को तृषा शान्त करने के लिये देना चाहिये।

षडंगपानीय—अतिसार रोगी को पुनः पुनः पिपासा लगने पर यह पानी देना चाहिये।

जम्बुआदि क्वाथ—अतिसार रोगी को प्रवल प्यास रहती हो; तब तृषा के समय यह क्वाथ देना उत्तम है [जामुन, आम, उशीर, वटशुंग, वटजटा प्रत्येक समभाग लेकर इसमें से २ तोला लेकर ३२ तोला जल में क्वाथ करके ८ तोला रहने पर, शीतल करके मधुप्रक्षेप देकर देना चाहिये]।

अतिसार में वमन-चिकित्सा

सर्षपलेप—अतिसार बहुत प्रबल हो तथा इसके कारण रोगी को बार-बार वमन होता हो, उसकी शान्ति के लिये इसे उदर पर लगाना चाहिये।

चन्द्रकान्ति रस—अतिसार में पित्त के प्रकोप से बार-बार वमन होने पर यह औषध खीरे की मींग और गाय के दुग्ध के साथ देनी चाहिये। वमनवेग कम होने पर औषध बन्द कर देनी चाहिये।

धान्यशुण्ठी योग—तरुण ज्वर, दाह अथवा अतिसार में वमन होने पर यह औषध देनी चाहिये।

अतिसार में उदराध्मान-चिकित्सा

दारुषट्क लेप—अतिसार रोगी को उदराध्मान रहने पर यह प्रलेप उदर पर लगाना चाहिये, आध्मान एक बार हटने पर पुनः आ जाय, तब पुनः लेप करना चाहिये। इस लेप से आध्मानजनित उदर की वेदना नष्ट होती है।

यवप्रलेप—अतिसार रोगी में वायु के प्रकोप के कारण उदर में आध्मान होने पर साथ में इसके कारण दर्द भी हो; तब यह प्रलेप लगाना चाहिये।

एलादि चूर्ण—वातज अतिसार में अथवा आमातिसार में रोगी को उदराध्मान तथा वेदना रहती हो, तब इस औषध को कर्पूरवासित जल के साथ (Aqua-camphor) देनी चाहिये। इससे आमजनित दर्द नष्ट होती है।

चतुर्मुख रस—अतिसार रोग में, उदराध्मान के साथ में बस्ति प्रदेश में वेदना तथा मूत्राघात आदि वायुजनित उपद्रव दीखते हों; तब रोगी को यह औषध तण्डुलोदक के साथ दो दो घण्टे के अन्तर से एक २ गोली देनी चाहिये। इसके सेवन से उदराध्मान नष्ट होता है और मूत्र प्रवृत्त होता है।

अतिसार में ज्वर-चिकित्सा

मृतसंजीवनी वटी—नूतन पित्तातिसार में रोगी को ज्वर रहता हो; एवं ज्वर का वेग अधिक होने पर तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-शीतल जल अथवा जीराचूर्ण और मधु।

आनन्दभैरव रस—नूतन पित्तातिसार में या अन्यान्य अतिसार में अहिताचरण के कारण ज्वर होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—जीराचूर्ण और मधु।

बृहत्कस्तूरी भैरव—नूतन अतिसार में, आमातिसार में या रक्तातिसार में रोगी को तीव्र या मध्यम रूप में ज्वर होने पर अथवा इसके कारण विविध उपद्रव-दाह, स्वेद, प्रलाप, नाडी में विश्रृङ्खलता होने पर यह औषध दो या तीन

घण्टे के अन्तर से देनी चाहिये। पुरातन अवस्था में उपरोक्त लक्षणों में इससे विशेष लाभ नहीं होता। अनुपान—घिसा हुआ रुद्राक्ष और दो बूंद मधु।

पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह—पुरातन अतिसार में, रक्तातिसार में, प्रवाहिका में, आमातिसार रोग में मल की परिपक्वावस्था में अर्थात् पुरातन अतिसार रोग में रोगी को वेदना एवं अपक्व श्लेष्मा बहुल अथवा रक्तसंयुक्त मल आता हो; इस अवस्था में दिन को या रात्रि को कुछ थोड़े समय के लिये अल्पवेग ज्वर रहता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। इससे ज्वर का वेग क्रमशः कम होता जाता है। अतिसारजन्य ज्वर में यह विशेष गुणकारी है। अनुपान-भर्जित जीराचूर्ण और मधु।

सर्वज्वरहर लौह—पुरातन रक्तातिसार में, पित्तातिसार में, रक्तप्रवाहिका में, अन्यान्य प्रवाहिका रोग में वायु और पित्त प्रधान अवस्था में रोगी को ज्वर थोड़े समय के लिए मन्द वेग से आता हो, तब यह औषध सेवन के लिये देनी चाहिये। इस औषध से ज्वर और अतिसार दोनों निवृत्त होते हैं।

अतिसार में नाड़ी की गति विश्रृङ्खल तथा शरीर ठण्डा होने पर

मृतसंजीवनी—अतिसार रोग में बार-बार मल त्याग और वमन आदि द्वारा रोगी का ज्ञान लोप होता हो, शरीर ठण्डा (हिमांग) हो जाये; नाड़ी की गति क्षीण एवं अनियमित हो, तब यह औषध दो या तीन घण्टों के अन्तर से रोगी को देनी चाहिये। शरीर में उष्णता आने पर औषध पांच या छैः घण्टों के अन्तर से देनी चाहिये। यह औषध विसूचिका तथा सन्निपात में देनी उत्तम है।

मृगमदासव—अतिसार रोग में बार-बार मल आने पर रोगी का ज्ञान लोप या मतिभ्रम दीखने पर अथवा हिमांग या नाड़ी की गति अनियमित दीखने पर यह औषध दो या तीन घण्टे के अन्तर से देनी चाहिये। नाड़ी की गति स्वस्थ तथा शरीर में उष्णिमा आने पर औषध सेवन बन्द कर देना चाहिये।

बृहत् कफकेतु—नूतन अतिसार रोग में नाना वर्ण का पतला मल आता हो, अथवा आम और रक्त से मिला मल आता हो, रोगी की श्लेष्मा प्रकुपित हो जाये; नाड़ी में अनियमितता हो; वक्षःस्थल में कफ का अवरोध हो; ज्ञानलोप तथा श्वास की क्रिया कम हो रही हो; तब यह औषध एक-एक घण्टे के अन्तर से देनी चाहिये। अनुपान—घिसा हुआ रुद्राक्ष और गाय का दुग्ध अथवा गुड़ का रस और मधु।

अतिसार में श्वास-चिकित्सा

श्वास चिन्तामणि—अतिसार रोगी को नाना रंग का पतला मल आता हो अथवा अपक्व मलयुक्त अतिसार, वमन, दाह, प्यास उत्पन्न हो; वक्ष में अनेक स्थानों पर श्लेष्मा का संचय हो, श्वासक्रिया परिवर्त्तित हो, श्वासरोग के लक्षण दीखते हों; यह औषध दो घण्टे के अन्तर से रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—घिसा हुआ वहेड़ा और मधु।

बृहत् श्वास चिन्तामणि—अतिसार रोग में विविध उपद्रव उपस्थित हों; रोगी में श्वास की प्रवलता रहती हो, साथ में श्वासरोग के लक्षण भी हों; तब आधे घण्टे के अन्तर से यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अतिसार रोग की नूतन अवस्था में यह ओषध अधिक लाभ करती है। पुरातन अतिसार में, शरीर निर्वल होने पर यह औषध लाभ नहीं करती। अनुपान—घिसा हुआ बहेड़ा और मधु।

ग्रहणीरोग-चिकित्सा

गंगाधर चूर्ण—पित्तातिसार रोग में मल की पक्वावस्था में, प्रवाहिका रोग में, आमातिसार रोग में, पैत्तिक ग्रहणी रोग में एवं आम ग्रहणी की प्रथमावस्था में (मल की अपक्वावस्था में) अथवा पक्वावस्था में यह चूर्ण रोगी को देना चाहिये। सूतिका रोग में आमसंयुक्त मल पतला आता हो तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—चावल का धोवन और मधु।

भास्कर लवण—वाताश्रित, वातपित्ताश्रित अथवा वातश्लेष्माश्रित ग्रहणी रोग में उदराध्मान एवं समय समय पर उदर में, हृदय में, पार्श्वस्थान में वेदना, शरीर में अवसन्नता तथा पतला मल आता हो, यह औषध रोगी को सेवन करानी चाहिये। यह अग्निवर्धक और वायुशान्तिकारक है। अनुपान—उष्णजल।

नागराद्य चूर्ण—पैत्तिक ग्रहणी रोग में कुछ नीला या पीत वर्ण का पतला मल आता हो साथ में रक्त का आना और उदर में दर्द हो तब यह औषध देनी चाहिये। रक्तप्रवाहिका और रक्तातिसार रोग में मल कुछ परिपक्व हो तथा रक्तार्श में यह रोग दे सकते हैं। अनुपान चावल का धोवन और मधु।

बृहत् अग्निकुमार रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक या पित्त-श्लेष्माश्रित ग्रहणी रोग में लक्षण जब प्रारम्भ हों तब यह औषध देनी चाहिये, इससे

अग्नि बढ़ती है, आध्मान कम होता है, वक्षःस्थल की तथा पार्श्व की वेदना दूर होती है। अनुपान-भर्जित जीरा और मधु।

नृपतिवल्लभ—वातिक ग्रहणी, वातश्लैष्मिक ग्रहणी, संग्रहग्रहणी में रोग की प्रथम और मध्यमावस्था में समय समय पर कोष्ठवद्धता, कटिशूल, पृष्ठशूल, आदि लक्षण दृष्ट होते हों; वातज एवं वातश्लेष्मातिसार में रोगी का मल परिपक्व होने पर यह औषध उसे देनी चाहिये। अग्निमान्द्य या अजीर्णता के कारण पतला मल या विसूचिका रोग के विविध उपद्रव नष्ट हो चुके हों, केवल अग्निमान्द्य या अतिसार ही रह गया हो; उस अवस्था में यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—भर्जित जीराचूर्ण और मधु, अति पतला मल आने पर मोथे का रस और मधु; मलवन्ध रहने पर हरड़ का चूर्ण और सैन्धव लवण।

बृहत् नृपतिवल्लभ—वातज ग्रहणी वातश्लैष्मिक ग्रहणो और संग्रह ग्रहणी रोग के मध्य या पुरातन अवस्था में यह औषध प्रयोग करनी चाहिये। ग्रहणी रोग में हृच्छूल, पार्श्वशूल, कटिशूल आदि उपद्रव दीखते हों, तब यह औषध देनी चहिये। अग्निमान्द्य के कारण जिनमें हृदय और नाभि के मध्यभाग में पित्तश्लेष्माश्रित शूल रहता हो; उनके लिये यह औषध अतिशय उपयोगी है। इससे भिन्न आमाजीर्ण या अग्निमान्द्य में भी यह औषध दे सकते हैं। अनुपान— भर्जित जीराचूर्ण और मधु; कोष्ठबद्धता होने पर हरीतकी चूर्ण और मधु; शूल होने पर बकरी का दूध।

महराजनृपतिवल्लभ—वाताश्रित ग्रहणी में, वातश्लेष्माश्रित ग्रहणी और संग्रहणी में पतला या आम से युक्त मल अथवा कोष्ठबद्धता, हृच्छूल, पार्श्वशूल, उदर में वेदना आदि लक्षण उपस्थित होने पर यह औषध रोग की मध्य या पुरातन अवस्था में देनी चाहिये। विसूचिका या उपद्रव रहित अलसक, विलम्बिका या पुरातन वातश्लेष्माश्रित अतिसार या पुरातन वाताजीर्ण रोग में यह औषध बहुत उपयोगी है। अधोगत अम्लपित्त रोग में एवं शूलरोग अग्निमान्द्य होने पर इसका सेवन कराना चाहिये। ग्रहणो या अतिसार रोग मे या वातकफ रोगमें। यह औषध अतिसय उपकारी है। अनुपान—भर्जित जीराचूण और मधु।

बृहत् पूर्णचन्द्ररस—पुराने पित्ताश्रित या वातपित्ताश्रित ग्रहणी रोग में दाह, हाथ-पैर में ज्वाला, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कटिशूल और आममिश्रित पतला

मल आता हो, तब इस औषध को देना चाहिये। अधोगत अम्लपित्तरोग में और पित्त-शूल में इस औषध का व्यवहार हो सकता है। विशेषतः जिस व्यक्ति का शरीर अतिशय कृश और दुर्बल हो एवं वातपित्त का प्रबलता हो, प्रमेह रहता हो, उनके पक्ष में यह औषध अत्यन्त लाभकारी है। अतिसार से पीड़ित व्यक्ति को यदि उपरोक्त सब रोग हों तब यह औषध सेवन करनी चाहिये। संग्रहग्रहणी रोग में आमवात के लक्षण अर्थात् कटिशूल, पृष्ठशूल आदि उपस्थित होने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—अतिसार की प्रबल अवस्था में जीराचूर्ण और मधु, अन्य अवस्थाओं में पान का रस और मधु।

पीयूषवल्ली रस—पैत्तिक ग्रहणी रोग में या वातपित्ताश्रित ग्रहणी रोग में रोगी नाना रंग का पतला मल त्यागता हो एवं आम से मिश्रित मल आता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। ग्रहणी रोग में रक्त से मिश्रित मल आता हो; तब इस औषध का प्रयोग करना चाहिये। आमातिसार, रक्तातिसार, रक्तप्रवाहिका रोग में तथा अन्य अवस्थाओं में इसका उपयोग किया जाता है। अनुपान—जला हुआ विल्व और ईक्षुगुड़।

शम्बूकादि वटी—वातज ग्रहणी रोग में हृदय, पार्श्व आदि स्थानों में वेदना, उदराध्मान, शूल आदि विद्यमान होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से अग्निमान्द्यजन्य शूल रोग नष्ट होता है। अनुपान-जल।

लोह पर्पटी—पैत्तिक, वातपैत्तिक या पित्तश्लेष्माश्रित ग्रहणी रोग के दीर्घ-कालीन होने पर अथवा आमग्रहणी रोग की मध्यावस्था में मल के साथ श्लेष्मा का अधिक भाग आने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। ग्रहणी रोगाक्रान्त व्यक्ति को अल्प ज्वर; कास अथवा शोथ आदि उपद्रव रहने पर यह औषध देना उत्तम है। सूतिकाश्रित ग्रहणी रोग में यह औषध दी जा सकती है। सूतिका रोग में अतिसार एवं शरीर के अतिकृश होने पर; शरीर में वातपित्त की अधिकता होने पर विशेषतः सूतिका रोग में शोथ, ज्वर आदि उपद्रव दीखने पर यह औषध देने पर अधिक लाभ होता है। सेवन विधि और नियम पीछे उल्लिखित हैं।

स्वर्ण पर्पटी—ग्रहणी रोग की मध्यमावस्था या पुरातन अवस्था में वातपित्त या पित्तकफ की अधिकता होने पर एवं रोगी को अतिशय दुर्बलता रहने पर रोगी को यह औषध नियम पूर्वक सेवन करानी चाहिये। ग्रहणी रोग में ज्वर, शोथ,

कास आदि लक्षण उपस्थित रहने पर यह औषध प्रयोग करने से अतिसार कम होता है एवं उपद्रव नष्ट होते हैं। यह औषध अतिशय वलवर्धक है।

पंचामृत पर्पटी—पित्ताश्रित ग्रहणी, पित्तश्लेष्मज ग्रहणी एवं संग्रह ग्रहणी रोग में नाना वर्ण युक्त आम संयुक्त या अपक्व श्लेष्मा या रक्तसंयुक्त अपक्व मल निकलना हो तब रोगी को यह औषध सेवन करानी चाहिये। प्रवल ग्रहणी रोग में शोथ, ज्वर आदि उपद्रव होने पर इसका उपयोग कर सकते हैं। ग्रहणी रोग की प्रथम या मध्यावस्था में यह औषध प्रयोग कर सकते हैं; परन्तु रोग के पुराना होने पर बहुत बार अच्छा लाभ नहीं होता। पुरातन अतिसार रोग में इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

विजय पर्पटी—पित्ताश्रित, पित्तश्लेष्माश्रित, वातश्लेष्माश्रित, सान्निपातिक या संग्रह ग्रहणी रोग में नाना रंग का पतला मल आता हो, अपक्व-कफ बहुल मल हो, आम से मिश्रित पतला मल अधिक परिमाण में आता हो, तब रोगी को यह औषध नियमपूर्वक देनी चाहिये। पुरातन आमातिसार; प्रवाहिका, पित्त-श्लेष्मातिसार एवं पुरातन ग्रहणी रोग में यह औषध विशेष लाभप्रद है। परन्तु अतिसार में ज्वर, शोथ आदि होने पर यह औषध बरत सकते हैं। जब किसी औषध से लाभ की आशा नहीं रहती, उस समय रोगी को यह औषध सेवन करने के लिये देनी चाहिये।

जीरकाद्य मोदक—वातश्लेष्मज या पित्तश्लेष्मज ग्रहणी रोग में रोगी को फ बहुल नाना वर्ण का अपक्व मल आता हो, आम और रक्तातिसार की पुरातन अवस्था में यह औषध रोगी को देनी चाहिये। पुराना ज्वर और अतिसार एक साथ रहते हों तब यह औषध बरतनी चाहिये। इसका प्रयोग अवस्था की विवेचना करके करना चाहिये। जिनमें वात-पित्त की अधिकता हो या वातपित्ताश्रित रोग में शरीर अतिकृश हो जाये; उनमें इस औषध के प्रयोग से विशेष लाभ नहीं होता। परन्तु वातश्लेष्म प्रधान या पित्तश्लेष्म प्रधान व्यक्तियों में अधिक लाभ होता है। अनुपान—जल।

श्री कामेश्वर मोदक—वातकफ प्रधान या कफ प्रधान ग्रहणी रोग में रोग पुराना होने पर अथवा वातकफ प्रधान अतिसार में रोगी का पतला मल आता हो, तब यह औषध देनी चाहिये। जिन रोगीयों का शरीर वात-कफ प्रधान या

कफ प्रधान होता है, उनको इससे विशेष लाभ होता है। वात. प्रधान रोगी में यह औषध नहीं वरतनी चाहिये। पुरातन अतिसार में शरीर अत्यधिक दुर्बल हो अथवा वात-कफ प्रधान या कफ प्रधान रोगी में स्वभावतः मलशुद्धि हो जाती हो, इस औषध के प्रयोग से शारीरिक बल और रतिशक्ति बढ़ती है। वातिक या श्लैष्मिक मेद आक्रान्त या शिरोरोगाक्रान्त व्यक्ति को अतिसार होने पर यह औषध नहीं देनी चाहिये।

श्री मदनान्दमोदक—वातश्लैष्मिक या श्लैष्मिक ग्रहणी रोग में अथवा वातश्लैष्मिक या श्लैष्मिक अतिसार की पुरातन अवस्था में रोगी को यह औषध देनी चाहिये। ग्रहणी रोग में जिनकी अग्नि बहुत मन्द हो अथवा जो शरीर से निर्बल हों, उनको यह औषध देनी चाहिये। पुरातन सूतिका रोग में वात कफ की अधिकता होने पर और अतिसार रहने पर यह औषध देनी चाहिये। किन्तु वातपित्त प्रधान अतिसार आदि में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। स्वभाव से जिनकी कोष्ठशुद्धि होती हो; शरीर में कफ या वातकफ की अधिकता हो, उनमें यह औषध वरतनी चाहिये। इससे रतिशक्ति और भूख बढ़ती है। यह औषध अति वीर्यवर्धक है। ग्रहणी और अतिसार में अनुपान—बकरी का दूध प्रातःकाल में दें, रतिशक्ति की निर्बलता में वाजीकरण के लिये—गाय का दूध और चीनी के साथ सायंकाल में देना चाहिये।

चांगेरी घृत—वातपित्त प्रधान ग्रहणी रोग की पुरातन अवस्था में रोगी को अग्निमान्द्य होने पर समय समय पर कोष्ठकाठिन्य और शरीर में वेदना आदि उपद्रव रहने पर यह घृत गरम दूध के साथ जितनी मात्रा में सहन हो सके देना चाहिये। जिन व्यक्तियों में आम से युक्त मल अधिक निकलता हो; शरीर में कफ की प्रधानता रहती हो, उनमें इसके सेवन से अधिक लाभ नहीं दीखता।

दाडिमादि तैल—वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक, आमग्रहणी अथवा प्रवाहिका रोग की पुरातन अवस्था में जब रोगी को स्नान या आहार के कारण समय समय पर रोग प्रबल हो जाता हो, उस अवस्था में उदर पर, नाभिप्रदेश पर यह तैल मलना चाहिये। पुरातन प्रमेह और अर्श रोग में यह तैल वरत सकते हैं।

बिल्व तैल—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक या संग्रह ग्रहणी रोग की पुरातन अवस्था में रोगी का स्नान और आहार सहन होता हो,

तब यह तेल उसके उदर और नाभिप्रदेश पर मलना चाहिये। यह औषध आम-पाचक और अग्निवर्धक है। पुरातन ग्रहणी रोग में या उसके साथ जीर्णज्वर या जीर्णज्वर में ग्रहणी रोग रहने पर यह तेल रोगी के शरीर और उदरप्रदेश पर मलना चाहिये। पुरातन सूतिका रोग में अतिसार या अल्प ज्वर दीखता हो, यह तेल रोगी के सर्वांग पर मालिश करना चाहिये। प्रसूति में शिरःशूल, पार्श्व-शूल, हृच्छूल, निद्रा का न आना, शरीर में दुर्बलता होने पर यह तेल शरीर पर मलकर स्नान कराना चाहिये। प्रसूति में जीर्णज्वर और उसके साथ में कास और श्वास रोग होने पर अथवा सूतिका रोग की पुरातन अवस्था में केवल कास और श्वास प्रबल रहने पर यह तेल रोगी के वक्षःस्थल पर मर्दन करना चाहिये। स्त्रियों में गर्भावस्था के समय उदर में वेदना एवं गर्भस्राव की आशंका रहने पर यह तेल मालिश करना चाहिये। स्त्रियों में कष्टार्त्तक के समय यह तेल बरत सकते हैं।

ग्रहणीमिहिर तैल—वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक संग्रहग्रहणी और आमातिसार रोग की पुरातन अवस्था में स्नान और आहार सह्य होने पर यह तेल उदर प्रदेश और नाभि भाग पर मलना चाहिये। रोग के पुराना होने पर स्नान और आहार सह्य न होता हो तब भी इसका उपयोग कर सकते हैं। यह तेल रक्तप्रवाहिका और रक्तातिसार में विशेष उपयोगी है। ग्रहणी रोग की पुरातन अवस्था में ज्वर, श्वास, कास, हिक्का रहने पर यह तेल प्रयोग कर सकते हैं। जिन मनुष्यों में प्रवाहिका दीर्घकाल से रहती हो अर्थात् मल आम एवं रक्त संयुक्त हो या केवल आममिश्रित मल आता हो, नाभिप्रदेश पर प्रबल वेदना होती हो; उनमें यह तैल नाभिदेश और उदर पर मलना चाहिये। जिन रोगों की पुरातन अवस्था में ज्वर, कास, थोड़ी मात्रा में रहता हो; उनमें यह तेल मलने से लाभ होता है।

ग्रहणी रोग में उदराध्मान चिकित्सा

हिंग्वष्टक चूर्ण—वाताश्रित या वातश्लेष्माश्रित ग्रहणी रोग में वायु के प्रकोप के कारण उदराध्मान हो, साथ में उद्गार आदि रहते हों; तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। प्रतिदिन उदराध्मान के कारण आमरस से पीठ आदि भागों में वेदना या शरीर में अवसन्नता प्रतीत होने पर यह औषध देनी चाहिये। औषध को प्रातः काल गरम जल के साथ देना चाहिये। उदराध्मान प्रबल होने पर प्रातः और सायं दोनों समय यह औषध देनी चाहिये।

चतुर्मुख रस—वातिक ग्रहणी रोग में रोगी को उदराध्मान रहता हो; उदराध्मान के कारण आमरस के कारण शरीर की सन्धियों में-कटिशूल, पृष्ठवंश और हृदय आदि में वेदना अनुभव होती हो; तब यह औषध देनी चाहिये। प्रमेह या धातुक्षय के कारण जिनका शरीर अति कृश हो जाय उनमें वाताश्रित ग्रहणी रोग के कारण उदराध्मान रहने पर औषध बहुत उपयोगी है। इसका प्रयोग प्रातः काल में करना चाहिये; अनुपान—तण्डुलोदक।

ग्रहणी रोग में आमवात चिकित्सा

वातगजेन्द्रसिंह—संग्रहग्रहणी रोग में, वातिक या श्लैष्मिक ग्रहणी रोग में दीर्घकाल से आमवात के लक्षण दीखते हों—हाथ-पैर कटिभाग में वेदना, सन्धियों में दर्द होती हो अथवा अतिसार के कारण हाथ-पैर सुन्न हो जायें, तब इस औषध को प्रतिदिन रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—मलबन्ध रहने से हरीतकी चूर्ण और सैन्धव लवण; स्वभाविक कोष्ठ होने पर उष्ण जल; वायु और पित्त प्रधान अवस्था में त्रिफला जल, और मधु।

रामबाण रस—संग्रहग्रहणी रोग में किसी ओर विशेष में अथवा सारे अङ्गों में दर्द होता हो; तब इस औषध को देना चाहिये। यह औषध अग्निवर्धक और आम पाचक है। आम रस के कारण जितने रोग उत्पन्न होते हैं; उन सब में इसका उपयोग कर सकते हैं। अनुपान—कोष्ठकाठिन्य होने पर आर्द्रक रस और सैन्धव लवण। मल शुद्ध आने पर जीरा चूर्ण और मधु; अतिसार के कारण शोथ होने पर श्वेत पुनर्नवा रस और मधु।

आमवातेश्वर रस—ग्रहणी रोग के पुराना होने पर विशेष करके संग्रह-ग्रहणी रोग में कटि-पीठ-ग्रीवा आदि में वेदना होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। यह अग्निवर्द्धक और आमरस पाचक। अनुपान—कोष्टकाठिन्य होने पर हरड़ का चूर्ण और सैन्धव लवण; कोष्ठ के स्वाभाविक होने पर उष्ण जल।

अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विसूचिका, अलसक और विलम्बिका चिकित्सा

वचादिपानीय—आमाजीर्ण रोग, वमन की इच्छा, शरीर में भारीपन, उद्गार-बाहुल्य होने पर यह पानीय रोगी को पिलाना चाहिये; इससे वमन होने पर अजीर्ण रोग नष्ट होता है।

धान्यक क्वाथ—आमाजीर्ण रोग में रोगी को उदर वेदना, शरीर में भारीपन, वमन, भुक्त द्रव्य के अनुसार उद्गार आता हो, यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। इससे अजीर्ण, उदर की वेदना नष्ट होकर मूत्राशय की शुद्धि होती है।

वड़वानल चूर्ण—अग्निमान्द्य रोग में भुक्त द्रव्य देर में पचता हो; इसके कारण अरुचि, अलसता, कार्य में अनिच्छा आदि लक्षण विद्यमान हों; तब यह औषध उष्ण जल के साथ प्रातः और अवस्था भेद से सायंकाल में भी देनी चाहिये। विषमाग्नि रोग में अग्नि की नियमिता न रहने पर यह चूर्ण देना चाहिये; यह चूर्ण वायु अनुलोमक और कोष्ठ शुद्धिकारक।

सैन्धवाद्य चूर्ण—अग्निमान्द्य रोग में देर से भुक्त द्रव्य का परिपाक, कार्य में अनिच्छा, अलसता आदि लक्षण दीखने पर, विषमाग्नि के कारण नियमपूर्वक भुक्त द्रव्य का न पचना, उदर में नाना प्रकार के शब्द होना, वायु का अधोरोध होने पर यह चूर्ण रोगी को प्रतिदिन प्रातः एवं अवस्था भेद से सायंकाल में उष्ण जल के साथ देना चाहिये।

हिंग्वष्टक चूर्ण—विषमाग्नि के कारण खाया हुआ द्रव्य ठीक प्रकार न पचता हो, वायु के रुकने से उदर में नाना प्रकार के शब्द अनुभव होते हों, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। विष्टब्धाजीर्ण के कारण पेट में अफारा, उदर में दर्द और कोष्ठकाठिन्य आदि लक्षण रहने पर यह चूर्ण देना चाहिये। अनुपान-उष्ण जल।

अग्निमुख चूर्ण—विषमाग्नि के कारण भुक्त द्रव्य ठीक समय पर न पचता हो, शरीर में ग्लानि, उदर में नाना प्रकार की ध्वनि होती हो तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। विष्टब्धताजीर्ण, कोष्ठबद्धता, उदराध्मान और उदर में वेदना आदि लक्षण दीखने पर रोगी को यह देनी चाहिये। यह औषध कोष्ठशुद्धिकारक, वातानुलोमिक और अग्निवर्द्धक है। अलसक और विलम्बिका रोग में यह औषध दी जा सकती है। प्रातः और सन्ध्याकाल में उष्ण जल से देनी चाहिये। प्लीहा और गुल्मादि रोग होने पर **बृहदग्निमुख चूर्ण** देना चाहिये। दिन व्यापी प्रात्याहिक अजीर्ण रोग के लिये बृहदग्निमुख चूर्ण उत्तम औषध है। इसको घृत में मिलाकर भोजन के साथ में देना चाहिये।

भास्कर लवण—विषमाग्नि रोग में खाया हुआ द्रव्य समय पर न पचता

हो, इसके कारण नाना प्रकार की ग्लानि उत्पन्न होती हो; विष्टब्धाजीर्ण, आमाजीर्ण, भुक्त द्रव्य का परिपाक न होने से कोष्टबद्धता; उदर शूल; मल में चिकास और अपक्व मल निकलता हो, कभी पतला और आम रस के कारण अपरिपाक होने से नाना प्रकार की वातवेदना आदि लक्षण दीखने पर यह औषध गरम जल के साथ प्रातः और सन्ध्याकाल में देनी चाहिये। इसको प्रात्याहिक अजीर्ण दोष में तथा रसशेषाजीर्ण में रोग के अनुसार देना चाहिये।

हुताशन रस—अग्निमान्द्य रोग में भुक्त द्रव्य देर से पचता हो; इसके कारण नाना प्रकार की ग्लानि होती हो एवं आमाजीर्ण रोग में अग्निमान्द्य के कारण नाना प्रकार के खट्टे-कडुवे उद्गार एवं अन्य लक्षण होते हों, तब यह औषध आर्द्रक रस के साथ रोगी को देनी चाहिये। यह औषध अजीर्ण दोष और विसूचिका रोग की प्रथमावस्था में २ या ३ बार मल साफ हो जाने पर देनी चाहिये; अनुपान—मोथे का रस और मधु।

अजीर्णकण्टक रस—अग्निमान्द्य के कारण खाया आहार देर में पचता हो, शरीर में भार और वेदना अनुभव होती हो, आमाजीर्ण रोग में नाना प्रकार के उद्गार, वमनेच्छा आदि लक्षण दीखते हों, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। वाताजीर्ण रोग में अवस्थानुसार इसका सेवन करने से लाभ होता है। स्निग्ध शरीर तथा पुष्ट धातु व्यक्ति में अतिरिक्त भोजन के कारण वाताजीर्ण के लक्षण दीखते हों, उसको यह औषध देनी चाहिये। विसूचिका रोग में दो या तीन बार मल साफ हो जाने पर प्रथमावस्था में इसका बरत सकते हैं। अनुपान—अग्निमान्द्य रोग में जल; विसूचिका में मोथे का रस और मधु।

बृहत्अग्निकुमार रस—अग्निमान्द्य, आमाजीर्ण, वाताजीर्ण, रसशेषाजीर्ण और अन्यान्य सब अजीर्ण अवस्थाओं में, सम्पूर्ण दिन में भी भुक्त द्रव्य का पूर्ण परिपाक न होता हो, तब इसका उपयोग करना चाहिये। यह औषध वात-पित्तादि प्रकृति भेद से सब पुरुषों में प्रायः उपयोगी होती है। यह औषध धारक; और वायुजनित उदराध्मानादि विनाशक है। विसूचिका रोग की शेष अवस्था में उपद्रव दूर हो जाने पर मल को घट्ट करने तथा अग्नि को बढ़ाने के लिये यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—जीराचूर्ण और मधु।

लंवगादि वटी—अग्निमान्द्य, आमाजीर्ण रोग से उत्पन्न विसूचिका रोग की

प्रथमावस्था में तथा मध्यमावस्था में यह औषध सेवन करने से पाचकाग्नि बढ़ती है, एवं अजीर्ण दोष नष्ट होता है। अनुपान—जल। अग्निमान्द्य और आमाजीर्ण में भूख की कमी, वमन तथा नाना रसयुक्त उद्गार आने पर, मल पतला-आम से मिला आता हो; तब रोगी को **वृहत् लवंगादि वटी** देनी चाहिये।

अग्नितुण्डी रस—अग्निमान्द्य और अजीर्ण रोग में भुक्त द्रव्य दीर्घकाल से पचता हो, फिर भोजन की अनिच्छा, शरीर में भारीपन और आलस्य आदि लक्षण दीखते हों, अजीर्णाक्रान्त रोगी को कृमिजन्य ज्वर, सर्दी, गले में घर्घराहट, समय समय पर वमन होता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। अजीर्ण रोग में पतला मल आता हो; तब मोथे का रस और मधु के साथ इसको देना चाहिये।

भास्कर रस—आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण या अग्निमान्द्य रोग के विविध लक्षण उपस्थित होने पर, विशेषतः अजीर्ण दोष के कारण पतला मल, वक्ष में दाह; उदर और नाभि में दर्द होने पर यह औषध देनी चाहिये। विसूचिका रोग के आरम्भ में और पीछे उपद्रवादि नष्ट हो जाने पर यह औषध देनी चाहिये। अग्निमान्द्य और अजीर्ण रोग में पान के साथ वटी का चर्वण करके खाना चाहिये।

शंख वटी—अग्निमान्द्य, आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण, विषमाग्नि रोग में रोगी को यह औषध देनी चाहिये। यह अग्निवर्धक, कोष्ठाश्रित वायु का अनुलोमक, उदराध्मान और अजीर्ण दोषनाशक है। भुक्त द्रव्य के अपरिपाक के कारण अम्लोद्गार एवं तज्जनित वक्षःस्थल और हृदय में दाह आदि उपद्रव इससे नष्ट होते हैं। अधोगत अम्लपित्त रोग में यह औषध प्रयोग कर सकते हैं। विशेषतः अजीर्ण दोष में उदर में वेदना इससे नष्ट होती है। अनुपान—जल, पतला मल आने पर मोथे का रस या भर्जित जीरा और मधु।

वृहत् शंखवटी—शंखवटी से अधिक गुणकारी है; इसको दीर्घकालीन आमाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण में देना चाहिये; इससे भुक्त द्रव्य शीघ्र पच जाता है, भूख बढ़ती है, दीर्घकालीन उदराध्मान क्रमशः कम होता है; आम दोष नष्ट होकर मल गाढ़ा होता है; अनुपान-उष्ण जल। प्रातः काल में देनी चाहिये।

त्रिवृतादि मोदक—विदग्धाजीर्ण, आमाजीर्ण, अग्निमान्द्य तथा नाना कारणों से अग्नि के विकृत होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अम्लपित्त रोग में, अग्निमान्द्य की अवस्था में, विशेषतः मलावरोध होने पर हाथ-पैर में दाह, अरुचि आदि लक्षण रहने पर यह औषध लाभकारी है; अनुपान—जल।

सुकुमार मोदक—विष्टब्धाजीर्ण रोगी को कोष्ठबद्धता, उदराध्मान होने पर यह औषध देनी चाहिये। परन्तु जिनको नियमतः मलबन्ध न हो, अर्थात् किसी दिन मलबन्ध और किसी दिन पतला मल आता हो उनको यह औषध नहीं देनी चाहिये। यह औषध उदावर्त्त और आनाह रोग में अतिशय लाभकारी है। स्वभाविक रूप से जिस व्यक्ति को मलबन्ध रहता हो; उसके लिये यह औषध अमृत तुल्य है। प्रातः काल या रात्रि में भोजन के पीछे जल से खानी चाहिये। मात्रा ½ से १ तोला।

अमृत हरीतकी—विष्टब्धाजीर्ण में कोष्ठबद्धता, उदर-कटि भाग-ग्रीवा आदि स्थानों में दर्द, उदर में गुड़गुड़ ध्वनि, उदराध्मान; उदर में वायु का भरना, आदि लक्षण हों, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। आनाह, वातज अर्शः एवं वाताश्रित ग्रहणी रोग में लाभ होता है। यह औषध नूतन और पुरातन दोनों अवस्थाओं में समान लाभप्रद है। इसके सेवन करने से कोष्टशुद्धि, अजीर्ण का नाश तथा पाचकाग्नि बढ़ती है अनुपान—जल।

अग्निघृत—अग्निमान्द्य रोग के पुराना होने पर आमरस के कारण हृदय, पार्श्व और वक्षःस्थल में वेदना एवं पित्त के विपर्यय के कारण क्षुधामान्द्य, समय-समय पर अतिसार, वक्षःस्थल में दाह, आँखों में निर्बलता आदि उपद्रव होने पर यह औषध देनी चाहिये। वायु और पित्त की विवेचना करके रोगी को यह घृत सेवन करने देना चाहिये। अर्थात् जिसको कोष्टकाठिन्य, अग्निमान्द्य हो; उसके लिये यह औषध देनी चाहिये। परन्तु जिन रोगियों में अग्निमान्द्य के कारण पतला मल जल की भांति आता हो, अथवा आमरस युक्त मल आता हो, उनको यह औषध नहीं देनी चाहिये। विशेष करके बालक, नवप्रसूता, ज्वर, कास, सार्दी आदि से रोगाभिहत व्यक्ति को यह औषध नहीं देनी चाहिये। अनुपान—बकरी का उष्ण दूध।

अजीर्ण रोग में ज्वरचिकित्सा

अग्निकुमार रस—अग्निमान्द्य, विषमाग्नि, आमाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण रोग में ज्वर होने पर रोगी को लंवग चूर्ण के साथ यह औषध एक एक गोली देनी चाहिये। अजीर्ण के कारण दो या एक बार अतिसार—पतला मल आ जाये, साथ में ज्वर भी हो, अथवा अजीर्ण रोग के कारण अत्यधिक पतला मल और साथ में ज्वर हो, तब सोंठ का चूर्ण अथवा धनिया और सोंठ के क्वाथ के साथ प्रयोग

करना चाहिये। यह औषध अतिसार में मल का परिपाक होने पर अथवा ग्रहणी रोग में आम से मिला पतला मल आने पर या अतिसार की प्रकोपावस्था में ज्वर होने पर, धनिया और सोंठ के क्वाथ से अथवा मोथे का रस और मधु अथवा भर्जित जीरा चूर्ण और मधु के साथ देनी चाहिये।

मृत्युञ्जय रस—अग्निमान्द्य या अजीर्ण रोग में पुरातन ज्वर मृदुरूप से रहता हो, तब यह औषध जम्बीरी निम्बू के रस के साथ देनी चाहिये। यदि अजीर्ण प्रबल हो, ज्वर का वेग अधिक रहता हो, तब निम्बू के स्थान पर पान के रस के साथ देना उचित है। क्योंकि अम्ल रस के साथ ज्वर का आमरस मिलकर पित्त को अधिक प्रकुपित करता है।

अजीर्ण रोग में शिरःशूल और शरीर में वेदना चिकित्सा

रामबाण रस—आमाजीर्ण, अग्निमान्द्य और विष्टब्धाजीर्ण आदि अवस्थाओं में कटिभाग, ग्रीवा या अन्यान्य सन्धिस्थानों में या सर्वांग में वेदना अनुभूत होती हो, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—हल्दी का पत्र रस और मधु। अजीर्ण के कारण अतिसार या पतला द्रव मल आता हो तो जीरा चूर्ण और मधु अथवा केवल मात्र जल से औषध देनी चाहिये। जल के समान पतला मल आने पर मोथे का रस और मधु।

वातगजेन्द्रसिंह—अग्निमान्द्य, आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण रोग चिरकाल स्थायी होने पर कटिदेश, हाथ, पैर या अन्य स्थान में वेदना विद्यमान हो; तो यह औषध रोगी को सेवन करानी चाहिये। वाताजीर्ण रोगी में सर्वदा कोष्ठ काठिन्य रहने पर इसके उपयोग से लाभ नहीं होता; अनुपान—हरीतकी चूर्ण और सैन्धव नमक।

अजीर्ण रोग में शूल चिकित्सा

शूलहरण योग—अग्निमान्द्य; आमाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण आदि में आहार द्रव्य के ठीक प्रकार न पचने से रोगी के आमाशय, पक्वाशय या बस्तिस्थान के एक भाग में अथवा सम्पूर्ण उदर में वेदना होती हो; तब रोगी को यह औषध गरम दूध के साथ देनी चाहिये। उदर के विशेष स्थान में नियमित समय पर प्रतिदिन वेदना होने पर इस औषध से लाभ होता है। अजीर्णताजन्य साधारण वेदना में इसको नहीं देना चाहिये।

शंखादि चूर्ण—अग्निमान्द्य, आमाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण आदि रोग में उदर के स्थान विभाग से प्रतिदिन वेदना होती हो; तो यह चूर्ण रोगी को गरम जल के साथ देना चाहिये। अजीर्ण दोष की साधारण वेदना में यह औषध नहीं देनी चाहिये।

विसूचिका रोग में हिक्का और वमन चिकित्सा

चन्द्रकान्ति रस—विसूचिका रोग में वमन होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। वायु के प्रकोप के कारण उदराध्मान एवं मल-मूत्र दोष या तज्जनित कोई लक्षण उपस्थित होने पर इसको नहीं देना चाहिये; अनुपान—खीरे की मींगी और गौदुग्ध।

पिप्पल्याद्य लोह—विसूचिका रोग में बार बार वमन होता हो, पित्त के प्रकोप के कारण वमन तिक्त रस से मिला नीला अथवा पीला हो, अजीर्ण पदार्थ बाहर आता हो; तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। जिनको वमन में पित्त अधिक मात्रा में आता हो; उनके लिये यह औषध अतिशय उपकारी है। वमन के साथ में हिक्का भी हो; तब भी इसको दे सकते हैं; अनुपान—खीरे की मींगी और गाय का दुग्ध।

विसूचिका रोग मे उदराध्मान, मल और मूत्र रोग चिकित्सा

दारुषट्कलेप—विसूचिका रोग में अन्य उपद्रवों के साथ अथवा केवल उदर में आध्मान दीखने पर यह औषध यथानियम बनाकर रोगी के उदर पर लेप करनी चाहिये। जब तक आध्मान न हटे, या पुनः आध्मान की आशंका हो; तब तक इसका लेप प्रयोग करना चाहिये।

यव प्रलेप—विसूचिका रोग की प्रबल अवस्था में अन्य उपद्रवों के साथ या केवल आध्मान होने पर यह औषध वरतनी चाहिये।

चतुर्मुख रस—विसूचिका रोग में मूत्र का अवरोध, हाथ-पैर में दाह; अन्य उपद्रवों के साथ उदराध्मान लक्षित होने पर यह औषध रोगी को सेवन के लिये देनी चाहिये। अनुपान—चावलों का धोवन।

क्षारयोग—विसूचिका रोग की प्रबल अवस्था में उदराध्मान एवं साथ में प्रस्राव बन्द होने पर यह औषध एक एक घंटे के अन्तर से रोगी को देनी चाहिये; अनुपान—शोरे का जल अथवा पाषाणभेद के पत्ते का रस। मूत्र आने पर यह औषध बन्द कर देनी चाहिये।

वर्टापत्री प्रलेप—विसूचिका रोग की प्रबल अवस्था में रोगी को मूत्राव बन्द हो जाये एवं साथ साथ में उदराध्मान आदि अन्य उपद्रव दीखते हों, उस समय यह औषध वस्ति स्थान पर लगानी चाहिये। मूत्र आने पर यह औषध बन्द कर देनी चाहिये (कच्चा हिमसागर का पत्ता १ छटाक और यवक्षार १ तोला मिलाकर पीस कर लेप करना चाहिये)।

हिंग्वाद्यवर्त्ति—विसूचिका रोग में मल के रुकने से उदर में आध्मान होने से यथानियम वर्त्ति प्रस्तुत करके मलद्वार में रखनी चाहिये। इससे मल आता है और आध्मान मिटता है।

विसूचिका रोग में पिपासा चिकित्सा

कर्पूर पानीय—विसूचिका रोग में रोगी को अतिशय तृषा रहने पर यह जल पिपासा काल में रोगी को बार-बार देना चाहिये। (Aqua camphor—१ पाव जल में—२ रत्ती कर्पूर मिलाकर इसे बनायें)।

जम्बूक्वाथ—विसूचिका रोग की प्रवल अवस्था में निरन्तर प्यास लगती हो, साथ में वमन विद्यमान हो, तो यह क्वाथ शीतल करके अल्प मात्रा में बार-बार देना चाहिये [जामुन का कोमल पल्लव २ तोला, पानी ३२ तोला, शेष ८ तोला मधु ½ तोला मिलायें]।

विसूचिका रोगमें हिमांग, ज्ञानलोप, नाड़ी की गति बदलने पर चिकित्सा

मृतसंजीवनी सुरा—विसूचिका रोग में नाडी की गति में शिथिलता एवं कफ की अधिकता के कारण रोगी का शरीर शीतल प्रतीत होता हो; तब औषध ½ घण्टे या १ घण्टे के अन्तर से देनी चाहिये। इसको सन्निपातज्वर की हिमांग अवस्था में भी रोगी को सेवन करा सकते हैं। इस औषध से भली प्रकार नींद आने पर रोग की निवृत्ति होती है।

मृगमदासव—विसूचिका रोग की प्रवल अवस्था में रोगी का ज्ञानलोप, शरीर में शिथिलता, नाडी की गति का बदलना आदि लक्षण दीखते हों, तो यह औषध आधे घंटे के अन्तर से रोगी को देनी चाहिये। जब तक नाड़ी की गति में स्वाभाविकता न आजाये एव शरीर में उष्णिमा का बोध न हो; तव तक यह औषध बार-बार देनी चाहिये। सन्निपात ज्वरमें हिमांग या नाडी की गति में शिथिलता होने पर यह औषध अतिशय उपकारी है।

बृहत्कस्तूरी भैरव—विसूचिका रोग में यदि श्लेष्मा के प्रकोप के कारण शरीर में शिथिलता, ज्ञानलोप, नाडी की गति का बदलना, हो तो यह औषध रुद्राक्ष को घिसकर, गाय के दुग्ध में मिलाकर अथवा ताल के रस और मधु के साथ देनी चाहिये। पित्त की अधिकता से वमन प्रबल होने पर इससे अधिक लाभ नहीं होता किन्तु वमन की निवृत्ति होने पर अथवा अल्प वमन होने पर खीरे की मींगी और गाय के दुग्ध के साथ देना चाहिए [गाय का दुग्ध—कच्चा दूध]।

बृहत् सूचिकाभरण रस—विसूचिका रोग में श्लेष्मा के कुछ अधिक प्रकोप के कारण नाडी की गति का लोप, शरीर में सहसा शीतलता, ज्ञानलोप और अन्य उपद्रव होने पर तथा अन्य किसी औषध से लाभ न होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। औषध देने के पीछे नाड़ी की गति में कुछ उष्णिमा बोध होने लगे, तब रोगी के शिर और शरीर पर बार-बार तिल तैल लगाकर जलधारा देनी चाहिये, शीतल उपचार करना चाहिये, दही, नारियल जल पीने को देना चाहिये। बालक, वृद्ध, गर्भवती को यह औषध नहीं देनी चाहिये। अनुपान—नारियल का जल।

बृहत् चन्द्रोदय मकरध्वज—विसूचिका रोग में अत्यधिक, अतिसार या वमन द्वारा या अन्य उपद्रवों के कारण से रोगी का शरीर अति निर्बल, नाड़ी में शिथिलता, शरीर की शक्ति में निर्बलता दीखती हो, तो रोगी को प्रतिदिन यह औषध देनी चाहिये। वात, वमन, उदराध्मान आदि उपद्रव समूह विद्यमान होने पर यह औषध नहीं बरतनी चाहिये। उपद्रवों के हटने पर नाड़ी में स्तब्धता, शरीर में ताप संरक्षण के लिये यह औषध देनी चाहिये। वायु और पित्तप्रधान शरीर में यह औषध नहीं बरतनी चाहिये। अनुपान—पान का रस और मधु।

मकरध्वज गुटिका—विसूचिका रोग में वमन, अतिसार, हिक्का और अन्यान्य कारणों से शरीर में अधिक दुर्बलता, नाडी में शिथिलता, इन्द्रियों में निर्बलता आदि लक्षण दीखते हों, तो यह औषध रोगी को पान के रस और मधु के साथ देनी चाहिये। उपद्रव समूह होने पर अधिक दुर्बलता एवं कृशता होने पर औषध देने से विशेष लाभ नहीं होता। इसके सेवन से शरीर में दुर्बलता, नाडी में हुई विशृंखलता नष्ट होती है। रोगी बहुत दुर्बल हो तो मांसरस और दूध आदि पुष्टिकर और बलकर औषध देनी चाहिये।

विसूचिका रोग में खल्ली-चिकित्सा

कुष्ठाद्य मर्दन और कुष्ठाद्य तैल—विसूचिका रोगी के हाथ-पैरों में ऐंठन, रोगी के उदर में वेदना होने पर रोगी के इन स्थानों पर औषध मर्दन करनी चाहिये। जब तक ऐठन दूर न हो, तब तक यह औषध मलनी चाहिये। खल्ली नामक वात व्याधि में (खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटनी) इस तैल का मर्दन उत्तम है।

दार्व्यादि मर्दन और दार्व्यादि तैल—विसूचिका रोग में हाथ-पैर में ऐठन होने पर उस स्थान पर इस तैल की मालिश करनी चाहिये। जब तक ऐठन रहे, तब तक इससे मालिश करनी चाहिये। इस औषध द्वारा तैल पाक करके मालिश करनी चाहिये।

अलसक और विलम्बिका रोग में उदराध्मान चिकित्सा

दारुषट्क लेप—अलसक, विलम्बिका रोग में उदराध्मान प्रबल एवं मल-मूत्र का एक साथ अवरोध होने पर समय समय पर उद्गार आता हो; तो यह औषध रोगी के उदर पर लेप करनी चाहिये। अलसक और विलम्बिका रोग की यह उत्कृष्ट औषध है। प्रति दो या तीन घण्टे पीछे नया प्रलेप लगाना चाहिये।

यवप्रलेप—अलसक और विलम्बिका रोग में उदराध्मान प्रबल होने पर तथा उसके साथ में मल-मूत्र का रोध; उद्गार आदि लक्षण दीखते हों, तो यह औषध विधिपूर्वक बनाकर उदर पर प्रलेप लगाना चाहिये। दो या तीन घण्टे पीछे फिर बदल देना चाहिये।

फलवर्त्ति—अलसक और विलम्बिका रोग में उदराध्मान प्रबल एवं इसके कारण से मल और मूत्र का अवरोध होने पर वर्त्ति गुह्यदेश में रखनी चाहिये। कुछ देर वर्त्ति के रखने से वायु बाहर आने से कोष्ठ-शुद्धि होती है। यह वर्त्ति विसूचिका और अन्यान्य वायु प्रधान रोग में आध्माननाशक है।

हिंग्वष्टक चूर्ण—अलसक और विलम्बिका रोग में आध्मान होने पर यह औषध गरम जल के साथ दो दो घंटे के अन्तर से रोगी को देनी चाहिये। यह औषध अजीर्णजनित अलसक रोग की प्रथमावस्था में विशेष रूप से प्रयोग की जा सकती है। रोग की प्रबलावस्था में तथा अन्यान्य बाह्य प्रलेपादि के साथ इसको बरत सकते हैं। अनुपान—उष्ण जल।

चतुर्मुख रस—अलसक और विसूचिका रोग में उदराध्मान, साथ में मल-मूत्र का अवरोध, उद्गार होने पर दो-तीन घंटे के अन्तर से रोगी को एक एक गोली देनी चाहिये। इसके सेवन से कोष्ठमिश्रित वायु का अनुलोम होता है। अलसक और विलम्बिका रोग में वायु की प्रबलता होने पर एवं वायु पित्ताधिक शरीर में यह औषध विशेष उपकारी है। अनुपान—त्रिफला का शीत कषाय।

हरीतक्यादि चूर्ण—अलसक, विलम्बिका रोग में उदराध्मान होने पर यह चूर्ण रोगी को एक घंटे के अन्तर से देना चाहिये। रोग की प्रबल अवस्था में अन्य बाह्योपचार साथ में करने चाहियें। अनुपान—उष्ण जल।

चिन्तामणि रस—अलसक, विलम्बिका रोग में उदराध्मान एवं साथ में मल-मूत्र का अवरोध, उद्गाराधिक्य आदि लक्षण दीखने पर रोगी को यह औषध त्रिफला के शीत कषाय के साथ देनी चाहिये।

हिंग्वाद्य वर्त्ति—अलसक, विलम्बिका रोग में उदराध्मान होने पर साथ में मल-मूत्र का अवरोध एक साथ में रहे तो यह वर्त्ति मल द्वार में लगानी चाहिये। जब तक आध्मान हट न जाये और मल न आये तब तक यह वर्त्ति बरतनी चाहिये।

अलसक और विलम्बिका रोग में मल-मूत्रावरोध चिकित्सा

आमलकी प्रलेप—मूत्रावरोध होने पर आंवलों को पीसकर बस्ति प्रदेश पर लगाना चाहिये।

सुकुमार मोदक—अलसक और विलम्बिका रोग में मलबन्ध होने पर बाह्य अन्य ओषधियों के उपयोग के साथ में इस औषध को गरम जल से देना चाहिये।

वटपत्री प्रलेप—अलसक और विलम्बिका रोग में मूत्रावरोध से बस्ति भाग आध्मापित हो जाये, तब यह प्रलेप बस्ति भाग पर लगा देना चाहिये।

अम्लपित्त चिकित्सा

वासादि क्वाथ—अम्लपित्त रोगी को ज्वर, शरीर में भारीपन, शरीर में खाज, शरीर में जलन होने पर यह क्वाथ शीतलावस्था में अपराह्न में रोगी को देना चाहिये।

त्रिफलादि क्वाथ—ऊर्ध्वगत अम्लपित्त रोग में ज्वर, वमन, शरीर में दाह आदि उपद्रव होने पर यह क्वाथ सिद्ध करके शीतल बनाकर प्रातःकाल में पीना चाहिये।

गुडूच्यादि क्वाथ—ऊर्ध्वगत अम्लपित्त रोग में हाथ-पैरों में दाह, ज्वर, वमन, शरीर में कण्डू, पिड़का आदि उपद्रव दीखने पर इस औषध को ठण्डा करके रोगी को सेवन कराना चाहिये।

दशांग क्वाथ—ऊर्ध्वगत अम्लपित्त रोग में हाथ-पैर में दाह, वमन, शरीर में भारीपन, पिडका आदि उपद्रव होने पर यह क्वाथ शीतल करके रोगी को सेवन कराना चाहिये।

पटोलादि क्वाथ—पित्तश्लेष्मा रोग में अथवा अम्लपित्त रोग में पित्त-कफ प्रबल होने पर एवं कोष्ठकाठिन्य, ज्वर, वमन, शरीर में भारीपन, भ्रम आदि विद्यमान होने पर यह क्वाथ रोगी को सेवन करने के लिये देना चाहिये।

पित्तान्तक रस—अधोगत अम्लपित्त रोग में वमन, अतिसार, भ्रम आदि उपद्रव, अरुचि होने पर रोगी को यह औषध अपराह्न में देनी चाहिये। अनुपान—धनिया और पटोल का हिम कषाय।

हिंग्वादि चूर्ण—ऊर्ध्वगत अम्लपित्त रोग में रोगी को वमन, शूल और ज्वर आदि उपद्रव होने पर यह औषध उष्ण जल के साथ सेवन करानी चाहिये।

श्लेष्मपित्तान्तक रस—श्लेष्मपित्त रोग में मूर्च्छा, भ्रम, वमन, आलस्य, शिरोवेदना आदि लक्षण दीखने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से पित्तजन्य उपद्रव नष्ट होते हैं। अनुपान—हरीतकी, पिप्पली, गुड़ और सोंठ का चूर्ण समभाग।

पित्तान्तक लौह—ऊर्ध्वगत अम्लपित्त रोग में रोगी के उदर और पार्श्व में वेदना, हाथ-पैर में दाह; ज्वर, शरीर में कण्डू, पिड़िका आदि उपद्रव होने पर यह औषध पटोल पत्र के रस के साथ रोगी को देनी चाहिये। वक्षःस्थल में ज्वाला; कुक्षिप्रदेश में वेदना; अम्लपित्त के कारण शरीर में कण्डू आदि शिकायतों में यह बहुत उपयोगी है।

पानीय भक्त वटिका—अम्लपित्त रोग में उदर या पार्श्व भाग में शूल, पार्श्वशूल, मन्दाग्नि, ग्रहणी रोग रहने पर यह औषध रोगी को अपराह्न में देनी चाहिये। अनुपान—चावलों का धोवन।

अम्लपित्तान्तक रस—अम्लपित्त रोगी में शरीर में दाह; कुक्षिशूल और वमन वेग आदि उपद्रव अथवा ऊर्ध्वगत या अधोगत अम्लपित्त के सम्पूर्ण लक्षण दीखने पर रोगी को यह औषध अपराह्न में देनी चाहिये।

शुण्ठी खण्ड—अम्लपित्त रोग में हृदय और कुक्षिभाग में शूल, अग्नि-मान्द्य, वमन और कटिदेश या सन्धिस्थान में वेदना आदि लक्षण दीखने पर यह औषध रोगी को जल के साथ देनी चाहिये। इससे अग्नि बढ़ती है। वात-कफाश्रित या पित्त-कफाश्रित अम्लपित्त में अतिशय उपकारी है।

सौभाग्यशुण्ठी मोदक—अम्लपित्त रोग में अग्निमान्द्य होने से साथ में शरीर में दर्द, भार, शूल, हृच्छूल, शिरःशूल, पार्श्वशूल, अलसता आदि वात-श्लैष्मिक या पित्तश्लैष्मिक अम्लपित्त के लक्षण दीखने पर यह औषध शीतल जल या गाय के दूध के साथ देनी चाहिये। यह औषध अम्लपित्त में, सूतिका ग्रहणी की पुरातन अवस्था में उपद्रव होने से बहुत उत्तम है। यह पुष्टिकारक, बलकारक और शुक्रवर्धक है।

शतावरी घृत—अम्लपित्त रोग में रोगी को मूर्च्छा, निद्रानाश, शरीर में दाह, पित्ताधिक्य या विविध उपद्रवों के कारण मानसिक दुर्बलता अर्थात् चित्त-चांचल्य आदि लक्षण दीखने पर यह घृत देना चाहिये। अतिसार की प्रबलावस्था में घृत नहीं देना चाहिये। साधारणतः मन्दाग्नि होने पर अल्प परिमाण में अपराह्न काल में देना चाहिये। शुक्र और बलवर्धक है। अनुपान—गरम दूध।

जीरकाद्य घृत—श्लेष्मपित्त रोग में मन्दाग्नि, वमन, अरुचि होने पर रोग की पुरातन अवस्था में यह घृत रोगी को देना चाहिये। अनुपान-गरम दूध।

श्रीविल्वतैल—अम्लपित्त रोग में रोगी को अतिसार, हाथ पैर में दाह, शरीर में अधिक दुर्बलता, ज्वर आदि उपद्रव विद्यमान होने पर रोग की पुरातन अवस्था में यह तैल नाभिप्रदेश पर तथा रोगी के अन्य अंगों पर मलना चाहिये। यह अतिसारशामक और पुष्टिकारक है। स्त्रियों में सूति का रोग में अतिसार होने पर यह तेल प्रयोग करना चाहिये।

अम्लपित्त में वमन चिकित्सा

धात्री लौह—अम्लपित्त रोग में अम्ल बाहुल्य वमन हो अथवा तिक्त या अम्लरसयुक्त उद्‌गार आता हो तो यह औषध अपराह्न में पटोलपत्ररस अथवा धनिया और पटोल के हिम कषाय से रोगी को देना चाहिये। अम्लपित्त रोग में वमन के साथ हाथ-पैर में दाह, पार्श्वदेश तथा वक्षःस्थल में वेदना या शूल आदि उपद्रव होने पर यह औषध उत्तम गुणकारी है। यह औषध बहुत लाभकारी हो सके

इसलिये भोजन के आदि, मध्य और अन्त में घृत और मधु के साथ सेवन कराने से उत्कट शूल रोग नष्ट होता है।

सप्तामृत लौह—अम्लपित्त रोग में भोजन के अन्त में या अपराह्ण में अम्लरसयुक्त वमन होता हो तो यह औषध रोगी को मध्याह्न या अपराह्ण में सेवन करानी चाहिये। अम्लपित्ताश्रित शूलरोग में, तिमिर रोग में प्रातः घृत और मधु के साथ सेवन करानी चाहिये। अनुपान-गोदुग्ध।

सितामण्डूर लौह—अम्लपित्त रोग में आहार के पीछे मध्याह्न में अथवा किसी अन्य समय में वमन होने पर यह औषध रोगी को ऊपराह्ण से पहले देनी चाहिये। यह अम्लपित्त जनित शूल रोग में बहुत लाभकारी है। हाथ-पैर में दाह, मूर्च्छा, शूल, आदि उपद्रव अम्लपित्त के साथ होने पर इस औषध से नष्ट होते हैं। अनुपान-शीतल गोदुग्ध।

पथ्यादियोग—अम्लपित्त रोग में खाली पेट या कुछ खाने से वमन होता हो और मलबन्धता रहती हो तो इस औषध से बहुत जल्दी वमन नष्ट होता है।

अम्लपित्त में अतिसार चिकित्सा

अमृतार्णव रस—अधोगत अम्लपित्त रोग में जल के समान या श्लेष्मा-मिश्रित पतला मल आता हो एवं उदरशूल उपस्थित हो, तब यह औषध प्रातः और सन्ध्या काल में अथवा एक वार सेवन करनी चाहिये। अनुपान-मोथे का रस अथवा भर्जित जीरा चूर्ण और मधु।

ग्रहणीगजेन्द्र वटिका—अधोगत अम्लपित्त रोग में जल की भांति पतला मल आने पर तथा साथ में उदरवेदना, पिपासा आदि उपद्रव रहने पर यह औषध रोगी को प्रातः, सन्ध्या काल में एक वार ही देनी चाहिये। अनुपान-जीरा-चूर्ण और मधु।

बृहत् पूर्णचन्द्ररस—अधोगत अम्लपित्त रोग में रोगी को पतला मल आता हो एवं साथ में ग्रीवा, पीठ, पार्श्व और कटिभाग में वेदना होती हो; वायु के उपद्रव रहते हों; शरीर में बहुत निर्वलता हो; तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन करने से अम्लपित्त, अतिसार जनित सब उपद्रव नष्ट होते हैं। अतिशय बल और शुक्र वर्धक औषध है। अनुपान-अतिशय पतलामल आने पर भुना जीराचूर्ण और मधु; बहुत पतला मल न होने पर पान का रस और मधु।

बृहत् लवङ्गादि वटी—अधोगत अम्लपित्त रोग में अतिसार होने पर अर्थात् आमसंयुक्त पतला मल रोगी को आता हो, साथ में आध्मान, कटि-पीठ-कुक्षिस्थान में वेदना आदि उपद्रव दीखने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—उष्ण जल।

महाराजनृपतिवल्लभ रस—अधोगत अम्लपित्त रोग में प्रतिदिन २ या तीन दिन के अन्तर से बारबार जल की भांति पतला मल आता हो अथवा आम से मिला मल आता हो; साथ में रोगी को वमन एवं हृदय-पार्श्व-कुक्षि में वेदना और अजीर्ण आदि होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। यह अम्लपित्ताश्रित ग्रहणी रोग की उत्कृष्ट औषध है। प्रतिदिन प्रातः और सायं काल एक बार देनी चाहिये। अनुपान-भर्जित जीराचूर्ण और मधु।

शंखवटी—अधोगत अम्लपित्त रोग में पतला मल आने पर और साथ में उदराध्मान, गले में दाह अथवा दुर्गन्धयुक्त उद्गार आने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। जिन व्यक्तियों को उदराध्मान, गले में दाह, दुर्गन्धित उद्गार होता हो; उनको यह औषध देनी चाहिये। जिन व्यक्तियों को उदराध्मान, उद्गार न आता हो; केवल अतिसार हो, उनमें भी बहुत कुछ लाभ इससे होता है। यह औषध अग्निवर्धक है। अनुपान-भर्जित जीराचूर्ण और मधु; अथवा मोथे का रस और मधु।

लवङ्गादि मोदक—अधोगत अम्लपित्त रोग में रोगी को नाना वर्ण का पतला मल एवं साथ में वक्षःस्थल में दाह, अग्निमान्द्य और उद्गार आदि लक्षण होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। यह बलवर्धक और पुष्टि कारक है। अनुपान-जल।

रस पर्पटी—अधोगत अम्लपित्त रोग में वात कफ की अधिकता वाले रोगी को पतला मल आता हो, एवं इस प्रकार की अवस्था देर तक बनी रहती हो, अन्य ओषधियों से लाभ न होता हो तो उसे यह औषध देनी चाहिये। अम्लपित्त रोग में जिसको अतिसार की प्रबलता से सम्पूर्ण सन्धिस्थानों में दर्द एवं ऊर्ध्वगत श्लेष्मा रोग दीखने लगे, उनको यह औषध नियमपूर्वक सेवन करानी चाहिये। इसको देने के समय रोगी को बहुत हल्का पथ्य देना चाहिये। प्रतिदिन दूध जितना सह्य हो अवश्य देना चाहिये।

विजयपर्पटी—अधोगत अम्लपित्त रोग की पुरातन अवस्था में अर्थात्

अतिसारावस्था चिरकाल की हो जाये, जब कि स्वस्थता की आशा कम हो जायें; उस समय रोगी को यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से रोगी का बल बढ़ता है। अम्लपित्त रोग में अतिसारनाशक यह उत्तम औषध है। इस औषध के सेवन काल में रोगी को लघुपाक अन्न और भोजन तथा दूध योग्य मात्रा में देना चाहिये।

अम्लपित्त में उदराध्मान चिकित्सा

चिन्तामणि रस—अम्लपित्त रोग में वायु के प्रकोप के कारण सर्वदा या कुछ समय के लिये आध्मान दीखता हो; इसके साथ नींद न आती हो, शिर में चक्कर आता हो तो यह औषध रोगी को अपराह्न में एक बार अथवा अवस्थानुसार दो बार देनी चाहिये। यह बलवर्धक और पुष्टिजनक है। अनुपान–कोष्टबद्धता की अवस्था में सोंठ; हरड़, बहेड़ा और आंवला का हिम कषाय २ तोला और मधु ३ या ४ बूंद मिलाकर दें। अतिसार रहने पर तण्डुलोदक और मधु दो बूंद।

चतुर्मुख रस—अम्लपित्त रोग में वायु के प्रकोप के कारण उदराध्मान होने पर तथा साथ में शिर में चक्कर, शिर में नाना प्रकार की पीड़ा, दाह, अम्लोद्गार प्रभृति लक्षण होने पर यह औषध केवल अपराह्न में एक बार अथवा मध्याह्न में दो बार देनी चाहिये। यह पुष्टिकारक है। अनुपान–मलबन्ध होने पर त्रिफला का शीत कषाय और अतिसार में तण्डुलोदक।

बृहत् वातचिन्तामणि—अम्लपित्त रोग में वायु के प्रकोप के कारण रोगी को उदराध्मान होने पर अथवा वायु की अधिकता होने से शिर में चक्कर, नींद का न आने पर, हाथ-पैर में पीडा, जलन, वमन और पतला मल आदि उपद्रव प्रबल होने पर यह औषध देनी चाहिये। उदराध्मान को छोड़ कर अन्य उपद्रव जो हों वे इस औषध के सेवन से नष्ट होते हैं। यह अतिशय बलकारक और पुष्टिकारक है। इसे अपराह्न में एक बार देना चाहिये। यह औषध वात-पित्त प्रधान रोगी को देनी चाहिये। अनुपान–तण्डुलोदक।

महाशंख वटी—अम्लपित्त रोग में अग्निमान्द्य या अजीर्ण के कारण से आध्मान होने पर तथा साथ में वमन प्रभृति उपद्रव, अतिसार, वक्षःस्थल, हाथ-पैर में दाह हो तब यह औषध जल के साथ प्रातः सेवन करानी चाहिये।

अम्लपित्त में मलबन्ध की चिकित्सा

हरीतकी खण्ड—अम्ल पित्तरोग में मलबन्ध रहने पर तथा इसके साथ में प्रबल शूल, वमन, हाथ-पैर में दाह आदि उपद्रव होने पर यह औषध कोष्ट-शुद्धि के लिये प्रतिदिन प्रातः देनी चाहिये। परन्तु मन्दाग्नि और स्वभाव से मल-बन्ध रहने पर प्रतिदिन सेवन करने से अतिसार होने की सम्भावना रहती है। प्रथमावस्था में २ या ३ दिन के अन्तर से यह औषध सेवन करानी चाहिये। अम्लपित्त में केवल कोष्टवद्धता रहने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनु-पान-उष्ण दुग्ध या उष्ण जल।

अगस्त्य चूर्ण—अम्लपित्त रोग में मलबन्ध एवं साथ साथ में वमन, हाथ-पैर में ज्वाला, प्रबल वेदना और शिर में चक्कर आदि उपद्रव होने पर यह औषध विरेचन के लिये देनी चाहिये। केवल मात्र मलबन्ध रहने पर भी यह दे सकते हैं। अवस्था विशेष में प्रतिदिन या दो-तीन दिन के अन्तर से देनी चाहिये। अनुपान-जल या नारियल का पानी।

अम्लपित्त रोग में शूल चिकित्सा

धात्री लौह—अम्लपित्त रोग में प्रथम वक्षःस्थल के निचले भाग में, पीछे से वक्षःस्थल, ग्रीवा में दर्द होती है और इसके साथ में वक्षःस्थल आदि स्थानों में दाह आदि लक्षण होने पर यह औषध रोगी को सायंकाल में देनी चाहिये। अम्ल-पित्त में रोगी को केवल वेदना रहती हो; तो भी यही औषध दी जा सकती है। अनुपान—परवल का अथवा धनिया और परवल का हिम कषाय; वायु-पित्तप्रधान प्रकृति में नारियल का जल।

सतामृत लौह—अम्लपित्त रोग में उदर में या हृदय में प्रबल वेदना होने पर यह औषध देनी चाहिये। वेदना के साथ वमन, वमन वेग से वक्षःस्थल में ज्वाला तथा अन्य लक्षण होने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—दूध या नारियल का जल।

विद्याधराभ्र—अम्लपित्त रोग में. कुक्षिप्रदेश, हृदय या नाभि एवं मध्य-भाग में तीव्रशूल होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। पित्त-कफ जनित शूल रोग में, परिणाम शूल में यह उपकारी है। अम्लपित्त रोग में अग्निमान्द्य, वमन आदि अनेक उपद्रव बहुत कुछ इससे नष्ट होते हैं। अनुपान—बकरी का दूध

और चीनी, उष्ण प्रकृतिवालों के लिये-नारियल का जल या परवल रस और चीनी।

त्रिफलामण्डूर—अम्लपित्त रोग में रोगी के उदर और कुक्षिप्रदेश में प्रबल शूल होने पर यह औषध देनी चाहिये। वेदना के साथ हृदय या वक्षःस्थल में दाह और वमन आदि उपद्रव इससे नष्ट होते हैं। अनुपान—शीतल जल और गाय का दूध।

शंखादिचूर्ण—अम्लपित्त रोग में वमन वेग, कोष्ठकाठिन्य, उदराध्मान, हृदय और कुक्षिप्रदेश पर वेदना, शिर में चक्कर, अग्निमान्द्य आदि उपद्रव होने पर यह औषध रोगी को सेवन करानी चाहिये। अनुपान—शीतल जल।

अम्लपित्त में शरीर में खाज (कण्डू) और दाह चिकित्सा

गुडूच्यादि लौह—अम्लपित्त रोग में रोगी के हाथ-पैर में दाह एवं साथ में रात को नींद न आती हो या शरीर में खाज आदि अन्य उपद्रव होने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—परवल का रस और मधु अथवा—शेफालिका का रस।

हरिद्राखण्ड—अम्लपित्त रोग में रोगी के हाथ-पैर में दाह; शरीर में कण्डू और पिड़का आदि होने पर रोगी को स्वभावतः मलबद्धता रहने पर यह औषध देनी चाहिये। यह औषध विस्फोटक और दद्रु आदि रोगों में बरती जाती है। अनुपान—उष्ण जल।

तिक्तक घृत—अम्लपित्त रोग में रोगी के हाथ-पैर में दाह एवं शरीर में करनने कण्डू, पिड़का आदि उत्पन्न होने पर यह घृत रोगी को सेवन के लिये देना चाहिये। परन्तु अम्लपित्त रोगी को अम्लोद्गार, उदराध्मान और अतिसार होने पर यह नहीं देना चाहिये। अनुपान—उष्ण दूध।

महातिक्तक घृत—अम्लपित्त रोग में दाह एवं शरीर में कण्डू और पिड़का उत्पन्न होने पर यह घृत उसको देनी चाहिये। किन्तु अतिसार, अम्लोद्गार, उदराध्मान आदि उपद्रव होने पर यह घृत नहीं देना चाहिये। इस घृत से जीर्ण ज्वरादि उपद्रव नष्ट होते हैं।

गुडूची तैल—अम्लपित्त रोग में हाथ-पैर एवं अन्यान्य अङ्गों में प्रबल दाह होने पर यह तैल रोगी के शरीर पर मलना चाहिये। अम्लपित्त रोग में पित्त के प्रकोप के कारण निद्रा न आने पर यह तैल रोगी के शिर पर मलना चाहिये।

अम्लपित्त रोग में ज्वर चिकित्सा

बृहत् ज्वरान्तक लौह—अम्लपित्त रोग में रोगी को ज्वर होने पर एवं पतला मल आने पर यह औषध प्रातःकाल देनी चाहिये। ज्वर के अल्प वेग एवं साथ में अन्य उपद्रव होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। अम्लपित्त रोग में मलबन्ध तथा साथ में ज्वर होने पर भी यह औषध दी जा सकती है। अनुपान—जीराचूर्ण, मलबन्ध होने पर पान का रस और मधु।

सर्वज्वरहर लौह—अम्लपित्त रोग में रोगी को ज्वर मन्द-मन्द रहता हो; साथ में अतिसार या वमन भी रहे; तब यह औषध प्रातः रोगी को देनी चाहिये। जिन रोगियों मे पित्त या वातपित्त की अधिकता दीखती हो; उनके लिये यह औषध अमृत तुल्य है। श्लेष्माधिक व्यक्ति में विवेचनापूर्वक इसका प्रयोग करना चाहिये। मलबन्ध होने पर भी विशेष अवस्था में इसको दे सकते हैं। अधोगत अम्लपित्त रोग की पुरातन अवस्था में यह औषध अतिशय उपकारी है। अनुपान—जीराचूर्ण और मधु; मलबन्ध होने पर पान का रस और मधु।

पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह—अम्लपित्त रोग में रोगी को अल्प वेग या मध्यम वेग से ज्वर रहता हो, एवं साथ में अतिसार प्रबल हो; तब यह सेवन करानी चाहिये। मलबन्ध होने पर भी यह औषध दी जा सकती है। अधोगत अम्लपित्त रोग की पुरातन अवस्था में अतिसार रहने पर भी यह औषध अतिशय उपकारी है। अनुपान—भर्जित जीराचूर्ण और मधु; मलबद्धता होने पर पिप्पली-चूर्ण और मधु।

अम्लपित्त रोग में चित्तचाञ्चल्य और बुद्धिभ्रम चिकित्सा

बृहत् वातचिन्तामणि—अम्लपित्त रोग में रोगी के मन की अस्थिरता, निद्राधिक्य या निद्रा का अभाव; विषण्णता, स्मृतिशक्ति का लोप आदि उपद्रव होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। रोगी में वायु और पित्त का अधिक-प्रकोप तथा अतिसार होने से यह औषध अधिक उपयोगी है। पित्त-कफ प्रधान व्यक्ति को यह औषध नहीं देनी चाहिये। अनुपान—त्रिफला का शीतल कषाय और मधु; अतिसार होने पर तण्डुलोदक और मधु।

चतुर्मुख रस—अम्लपित्त रोग में रोगी का मनचञ्चल, नींद का अभाव,

शिर में चक्कर, शरीर में कम्प; स्मृतिशक्ति का लोप आदि उपद्रव दीखने पर यह औषध अपरान्ह में सेवन करानी चाहिये। अनुपान—त्रिफला का हिमकषाय और मधु; अतिसार होने पर तण्डुलोदक और मधु।

चिन्तामणि रस—अम्लपित्त रोग में मन की अस्थिरता, स्मृतिलेप एवं चित्तचाञ्चल्य प्रभृति लक्षण दीखने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। वाताश्रित पित्त के प्रकोप के कारण नींद का न आना, चित्त में दुर्बलता सदा होने पर यह औषध प्रातः देनी चाहिये। अनुपान—त्रिफला का शीत कषाय और मधु की दो तीन बूंद; अतिसार होने पर-तण्डुलोदक और मधु।

बृहत् गुडूची तैल—अम्लपित्त रोग में नींद न आने पर, निद्रा; (घनी-तन्द्रा) स्मृतिलोप आदि उपद्रव दीखने पर यह तैल मर्दन करना चाहिये।

अर्शरोग चिकित्सा

अर्कक्षीरादि लेप—अर्श रोगी के अर्श के अङ्कुर (मस्से) बढ़े हुए, आगे से तीक्ष्ण और कठिन होने पर यह प्रलेप लगाना चाहिये। इसके लगाने से अङ्कुर गिर पड़ते हैं।

स्नुहिक्षीरादि लेप—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक अर्श के अङ्कुर कठिन, बड़े तथा अर्श का मूल भाग विस्तृत होने पर यह प्रलेप अङ्कुर के मुख पर लगाना चाहिये।

तुम्बिकाद्य लेप—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक अर्श में अङ्कुर बड़ा, विस्तृत, कण्टकाकीर्ण होने पर यह प्रलेप लगना चाहिये। [सबीज तिक्त अलाबु को कांजी में पीसकर उसमें गुड़ मिलाकर लगायें]।

हरिद्रादि लेप—श्लैष्मिक अर्श में अङ्कुर का मूल बड़ा एवं वेदना अधिक रहती हो; अङ्कुर बाहर निकलता हो तो उस पर यह लेप लगानां चाहिये।

पञ्चकोल योग—श्लैष्मिक या वातश्लैष्मिक अर्श रोग में कास, श्वास, अरुचि, शिर में भारीपन और शरीर में वेदना आदि उपद्रव रहते हों, तब यह औषध तक्र के साथ देनी चाहिये।

हरीतकी योग—वातिक, वातपैत्तिक अर्श रोगी को मलबद्धता एवं साथ में

कटि, पीठ, वक्षःस्थल और पार्श्व में वेदना होती हो, तब रोगी को यह औषध प्रतिदिन सेवन करानी चाहिये।*

शूरण योग—श्लैष्मिक या वातश्लैष्मिक अर्श रोग में अग्निमान्द्य, अरुचि, आमाशय सम्बन्धि एवं अन्यान्य उपद्रव होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

तिल योग—रक्तार्श में मलद्वार से अधिक रक्त निकलता हो; रक्तार्श के अन्य लक्षण—हाथ-पैर-आंख आदि में पाण्डुता दीखती हो, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

शतमूली योग—रक्तार्श रोगी में बहुत अधिक रक्त मलद्वार से जाता हो; रक्तस्राव के कारण दाह; प्यास तथा शरीर में पाण्डुता आदि .लक्षण आभासित होते हों; तब यह औषध प्रातः या माध्याह्न में सेवन करानी चाहिये। रक्त अधिक निकलने पर दोबारा औषध देनी चाहिये।

अपामार्ग योग—रक्तार्श रोग के विविध लक्षण दीखने पर तथा मस्से बढ़े होने पर औषध बरतनी चाहिये (अपमार्ग बीज ½ तोला तण्डुलोदक के साथ पीसकर सेवन करना चाहिये)।

कुटज योग—रक्तार्श में मलद्वार से बहुत रक्त निकलता हो तथा पित्तार्श में रक्तमिश्रित होने से मल पतला आता हो, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिए।

देवदाली योग—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक अर्श रोग में अर्श के अङ्कुर बढ़ जायें एवं विविध उपद्रव होते हों; तब इस जल के साथ अर्श के अङ्कुर धोने चाहिए (शौचकार्य करना चाहिये); अर्श रोग के लिये मुख्य औषध है।

चन्दनादि क्वाथ—रक्तार्श रोग में अर्श से रक्तस्राव होता हो; साथ में नाना उपद्रव-दाह, ज्वर, पाण्डुता आदि हों, तब यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

दार्व्यादि क्वाथ—रक्तार्श रोग में अर्श होने से रक्त निकलता हो; पित्त के प्रकोप के कारण दाह, ज्वर आदि उपद्रव रहते हों, तब यह क्वाथ सिद्ध करके, शीतल करके रोगी को देना चाहिये।

---

* हरड़ को पहिले दिन गोमूत्र में भिगोकर रक्खें; अगले दिन इसको पीस कर इसमें ईक्षुगुड़ कुछ मिलाकर सेवन करें। रक्त जाता हो तो; हरड़, कुञ्चित काले तिल; आंवला, किसमिस, मुलैहठी इनका चूर्ण समान मात्रा में मिलाकर चार आने से आधा तोला लें।

करञ्जादि चूर्ण—रक्तार्श रोग में अर्श से रक्तस्राव होने के कारण नाना उपद्रव—वस्तिदेश में वेदना, शरीर में पीताभ, कृशता आदि उपद्रव रहने पर यह चूर्ण रोगी को सेवन कराना चाहिये।

लवणोत्तम चूर्ण—वातिक, वातश्लैष्मिक अर्श रोग में अग्निमान्द्य एवं कटि, पृष्ठ, पार्श्व आदि स्थानों में वेदना होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिए।

विजय चूर्ण—वातिक अर्श में अग्निमान्द्य एवं कटि-पीठ और वक्षःस्थल में वेदना, भोजन की अनिच्छा तथा वात-कफवाले अर्श में अतिसार, ज्वर, कास, श्वास, शिरोवेदना आदि उपद्रव होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। सान्निपातिक अर्श रोग में वायु या वातकफ की अधिकता दीखने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—जल।

समशर्करा चूर्ण—पैत्तिक या पित्तश्लैष्मिक अर्श रोग में अग्निमान्द्य, श्वास; अरुचि; कास आदि उपद्रव होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इस औषध का कास और श्वास रोग में उपयोग होता है। अनुपान—जल।

अग्निमुख लवण—वातिक, वातश्लैष्मिक अर्श रोग में अग्निमान्द्य, उदराध्मान, कटि, पीठ, पार्श्व आदि स्थानों में वेदना; शिर में भारीपन आदि लक्षण होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अर्श रोगी की प्लीहा या यकृत् बढ़े हों अथवा गुल्म प्रभृति रोग रहता हो; अथवा प्लीहा या यकृत् रोग में मलबद्धता होने पर इसका उपयोग करना चाहिये। अनुपान—गरम जल से प्रातःकाल दें।

प्राणदा गुटिका—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक; वातपैत्तिक; पित्तश्लैष्मिक और सान्निपातिक अर्श के लक्षण दीखने पर अर्थात् मलबन्ध, अग्निमान्द्य अथवा पतला मल, अरुचि, ज्वर, कास एवं कटि, पृष्ठ, पार्श्व आदि स्थानों में वेदना, शिर में भारीपन, क्षुधानाश तथा अन्यान्य लक्षण दीखने पर इसका सेवन करना चाहिये। अनुपान—जल।

चन्द्रप्रभा गुटिका—वातिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक या सान्निपातिक अर्श में कटि, पीठ, पार्श्व और वक्षःस्थल में वेदना, प्रमेह दोष, मूत्रकृच्छ्रता, पुरातन ज्वर या पाण्डु आदि होने पर यह औषध उत्तम है। प्रमेह, अश्मरी; मूत्रकृच्छ्र में भी यह औषध दे सकते हैं। सर्वाङ्ग शोथ, निफ्रायटिस, मूत्र में शर्करा या एल्ब्युमिन जाने पर यह औषध उपकारी है। इसके सेवन काल में नियमपूर्वक आहार

विधिपालन करनी चाहिये। इससे अग्निवृद्धि, कोष्ठशुद्धि और वायु का अनुलोमन होता है। औषधसेवन के पीछे शीतल जल पीना चाहिये। अनुपान—घृत और मधु।

अग्निमुख लौह—वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक अथवा सान्निपातिक अर्श में अग्निमान्द्य, शरीर में पाण्डुता, आमसंयुक्त पतला मल, कटि और पृष्ठ आदि स्थानों में दर्द, प्लीहा और यकृत् वृद्धि, शरीर में अवसन्नता आदि लक्षण होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। यह बल और अग्निवर्धक है। अनुपान—घृत या दूध।

अर्शकुठार रस—वातिक, पैत्तिक अर्श में रोगी को कोष्ठबद्धता, उदराध्मान; कटि-पृष्ठ और पार्श्व आदि स्थानों में वेदना, प्लीहा और यकृत् वृद्धि अर्श रोग के साथ होने पर यह औषध जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। अर्श रोग में मलबन्ध तथा अर्श की प्रबलावस्था में यह बहुत उपयोगी है।

कुटजावलेह—पैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक, सान्निपातिक या रक्तार्श में पतला मल, आमसंयुक्त मल अथवा केवल रक्त निकलता हो, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अर्शरोगी को ग्रहणी रोग या अतिसार होने पर भी इसका व्यवहार हो सकता है। यह औषध स्तम्भक (धारक) परन्तु मलबन्ध नहीं करती। रक्तार्श या पित्तार्श जनित पाण्डुता, अरुचि आदि उपद्रव इससे नष्ट होते हैं। यह औषध रक्तार्श में या रोग की पुरातन अवस्था में बरतनी चाहिये। अनुपान—बकरी का दूध या शीतल जल।

कुटजाष्टक—रक्तार्श या पैत्तिक अर्श में रोगी को बहुत रक्तस्राव होता हो अथवा मल के साथ आम अथवा रक्त आता हो; तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। यह रक्तरोधक; रक्तार्श की प्रथम अवस्था में अथवा थोड़ा रक्त आने पर यह औषध देनी चाहिये। परन्तु यदि रक्त बार-बार या अधिक परिमाण में आता हो तब इस औषध से रक्त एक साथ बन्द होकर नाना विकार उत्पन्न करता है। इसलिये इस अवस्था में इसका प्रयोग करना उत्तम नहीं। रक्तार्श की मध्यावस्था में पित्त और कफ की प्रबलता होने पर यह औषध सेवन करने को देनी चाहिये। अनुपान—बकरी का दूध और शीतल जल।

शूरण मोदक—वातिक या वातश्लैष्मिक अर्श में रोगी को मलबन्ध, कटि, पीठ और पार्श्व में वेदना होने पर तथा साथ में कास, श्वास, अग्निमान्द्य आदि उपद्रव रहने से यह औषध देनी चाहिये। अर्श रोग की मध्य और पुरातन अवस्था

में यह औषध बहुत उपकारी है। अनुपान—गरम जल। पुरातन अर्शरोगी के प्लीहा और यकृत बढ़े होने पर **बृहत् शूरण मोदक** देना चाहिये।

कांकायन मोदक—वातिक या वातश्लैष्मिक अर्श की मध्यमावस्था में या पुरातन अवस्था में कटि या पार्श्व स्थान में वेदना एवं शरीर में कृशता आदि लक्षण होने से यह औषध देनी चाहिये। इस औषध से अर्शरोग के नाना उपद्रव नष्ट होते हैं। पैत्तिक एवं पित्तश्लैष्मिक अर्श में पतला मल, दाह, ज्वर एवं अन्य उपद्रव होने से यह औषध देनी चाहिये। इसके बरतने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिये। प्रथम अतिस्वल्प मात्रा में देनी चाहिये। अनुपान—तक्र।

श्रीबाहुशाल गुड़—वातिक, पैत्तिक, वातश्लैष्मिक और सान्निपातिक अर्श की पुरातन अवस्था में रोगी को मलबन्ध वा स्वाभाविक रूप से मल न आता हो; कटि और पार्श्वों में दर्द, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, ज्वर और प्लीहा आदि उपद्रव होने पर यह उत्कृष्ट औषध है। बहुकालीन पुराने अर्शरोग में इसको बरत सकते हैं। अनुपान—मलबन्ध होने पर उष्ण जल; पैत्तिक अर्श या स्वाभाविक मल आने पर बकरी का दूध।

खण्ड कुष्माण्डावलेह—रक्तार्श पुरातन हो; रोगी में वायु और पित्त को अधिकता हो, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। रक्तार्श रोगी के दाह, शरीर में पाण्डुता, कृशता आदि उपद्रव इससे मिटते हैं। पुरातन रक्तार्श रोगी के लिये यह उत्कृष्ट औषध है। अनुपान—जल।

बृहत् कासीसाद्य तैल—अर्श रोग की पुरातन अवस्था में यह तैल विशेष उपकारी है। पूर्वोक्त लेपों से जब अंकुर न मुर्झायें, तब यह तैल बरतना चाहिये।

पिप्पल्याद्य तैल—पुरातन अर्शरोग में वायु के प्रकोप से कोष्ठशुद्धि न होती हो, विशेषकर उदावर्त्त के लक्षण अर्थात् कोष्ठ में वायु भरी प्रतीत होती हो; तब इस तैल को बस्ति से देना चाहिये। इससे वायु का अनुलोमन होता है। इससे कटि, पीठ, मलद्वार की वेदना; मल का अवरोध और मूत्रकृच्छ्र आदि उपद्रव नष्ट होते हैं।

अर्शरोग में आध्मान चिकित्सा

चतुर्मुख रस—अर्शरोग में वायु की प्रबलता के कारण उदराध्मान या उदर में वायु भरी प्रतीत हो, साथ में कटि, पीठ, मलद्वार में वेदना होने से यह औषध

देनी चाहिये। यह वायु की अनुलोमक, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रता नाशक है। इसको अपराह्न में देना चाहिये। अनुपान-त्रिफला का शीत कषाय और मधु।

बडवानल चूर्ण—अर्शरोग में वायु और कफ के प्रकोप के कारण उदराध्मान, कोष्ठाशुद्धि, अग्निमान्द्य, अजीर्ण आदि लक्षण विद्यमान होने पर एवं इसके कारण उदर, कुक्षि या पार्श्व भाग में वेदना अनुभव होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-उष्ण जल।

अगस्त हरीतकी—अर्श रोग में वात-कफ के प्रकोप के कारण उदराध्मान, अजीर्ण, अग्निमान्द्य, कोष्ठाशुद्धि आदि लक्षण उपस्थित होने पर तथा इसके कारण उदर, कुक्षि और पार्श्व में वेदना होने पर प्रतिदिन प्रातःकाल यह हरीतकी सेवन करनी चाहिये। अर्श रोग में पतला एवं आम संयुक्त मल आये तथा साथ में उदराध्मान हो, तो इसको वरत सकते हैं। अनुपान-उष्ण जल।

अर्शरोग में मलबन्ध की चिकित्सा

नाराच चूर्ण—वातिक और वातश्लैष्मिक अर्शरोग में रोगी को मलबन्ध एवं उदर में वायु भरी हो तो रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अर्शरोग में मल कठिन हो तो यह औषध देनी आवश्यक है। भोजन से पूर्व इसको देना चाहिये। अनुपान-मधु।

हरीतकी खण्ड—वातिक, वात-पैत्तिक अर्श रोग में कोष्ठबद्धता तथा मल की कठिनता दीखती हो, तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इसके सेवन से कोष्ठाशुद्धि एवं उदर और कुक्षि भाग में दर्द दूर होती है; इसको प्रातः काल देना चाहिये; अनुपान-उष्ण जल।

अगस्त्य चूर्ण—वातिक या वातपैत्तिक अर्श रोग में कोष्ठ बद्धता और मल में काठिन्य दीखने पर रोगीको यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से कोष्ठाशुद्धि एवं उदर तथा कुक्षि देश की वेदना नष्ट होती है। अर्श रोग में पतला मल आता हो, तो यह औषध नहीं देना चाहिये; अनुपान-जल।

सुकुमार मोदक—अर्श रोगी में वात-कफ के प्रकोप के कारण कोष्ठबद्धता होने पर इसके कारण गांठदार कठिन मल आता हो, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से मल पतला और वायु का अनुलोमन होता है। प्रातः काल में एक वटी देनी चाहिये। अनुपान-उष्ण जल।

अर्श रोग में वेदना-चिकित्सा

अलम्बुषाद्य चूर्ण—अर्श रोग में वायु या वात-कफ के प्रकोप के कारण कटि, पृष्ठ, पार्श्व आदि स्थानों में वेदना होने पर यह औषध रोगी को सेवन करने के लिये देनी चाहिये। यह अग्निवर्धक और वातनाशक है परन्तु विरेचक नहीं, इस कारण अर्श रोग में स्वाभाविक मल आने पर यह औषध दी जा सकती है।

वैश्वानर चूर्ण—वातिक या वात-श्लैष्मिक अर्श रोगी की कटि, पीठ वा पार्श्व आदि स्थानों में वेदना एवं इसके साथ में कोष्ठबद्धता तथा अग्निमान्द्य आदि लक्षण होने पर यह औषध रोगी को प्रातः सेवन करानी चाहिये। यह मृदु विरेचक और अग्निवर्धक है। अनुपान-उष्ण जल। जिस व्यक्ति को मलबन्ध न हो उसे तक्र के अनुपान से देना चाहिये।

योगराज गुग्गुलु—अर्श रोग में वायु या वात-कफ के प्रकोप के कारण कटि, पीठ, पार्श्व आदि स्थानों में अत्यधिक वेदना एवं इसके साथ मलबन्ध होने पर यह औषध प्रातःकाल रोगी को देनी चाहिये। इसके सेवन से प्रकुपित वायु का अनुलोम होता है, मल पतला होता है परन्तु जल की भांति पतला मल नहीं आता। अनुपान-उष्णजल।

महालक्ष्मीविलास—कफज अर्श रोग में शिर में भारीपन या वेदना होने के साथ में ज्वर, कास आदि भी होने पर यह औषध प्रातःकाल में देनी चाहिये। वात-कफप्रधान अर्श रोग में शिर में भारीपन, शिर में दर्द, शिर में चक्कर या कान में गूंज आदि लक्षण होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। किन्तु केवल वायु के प्राधान्य के कारण शिर में चक्कर या अन्य लक्षण दीखते हों; तो यह औषध नही देनी चाहिये। अनुपान—पान का रस और मधु।

श्लेष्मशैलेन्द्र रस श्लैष्मिक अर्श रोग में शिर में दर्द या भार की अनुभूति होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। ज्वर, कास, श्वास और शरीर में भारीपन आदि उपद्रव इसके सेवन से नष्ट होते हैं। श्लेष्मप्रधान अर्श रोग में रोगी को ज्वर होने पर यह दे सकते हैं; अनुपान—निर्गुण्डी का पत्र रस और मधु।

स्वल्प लक्ष्मीविलास—अर्शरोग में रोगी को शिर दर्द, शिर में भारीपन

साथ में शरीर में दर्द, ज्वर, कास आदि लक्षण होने पर यह औषध प्रातःकाल में रोगी को देनी चाहिये; अनुपान—पान का रस और मधु।

अर्शरोग में ज्वर-चिकित्सा

जयावटी—अर्शरोग में ज्वर प्रबल हो तो, ज्वर की अवस्था में रोगी को यह औषध देनी चाहिये। ज्वर के साथ कास, दाह आदि उपद्रव होने पर भी इसको दे सकते हैं। अनुपान—पान का रस और मधु; पतला मल आने पर जीरा चूर्ण और मधु।

मृत्युञ्जयरस—अर्श रोग में ज्वर की नूतनावस्था में ज्वर का वेग प्रबल होने पर एवं साथ में कास, सर्दी; शिर में भारीपन आदि होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—पान का रस और मधु; पतला मल आने पर जीरे का चूर्ण और मधु।

बृहत् ज्वरान्तकलौह—अर्श रोगी में ज्वर का वेग मन्द रहने पर स्नान या आहार से ज्वर न बढ़ता हो; विशेषतः इस अवस्था में अतिसार या आम से युक्त मल आता हो; तो यह औषध रोगी को सेवन करानी चाहिये। अनुपान—जीरा चूर्ण और मधु।

चूडामणिरस—अर्शरोगी का ज्वर पुराना होने पर अल्प या मध्यमवेग में रहता हो, विशेषतः इस अवस्था में स्नान और आहार सहन होता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। कास, श्वास, सर्वांगशूल शिरोराग आदि विद्यमान होने पर इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। अनुपान—पान का रस और मधु।

अर्श रोग में प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र-चिकित्सा

मेहमुद्गरवटिका—अर्शरोग में मूत्र के साथ शुक्र निकलता हो अथवा मूत्र तक्र जैसा या लाल हो अथवा मूत्र के तलछट में चूने की भांति की वस्तु बैठती हो, या मूत्र में पीडा आदि लक्षण दीखते हों, तब यह औषध बकरी के दूध के साथ प्रातःकाल देनी चाहिये। अर्श रोग में पाण्डु, अरुचि, कामला आदि होने पर इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। वात-पित्तप्रबल व्यक्ति में इस औषध से बहुत अच्छा लाभ होता है।

चन्द्रप्रभा गुटिका—अर्शरोगी के मूत्र का रंग तक्र के समान या हल्दी के समान हो; अथवा मूत्र के तल छट में चूने की भांति की वस्तु जमती हो;

मूत्र में दर्द होता हो; तब यह औषध देनी चाहिये। अर्शरोगी को पाण्डुता, कास दाह और अग्निमान्द्य आदि दीखने पर इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। वात-पित्त या पित्तप्रधान व्यक्ति के प्रमेह रोग में यह बहुत लाभदायक है; अनुपान—बकरी का दूध या जल।

वंगाष्टक—अर्श रोगी को प्रस्राव के साथ शुक्रक्षरण, मूत्र में दाह, अन्य उपद्रव उपस्थित होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। वातप्रधान रोगी को देनी चाहिये। वात-कफप्रधान रोगी को पुरातन ज्वर के साथ प्रमेह हो तो औषध दे सकते हैं। श्लेष्माधिक या वाताश्रित-श्लेष्माधिक व्यक्ति के लिये यह औषध बहुत उपयोगी है। अनुपान—हरिद्रा चूर्ण, आमलकी रस और मधु।

महावंगेश्वररस—अर्शरोगी को मूत्र में दाह, शुक्रनिःसरण, मूत्र के नीचे चूने के समान पदार्थ बैठे, मूत्र में पीली झांई दिखाई दे; विशेषतः प्रमेह के कारण रोगी का शरीर बहुत कृश हो जाये, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—दूध।

बृहत् सोमनाथरस—अर्शरोग में बस्तिगत वायु के प्रकोप से मूत्र त्याग में अत्यधिक वेदना, ज्वाला तथा मूत्र का रंग गाढा पीला हो; (यथा प्रोस्टेट ग्रन्थि की वृद्धि में) तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। कष्टसाध्य वायु रोग में या पित्त प्रधान अर्शरोग में मूत्र की पीड़ा इस औषध से नष्ट होती है। यह औषध अश्मरी और मूत्राघात रोग में उपकारी है। अनुपान—आंवले का शीतकषाय और मधु; अथवा त्रिफला का शीतकषाय और मधु।

अर्शरोग में अतिसार-चिकित्सा

भास्कर लवण—वातपैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक या सान्निपातिक अर्शरोग में रोगी को पतला मल तथा आध्मान और शरीर में ग्लानि होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। यह वातानुलोमक और अग्निवर्धक; अनुपान—जल।

बृहत् लवंगादिचूर्ण—वातिक, वातपैत्तिक; श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक या सान्निपातिक अर्शरोग में अतिसार या आम से मिला पतला मल एवं साथ में आध्मान, कास, सर्दी आदि विद्यमान होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—जल।

पीयूषवल्लीरस—पैत्तिक, पित्त-श्लैष्मिक वा श्लैष्मिक अर्शरोग में पतला

या आम से मिला मल आता हो, अथवा आमरुद्ध होकर अग्निमान्द्य, शोथ आदि दीखते हों, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अतिसार पुराना होने पर यह औषध दी जा सकती है, यह औषध आमपाचक है, अनुपान-बेल का गूदा और ईक्षु गुड या बेल का गुड में बना मुरब्बा।

महाशंखवटी—अर्श रोगी को आम से मिला पतला मल और साथ में ऊपर में भारीपन रहता हो, या आध्मान हो, अग्निमान्द्य, कास, अन्य लक्षण होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। यह औषध वातानुलोमक, अग्नि-वर्धक, आमशूलनाशक और आमपाचक है, अनुपान-जल।

कुटजाष्टक—अर्श रोगी को रक्तस्राव होता हो अथवा आम या रक्त मिश्रित अपक्वमल निकलता हो, तब यह औषध बरतनी चाहिये। अतिसार के साथ ज्वर, कास, हाथ-पैर आदि में सूजन होने पर इसकी व्यवस्था करनी चाहिये, पुरातन अर्शरोग में यह उपकारी है, अनुपान-जल या बकरी का दूध।

बृहत् कुटजावलेह—अर्शरोग में अंकुरों से बहुत अधिक रक्त स्रवित होता हो अथवा आम या रक्त से मिला मल आता हो, साथ में उदर में वेदना, ज्वर, कास, शरीर में ग्लानि आदि लक्षण रहते हों, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अर्श रोग की नई या पुरानी दोनों अवस्थाओं में यह औषध उपयोगी है। अनुपान-बकरी का दूध या जल।

कृमिरोग चिकित्सा

यमानी योग—उदर में कृमि संचित होने से अग्निमान्द्य और अजीर्ण दीखने पर रोगी को यह औषध प्रातःकाल में उष्ण जल से देनी चाहिये।

विडंगयोग—कोष्ठ में कृमि होने पर, उदर में वेदना, मुख में पानी भरना, वमन आदि लक्षण दीखने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये, अनुपान-अनार के कोमल पत्तों का रस और मिश्री।

दाडिमक्वाथ—आमाशय या पक्वाशय में क्षुद्रकृमि बढ़ जायें, तब रोगी को यह औषध प्रातःकाल में देनी चाहिये; परीक्षित औषध है, [अनार वृक्ष मूल की त्वचा २ तोला, पानी ३२ तोला, शेष ८ तोला, प्रक्षेप तिल तैल ½ तोला]।

मुस्तकादियोग—उदर में छोटे छोटे कृमि बढ़ जायें एवं—इससे अतिसार, शूल, ज्वर आदि होते हों; तो यह क्वाथ रोगी को प्रातः देना चाहिये।

विडंगादि चूर्ण—आमाशय और पक्काशयस्थित कृमि बढ़ जायें एवं इसके कारण नाना प्रकार के उपद्रव अर्थात् उदरवेदना, सर्दी, कोष्ठबद्धता आदि उपद्रव दीखते हों, तो यह औषध प्रातःकाल में रोगी को देनी चाहिये। अनुपान-जल।

पलाशादि चूर्ण—आमाशय में कृमि बढ़ जायें एवं इसके कारण ज्वर, अरुचि, उदराध्मान, अग्निमान्द्य आदि लक्षण दीखते हों, तब रोगी को यह औषध ईक्षुगुड के साथ देनी चाहिये; इस औषध के कुछ दिन सेवन करने पर कृमि मृतावस्था में बाहर आते हैं।

कृमिमुद्गररस—आमाशय, पक्काशय में उत्पन्न सब प्रकार के कृमियों में तथा इसके कारण मलबन्ध, मलद्वार में कण्डू, अग्निमान्द्य, भूख का नष्ट होना आदि लक्षण होने पर रोगी को यह औषध सेवन करानी चाहिये। आमाशयजन्य कृमि रोग में यह उत्कृष्ट औषध है; अनुपान-परवल का रस, जल।

कृमिकालानल रस—आमाशय और पक्काशय के सब कृमियों में एवं इनके कारण अतिसार, अग्निमान्द्य होने पर यह औषध धनियां और जीरे के क्वाथ के साथ देनी चाहिये। यह कृमिरोग की पुरातन अवस्था में अतिसार होने पर बहुत लाभदायक है। अर्श, शोथ और उदर रोगी को अतिसार होने पर या ग्रहणी रोग होने पर इसका प्रयोग बहुत लाभदायक है।

बिडङ्गलौह—पक्काशय में उत्पन्न कृमि बढ़ जायें एवं तज्जन्य शूल, अरुचि, वमन प्रबल हो, तब रोगी को यह औषध सेवन करानी चाहिये। कृमिजन्य शूल रोग में यह उत्कृष्ट औषध है। विशेष कर यह औषध ग्रहणीरोगनाशक और अग्निवर्धक है; अनुपान-परवल का रस और मधु अथवा शटी (कचूर) का रस और मधु।

कृमिभद्रवटिका—छोटे बालकों के आमाशय और पक्काशय में कृमि होने पर और इसके कारण अतिसार, वमन, अग्निमान्द्य प्रबल होने पर यह औषध सेवन करानी चाहिये। कोष्ठबद्धता होने पर अनुपान भेद से प्रयोग करना चाहिये; अनुपान-परवल का रस और मधु; अथवा स्वर्णचम्पा के पत्तों का रस और मधु।

पारिभद्रावलेह वा हरिद्रा खण्ड—रक्तगत कृमिरोग में शरीर में

कृशता, पिडका, जलन या कुष्ठ के लक्षण दीखते हों: तब यह औषध जिसको मलबन्ध की शिकायत न हो, उसे देनी चाहिये। यह दाद, विद्रधि, नाडीव्रण आदि रक्तदोष के रोगों की महौषध है; अनुपान-जल।

पञ्चतिक्त घृत—रक्तगत कृमिरोग में कण्डु, पिडिका एवं कुष्टरोग के लक्षण दीखने पर यह घृत बद्धकोष्ठ या स्वाभाविक रूप से मल प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को गरम दूध के साथ देना चाहिये।

विडङ्ग घृत—कृमिरोग की पुरानी अवस्था में रोगी को वमन प्रवल हो; साथ में कोष्टबद्धता, पाण्डुता अथवा शिरोरोग विद्यमान हो, तो यह घृत अपराह्न में प्रयोग करना चाहिये; अनुपान-उष्ण दुग्ध।

बिडङ्ग तैल—शिर में जूं बढ़ जाने पर यह तैल प्रतिदिन स्नान से पूर्व शिर पर मर्दन करके एक घण्टे पीछे स्नान करना चाहिये।

धस्तूर तैल—शिर पर जूं बढ़ जायें, तब यह तैल स्नान से दो घण्टे पूर्व शिर पर मलना चाहिये।

कृमिरोग में वमन-चिकित्सा

स्वर्णमत्स्याण्डी—कृमि के कारण बार-बार वमन अथवा अतिसार होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। कृमिजन्य अतिसार के प्रबल होने पर, तथा अन्य सब उपद्रवों में यह गुणकारी है। अनुपान-खीरे की मींगी और गाय का कच्चा दूध।

पिप्पल्याद्य लौह—कृमि या पित्त के प्रकोप के कारण बार-बार वमन एवं वमन वेग के साथ हिक्का और श्वास भी हो, तब यह औषध खीरे के बीज और स्तनदुग्ध (गाय का कच्चा दूध) के साथ देनी चाहिये।

कृमिरोग में अतिसार-चिकित्सा

ग्रहणीगजेन्द्र वटिका—पक्वाशयगत कृमि के प्रकोप के कारण रोगी को पतला मल आता हो, तो अतिसार की नूतन या पुरातन अवस्था में यह औषध देनी चाहिये; अनुपान-जीरे का चूर्ण और मधु।

महागन्धक—पक्वाशयगत कृमि के कारण रोगी को पतला मल आता हो, साथ में हल्का ज्वर भी रहे, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। बालक,

वृद्ध एवं प्रसूता के अतिसार में यह औषध बहुत लाभकारी है। अनुपान-माथे का रस और मधु।

अमृतार्णव रस—पक्वाशय स्थित कृमियों के बढ़ने पर रोगी को नाना रंग का पतला मल आता हो; साथ में दाह, प्यास आदि रहने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान-जीरा चूर्ण और मधु या मोथे का रस और मधु।

कृमिरोग में शूल-चिकित्सा

विद्याधराभ्र—कृमि या पित्त के प्रकोप के कारण रोगी को नाभिशूल में प्रबल वेदना हो, भोजन में अनिच्छा, वमन, अरुचि की अधिकता होने पर यह औषध परवल का रस और ईक्षुचीनी के साथ प्रतिदिन अपराह्ण में रोगी को देनी चाहिये; यह औषध अग्नि और बलवर्धक है।

शूलहरणयोग—उदर में किसी भी कारण से शूल हो, विशेषतः कृमिजन्य शूल, हृद्रोगजन्य शूल में शीघ्र लाभदायक यह औषध है।

हरीतकी खण्ड—कृमि या पित्त के प्रकोप से उदर में असह्य वेदना रहने पर, रोगी को मलबन्ध होने से; यह औषध प्रातः उष्ण दुग्ध के साथ देनी चाहिये।

कृमिरोग में अग्निमान्द्य चिकित्सा

स्वल्प अग्निमुख चूर्ण—पक्वाशयगत कृमि बढ़ जाने पर एवं इनके कारण अग्निमान्द्य, क्षुधाह्रास तथा समय समय पर मलबन्ध आदि रहने पर प्रतिदिन प्रातः यह औषध रोगी को गरम जल के साथ देनी चाहिये।

अग्नितुण्डी रस—पक्वाशय में कृमि बढ़ जाने से रोगी को अग्निमान्द्य या समय २ पर पतला मल, उदराध्मान और अरुचि आदि होने पर यह औषध जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

कृमिरोग में सर्दी और कासचिकित्सा

शृङ्ग्यादि चूर्ण—आमाशय में कृमि बढ़ जाने पर मलबन्ध, सर्दी और कास होने पर यह औषध प्रातः गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। बच्चों को सर्दी और कास होने पर यह औषध विशेष लाभप्रद है।

श्लैष्मशैलेन्द्र रस—आमाशय स्थित कृमि रोग में सर्दी एवं साथ में कास,

ज्वर आदि उपद्रव होने पर प्रतिदिन यह औषध निर्गुण्डी के पत्ते के रस और मधु के साथ देनी चाहिये।

कृमिरोग में हृद्रोग चिकित्सा

विडंगादियोग—कृमिजन्य हृदय रोग में हृदय में वेदना होने पर एवं साथ में हृद्रोग के अन्य लक्षण दीखने पर यह औषध गोमूत्र के साथ देनी चाहिये; इसके सेवन से कृमि बाहर आ जाते हैं, अनुपान-गरम जल।

शूलहरण योग—कृमिजन्य हृद्रोग में हृदय में प्रबल वेदना होने पर एवं कृमिजन्य अन्यान्य उपद्रव दीखने पर यह औषध चम्पा वृक्ष के पत्तों के रस के साथ देली चाहिये।

हृद्रोगान्तक—कृमिजन्य हृद्रोग में हृदय में वेदना एवं वमन, मुख में जल का भरना आदि अन्य लक्षण होने पर तथा अग्निमान्द्य होने पर यह औषध देनी चाहिये; अनुपान-मधु।

कृमि रोग में शिरःशूल-चिकित्सा

त्रिकटुकाद्यनस्य—कृमिजन्य शिरःशूल प्रबल होने पर यह नस्य प्रतिदिन प्रातः देनी चाहिये।

लक्ष्मीविलास—कृमिजन्य शिरोरोग में वेदना प्रबल होने पर नासा से जल स्राव होता हो, तब यह औषध पान के रस के साथ सेवन करानी चाहिये।

महालक्ष्मी विलास—कृमिजन्य शिरःशूल प्रबल हो, शिर में असह्य वेदना, नासिका से जल की भांति स्राव होता हो, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-निर्गुण्डी पत्ता रस और फरहद का रस और मधु।

श्लेष्मशैलेन्द्ररस—कृमिजन्य शिरोरोग के बढ़ने पर अर्थात् शिर के अन्दर असह्य वेदना होने पर नासिका से जल की भांति स्राव होने पर; यह औषध प्रतिदिन प्रातः और रात्रि में निर्गुण्डी के पत्ते और फरहद का रस और मधु के साथ देनी चाहिये।

अपामार्ग तैल—कृमिजन्य शिरोरोग में शिर में अति प्रबल वेदना रोगी को होती हो; रोगी बेचैन रहे; चीत्कार करता हो; तब इस तैल का नस्य देना चाहिये। इसका नस्य प्रातः काल में ही देना उत्तम है।

दाह चिकित्सा

आरनाललेप—रक्तजन्य दाह, पित्तज दाह या तृष्णानिरोधजनित दाह रोग में यह प्रलेप बार बार रोगी के शरीर पर लेप करना चाहिये। पाण्डु, कामला, मेह आदि में दाह होने पर तथा रोगी में ज्वर की प्रबलता न होने पर इस लेप का प्रयोग करना चाहिये (खस का मूल और श्वेत चन्दन को कांजी में पीस कर लगायें)।

ह्रीबेरादियोग—रक्तज दाह, पित्तज दाह एवं तृष्णानिरोधजनित दाह प्रबल होने पर रोगी को इस जल से स्नान कराना चाहिये।

चन्दनादि क्वाथ—पित्तज दाह, वातपित्तज दाह, पित्तज्वर, पाण्डु तथा अन्य रोगों में दाह प्रबल होने पर साथ में कोष्ठशुद्धि या अतिसार रहने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। पित्त की प्रबलावस्था में यह औषध अतिशय उपकारी है।

पर्पटादिक्वाथ—पित्तज दाह एवं पैत्तिक ज्वर, पाण्डु, कामला या अन्य रोगों में दाह तथा साथ में अतिसार या अधिक मल आता हो, तब यह क्वाथ देना चाहिये।

खर्जूराद्यचूर्ण—प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी आदि रोगों में पित्त के प्रकोप के कारण दाह दीखता हो; अथवा मूत्रकृच्छ्रादि रोग में बस्ति प्रदेश में वेदना होती हो; तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-चावल का धोवन।

सुधाकररस—प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, क्षय, कास आदि रोगों में पित्त के प्रकोप से दाह होने पर यह औषध देनी चाहिये। रसादि धातुवों के क्षय के कारण दाह होने पर यह औषध विशेष लाभप्रद है।

कांजिक तैल—पुरातन जीर्ण ज्वर से दाह प्रबल होने पर अथवा पित्त-जनित दाह रोग में यह तैल रोगी के सब अंगों में मालिश करना चाहिये।

कुशाद्यतैल—पित्तज दाह, रक्तज दाह एवं प्रमेह, पाण्डु, कामला, आदि रोगों की पुरातन अवस्था में पित्त की अधिकता के कारण रोगी को दाह प्रबल होने पर यह तैल शरीर पर मलना चाहिये।

तृषा-चिकित्सा

द्राक्षादि कषाय—तृषा रोग में पित्त की प्रबलता दीखने पर अर्थात् दाह, मूर्च्छा, उष्णता और वमन आदि लक्षण विद्यमान रहने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। किंवा दाह, मूर्च्छा, वमन प्रभृति रोगों में तृषा प्रतीत होने पर यह औषध देनी चाहिये।

षडङ्गपानीय—पित्तकी प्रबल अवस्था में तृषा लगने पर तथा साथ में दाह, गरमी या वमन आदि उपद्रव दीखने पर यह जल रोगी को पिपासा काल में देना चाहिये। पित्ताश्रित ज्वर में एवं अन्यान्य रोगों में तृषा लगने पर यह क्वाथ देना चाहिये।

लाजोदक—पित्ताधिक्य के कारण प्यास लगने पर एवं साथ में दाह, गरमी या वमन आदि उपद्रव दीखने से यह जल रोगी को पीने के लिये देना चाहिये। पित्ताश्रित ज्वर, कास, रक्तपित्त, मेह आदि रोगों में प्यास लगने पर इसके पीने से तृषा शान्त होती है। इस जल से कोष्ठ का शोधन होता है।

काश्मर्यादिपानीय—पित्ताधिक्य के कारण प्यास दीखने पर और साथ में दाह, गरमी, वमन, मलबन्ध आदि लक्षण होने पर यह पानीय रोगी को देना चाहिये। किंवा पित्ताश्रित ज्वर, कास, मेह आदि रोगों में प्यास प्रबल होने पर यह पानीय देना चाहिये।

तृणपञ्चमूलपानीय—पित्ताधिक्य के कारण रोगी को प्यास अधिक रहने पर तथा साथ में प्रमेह, दाह, रक्तपित्त, कास, मूर्च्छा, अश्मरी आदि विद्यमान रहने पर यह पानीय रोगी को देना चाहिये। पित्ताश्रित कास, हरिद्रामेह, रक्तमेह या रक्तपित्त रोग में तृषा लगने पर यह जल रोगी को देना चाहिये। इसके सेवन से पित्ताश्रित ये रोग बहुत कुछ शान्त होते हैं।

बिल्वशुण्ठ्यादि क्वाथ—अजीर्ण के कारण पतला मल आये और साथ में तृषा भी रहे तब रोगी को यह क्वाथ बना कर देना चाहिये।

वटशुंगादि क्वाथ—अजीर्ण दोष से या गुरुपाक भोजन के कारण रोगी को तृषा लगती हो तब यह औषध चावलों के धोवन के साथ रोगी को देनी चाहिये।

रसादिचूर्ण—क्षयज तृषा उपस्थित होने पर अर्थात् आमवात या प्रमेहाश्रित वात अथवा अत्यधिक शारीरिक परिश्रम के कारण बार-बार प्यास लगती हो,

तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये। प्रमेह, अश्मरी, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्रता, बहु-मूत्र आदि रोगों में प्यास प्रबल होने पर यह औषध अच्छा लाभ करती है; अनु-पान-वासाजल।

कुमुदेश्वररस—क्षयज तृष्णा रोग में या प्रमेह, मूत्रकृच्छ्रता, मूत्राघात, बहुमूत्र और शारीरिक दुर्बलतावश पिपासा प्रबल होने पर रोगी को लालचन्दन, अनन्त मूल, मोथा, छोटी इलायची, नागकेसर इनके क्वाथ के साथ देना चाहिये।

वमन-चिकित्सा

चन्दनादियोग—पित्त बिकार से या पित्त की अधिकता के कारण तिक्तरस युक्त वमन एवं साथ में गले में दाह, मूर्च्छा, या प्यास आदि लक्षण विद्यमान हों; तब यह चूर्ण चावलों के धोवन और मधु के साथ रोगी को देना चाहिये; किन्तु अम्लपित्तरोग में पित्त की अधिकता के कारण और कृमिजनित वमन रोग में तिक्तरस युक्त वमन में इस क्वाथ से बहुत लाभ नहीं होता।

विडंगादि योग—श्लेष्माधिक्यवशतः वमन में मुख में मधुर गन्ध; शरीर में भारीपन, मधुररस युक्त वमन होने पर यह औषध मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

मुस्तकादि योग—श्लैष्मिक रोग में रोगी के मुख से मधुर स्वाद और मधुर रसात्मक शुक्ल वर्ण का वमन होता हो तथा साथ में कास, सर्दी आदि उपद्रव विद्यमान हों; तब मधु के साथ इसको देना चाहिये।

सौवर्चलादियोग—अजीर्ण के कारण वमन होता हो, एवं रोगी को वमन में अम्ल-तिक्त आदि स्वाद अनुभव होता हो; तो यह औषध मधु के साथ मिलाकर जल के साथ सेवन करानी चाहिये; इसके सेवन मात्र से वमन शान्त हो जाता है [सौवर्चल लवण के अभाव में-सैन्धव, अजवायन, चीनी, मरिच इनका चूर्ण सम भाग मिला कर दें)।

मधुकाद्ययोग—अम्लपित्त या त्रिदोषाश्रित रोग में पित्त के प्रकोप के कारण रक्तवमन होता हो, तो यह औषध रोगी को दूध के साथ सेवन करानी चाहिये।

पर्पटक क्वाथ—पित्ताधिक्य के कारण जो वमन हो, उसमें रोगी को तिक्त

रस युक्त वमन एवं साथ में गले में दाह, प्यास आदि उपद्रव रहने पर यह क्वाथ मधु सहित रोगी को देना चाहिये। पैत्तिक ज्वर में इस क्वाथ से बहुत लाभ होता है। कृमिजन्य वमन में यह देना व्यर्थ है; अम्लपित्तजन्य वमन में भी इससे बहुत लाभ नहीं होता।

गुडूच्यादि क्वाथ—अम्लपित्त रोग में अम्ल या तिक्त रस युक्त वमन एवं अम्लपित्त के अन्यान्य लक्षण दीखने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

क्षौद्रावलेह—सान्निपातिक रूप में दोषों के प्रकोप से किसी भी रोग में अम्ल या लवण युक्त वमन होने पर एवं साथ में रोगी को अरुचि, प्यास, दाह या अन्य कोई उपद्रव होने पर यह अवलेह सेवन कराना चाहिये। किन्तु अम्लपित्त रोग में अम्ल रस युक्त वमन होने पर इस औषध से बहुत अधिक लाभ नहीं होता है।

एलादि चूर्ण—श्लैष्मिक, पैत्तिक या सान्निपातिक रोग के वमन में तथा जिस वमन में भिन्न भिन्न वर्ण हों; यह चूर्ण रोगी को ईक्षु चीनी और मधु के साथ सेवन कराना चाहिये; वमन में यह औषध बहुत लाभदायक है।

रसयोग—श्लैष्मिक रोग में वमन होने पर एवं तज्जन्य रोगी के मुख में मधुर स्वाद एवं वमन मधुर रस युक्त तथा श्वेत पदार्थ वमन में आने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान-खीरे की मींगी और गाय का कच्चा दूध।

पिप्पल्याद्य लौह—वातिक, पैत्तिक या सान्निपातिक रोग में वमन होने पर एवं जिस वमन में पित्त या वायु की अधिकता दीखती हो, उसमें यह औषध रोगी को देनी चाहिये; अनुपान-खीरे की मींगी और कच्चा दूध।

वमन में कास-चिकित्सा

चन्द्रामृत रस—वमन का निरन्तर वेग शान्त होने पर रोगी को कास प्रारम्भ हो जाये एवं जिसमें कास का वेग बार-बार आरम्भ होता हो, उसमें यह औषध पान के रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये। निरन्तर कास के वेग के कारण वमन होने पर एवं कास के साथ साथ श्वास दीखने पर इस औषध के देने से अच्छा लाभ होता है।

तालीशाद्य चूर्ण—वमन के निरन्तर वेग के कारण अथवा वमन रुकने के पीछे रोगी को कास प्रारम्भ होने पर यह औषध देनी चाहिये।

वमन में श्वास-कासचिकित्सा

कण्टकार्याद्यवलेह—निरन्तर वमन का वेग होने से रोगी को श्वास (हांपनी) कास होने से रोगी को यह अवलेह उष्ण जल के साथ देना चाहिये।

श्वासचिन्तामणि—वमन के वेग के कारण या वमन के रुकने पर रोगी को श्वास-कास का आक्रमण हो जाये; तब रोगी को यह औषध सोंठ और भार्ंगी के क्वाथ के साथ देनी चाहिये।

महाश्वासारिलोह—वमन के निरन्तर वेग के कारण या वमन रुकने पर रोगी को कास के साथ श्वास भी हो जाये; तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये; अनुपान—मधु।

वमन में हिक्का-चिकित्सा

पिप्पल्याद्य लोह—वमन के बार बार होने से रोगी को हिक्का उपस्थित हो जाये, जिससे रोगी बहुत बेचैन हो जाये, तब इस औषध की खीरे की मींगी और कच्चे दूध के साथ देना चाहिये।

शुण्ठीक्षीर—वमन के कारण हिक्का उपस्थित हो जाने पर एवं इसके कारण रोगी अति निर्बल हो जाये; तब यह दूध रोगी को देना चाहिये। हिक्का को रोकने के लिये उत्तम औषध है (सोंठ २ तोला; बकरी का दूध ३६ तोला, पानी ६४ तोला; पाक कर शेष दूध मात्र बचाकर देना चाहिये)।

अरुचिरोग-चिकित्सा

आमलाद्ययोग—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक या सान्निपातिक रोग में अरुचि होने पर यह औषध तैल और मधु के साथ मिलाकर कवल करने के लिये देनी चाहिये।

कुष्ठाद्ययोग—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक या सान्निपातिक रोगजन्य अरुचि में रोगी को मधु और तैल के साथ मिलाकर यह औषध कवल के लिये देनी चाहिये।

अम्लिकायोग—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक या सान्निपातिक रोग में अरुचि दीखने पर यह औषध कुछ क्षण मुख में रखकर रोगी को कवल करना चाहिये

अरुचि में यह विशेष उपकारी है (पुरानी इमली; ईक्षु गुड इनको एक साथ जल में भिगोकर, इसमें दालचीनी, इलायची, मरिचचूर्ण, समभाग मिलाकर बरतें)।

दाडिम्वादि चूर्ण—श्लैष्मिक रोग में अरुचि दीखने पर यह औषध रोगी को उष्ण जल के साथ देनी चाहिये। ग्रहणी, अतिसार, अर्श, कास आदि रोगों में अरुचि होने पर इस औषध से वह दूर होती है, मात्रा आधा तोला।

सुधानिधिरस—श्लैष्मिक या कफप्रधान सान्निपातिक रोग में अरुचि होने पर विशेषतः विसूचिका, अग्निमान्द्य, आमवात, हृच्छूल आदि रोगों में अरुचि होने पर यह औषध रोगी को ईक्षुगुड के साथ देनी चाहिये।

कलहंस—श्लैष्मिक या श्लेष्मोल्वण रोग की पुरातन अवस्था में अरुचि उत्पन्न होने पर यह औषध रोगी को गरम जल के साथ सेवन करानी चाहिये; इसके द्वारा स्वरभंग नष्ट होता है।

आर्द्रकमातुलुंगावलेह—वातिक, पैत्तिक या सान्निपातिक रोग में अरुचि होने पर विशेषतः कामला, पाण्डु, शोथ, श्वास, प्लीहा, शूल आदि रोगों की पुरातन अवस्था में रोगी को अरुचि होने पर यह औषध देनी चाहिये। यह मलबन्ध को दूर करती है; इसलिये अतिसार होने पर यह नहीं देनी चाहिये।

यमानी षाडव—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक या सान्निपातिक रोग में अरुचि होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। हृद्रोग, पार्श्वशूल, विबन्ध, आनाह, कास, श्वास, अर्श आदि रोगों में अरुचि होने पर यह सेवन करानी चाहिये। यह औषध मलरोधक, अग्निवर्धक है, इसलिये ग्रहणी और अतिसार में अरुचि होने पर बहुत लाभदायक है। यह अग्निवर्धक और वायु का अनुलोमन करती है। इसलिये वातरोगी को दी जासकती है।

स्वरभंग-चिकित्सा

पिप्पल्यादियोग—कफजस्वरभंग में रोगी का गला कफ के कारण रुक जाये, उच्चारण-वाणी अस्पष्ट हो, तो यह औषध रोगी को गोमूत्र के साथ सेवन करानी चाहिये (पिप्पली, पिप्पलीमूल, मरिच और सोंठ इनका चूर्ण समभाग लें)।

सैन्धवादियोग—वातिक स्वरभंग रोग में रोगी का स्वर कर्कश, शरीर में

कृशता तथा कृष्णवर्णता दीखने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये [सैन्धव लवण और वेर के पत्ते समभाग लेकर घृत में भूने]।

अजमोदादियोग—पैत्तिक स्वरभंग में रोगी का मलमूत्र पीताभ और गले में दाह होता हो, तो रोगी को यह औषध घृत और मधु के साथ देनी चाहिये।

चव्यादि चूर्ण—श्लैष्मिक स्वरभंग में रोगी का गला कफ से रुक जाये, वाक् अस्पष्ट हो, सर्दी, अरुचि आदि अन्य उपद्रव रहने पर यह औषध उष्ण जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

श्वासकुठार—श्लैष्मिक स्वरभंग या मेदज स्वरभंग में गला कफ से रुक जाये, वाणी अस्पष्ट हो, तब यह औषध रोगी को आर्द्रक रस एवं सैन्धव लवण के साथ देनी चाहिये। शैत्य क्रिया के कारण उत्पन्न स्वरभंग में यह औषध प्रशस्त है।

भैरवरस—श्लैष्मिक स्वरभंग रोग में या मेदज स्वरभंग में वाणी अस्पष्ट रहने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। कास-श्वास में स्वरभंग होने पर इस औषध से कास, श्वास और इनका उपद्रव स्वरभंग शान्त होता है। श्लैष्मिक कास एवं श्लेष्मबहुल प्रतमक श्वास में इसका प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—आर्द्रक रस और सैन्धवलवण अथवा उष्ण जल।

श्रीडामरानन्दाभ्र—वातिक स्वरभङ्ग की पुरातन अवस्था में या धातुक्षय जनित स्वरभंग में वाणी कर्कश, टूटा हुआ स्वर, एवं शरीर में कृष्णता रहे, कास, श्वास आदि रोगों में स्वरभंग उत्पन्न हो जाये, तब यह औषध रोगी को सेवन करानी चाहिये; यह वातिक कास और तमक श्वासनाशक है। अनुपान—आर्द्रक रस और सैन्धव लवण।

तरुणानन्दरस—वातिक स्वरभंग में रोगी का स्वर विकृत हो एवं वातिक कास की पुरातन अवस्था में या अन्य दूसरे रोगों में रोगी को वातिक स्वरभंग उत्पन्न हो जाये तब यह औषध देनी चाहिये। प्रतमक श्वास में स्वरभङ्ग होने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-वनतुलसी के पत्तों का रस और सैन्धव लवण अथवा आर्द्रकरस और सैन्धव लवण।

बृहत् शृङ्गाराभ्र—श्लैष्मिक कास या धातुजन्य स्वरभङ्ग पुरातन हो जाने पर एवं वक्षःस्थल में प्रायः कफ का अवरोध होने से स्वर विकृत हो जाये, तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। धातुक्षयजनित स्वर भंग के साथ कास,

वातव्याधि-चिकित्सा

दशमूल क्वाथ—आक्षेप, अन्तरायाम, बहिरायाम, सर्वांगवात, हनुस्तम्भ, मूकत्व, मिन्मिन, मन्यास्तम्भ और शिरोग्रह आदि वातरोग की प्रथमावस्था में रोगी की इन्द्रियों में विकलता दीखने पर और कोष्ठबद्धता होने पर इस क्वाथ में एरण्ड तैल का प्रक्षेप देकर रोगी को देना चाहिये। मल-शुद्धि होने पर एरण्ड तैल की मात्रा कम कर देनी चाहिये।

रास्नासप्तक—एकांगवात, सर्वांगवात, बाहुशोष, अवाबहुक, विश्वाची, गृध्रसी, खंजता, पंगुता, कलायखञ्जता, एवं सिरा और स्नायु रोग की प्रथमावस्था में रोगी के हाथ-पैर या अन्य किसी अंग में वेदना, भार-बोध एवं साथ-साथ ज्वर का आभास भी प्रतीत हो, तो इस क्वाथ को प्रति दिन प्रातः रोगी को देना चाहिये, मलबन्ध हो तो इसमें एरण्ड तैल मिला देना चाहिये।

स्वल्प रास्नादि क्वाथ—अर्दित, शिरःशूल, मन्यास्तम्भ आदि वातरोगों की प्रथमावस्था में यह क्वाथ रोगी को प्रति दिन प्रातः देना चाहिये।

महारास्नादि क्वाथ—एकांगवात, सर्वांगवात, बाहुशोष, विश्वाची, अवबाहुक, गृध्रसी, खंजता, पंगुता, कलायखंजता, कुब्जता, गात्रकम्प, अर्दित, हनुस्तम्भ एवं क्रोष्टुकशीर्ष आदि वातरोगों की प्रथम और मध्यमावस्था में इन्द्रियों में विकलता, शरीर में भारीपन प्रतीत होने पर इस क्वाथ के साथ सोंठ का चूर्ण या अलम्बुषाद्य चूर्ण मिश्रित करके रोगी को देना चाहिये।

माषादि क्वाथ—पक्षाघात या सर्वांगगत वातरोग की प्रथमावस्था में यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। वायु और श्लेष्मा की प्रबलावस्था से जब तक शरीर में वेदना रहे, यही क्वाथ देना चाहिये।

माषबलादि क्वाथ—पक्वाशयगत, सर्वांगगत, मन्यास्तम्भ, अर्दित आदि वातरोग की प्रथमावस्था में इन्द्रियों में विकलता एवं शरीर में जड़ता रहने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

तगरादि क्वाथ—प्रलाप रोग में रोगी निरर्थक बकवाद करता हो; तब यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

? तकाद्य क्वाथ—आमाशयगत वातरोग में हृदय, पार्श्वदेश आदि में

वेदना होने पर एवं इसके कारण वमन, उद्गार आदि लक्षण होने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

वचादि क्वाथ—आमाशयगत वायु के प्रकुपित होने से, हृदय, पार्श्वदेश या उदर आदि में वेदना और अम्लोद्गार हो, तब यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

रसोन कल्क—पक्षाघात और सर्वांगगत वायु रोग में श्लेष्मा की प्रबलता होने पर यह औषध रोगी को प्रति दिन सेवन करानी चाहिये; इससे आश्चर्यजनक लाभ होता है, अनुपान—दूध या तिल तैल।

इन्द्रवारुणिका योग—सन्धिस्थित वायु के प्रकोप से रोगी की सन्धि में वेदना एवं सूजन होने पर यह औषध गरम जल के साथ देनी चाहिये; (इन्द्रायण-मूल; पिप्पली और पुरातन गुड़-समभाग लेकर पीसले। मात्रा ½ से ¼ तोला।)

शाल्वण स्वेद—एकांगवात, सर्वांगवात, बाहुशोष, अवबाहुक, धनुस्तम्भ आदि वातरोगों में आक्षेप, स्पर्शशक्ति का अभाव, हाथ-पैर आदि इन्द्रियों में शक्तिह्रास होने पर यह स्वेद रोगी के शरीर पर बार-बार देना चाहिये। रोग के प्रारम्भ से लेकर अवस्था में कुछ भी परिवर्तन जब तक न हो तब तक यह स्वेद देना ही चाहिये; पक्षाघात रोग में यह स्वेद बहुत लाभदायक है।

शंकर स्वेद—कुब्जता, मन्यास्तम्भ, विश्वाची, गृध्रसी, क्रोष्टुकशीर्ष, त्रिक-शूल, सन्धिगत आदि वातरोगों में स्थानभेद से प्रबल वेदना एवं वात-कफ की प्रबलता होने पर यह स्वेद देना चाहिये। परन्तु वेदना कम हो और स्पर्शहीनता दीखती हो तब यह स्वेद नहीं देना चाहिये। वाताधिक या रूक्ष व्यक्ति को यह स्वेद नहीं देना चाहिये। हाथ-पैर-अङ्गुली-गुल्फ-सन्धि और कटि आदि स्थानों में वेदना की अधिकता होने पर एवं आम रस की अति प्रबलता रहने पर यह स्वेद बहुत लाभदायक है। जब तक वेदना कम न हो, स्वेद देना चाहिये। आमरसयुक्त वात (आमवात) में यह औषध उत्तम है; तथापि देश-काल अनुसार वात में इसका प्रयोग करना चाहिये।

शुण्ठ्यादि चूर्ण—वायु के कारण बार-बार जृम्भा होने पर यह चूर्ण रोगी को जल के साथ देना चाहिये।

पथ्यादि चूर्ण—बस्तिगत वातरोग में रोगी की बस्ति में वेदना, बार-बार मूत्रकृच्छ्रता-वेदना, सहसा मूत्र का रुकना होने पर यह औषध रोगी को देनी

चाहिये। मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरी रोग में इसके सेवन से लाभ होता है; अनुपान—मधु।

नाराच चूर्ण—आध्मान रोग और पक्वाशयगत वायुरोग में उदर फूला हो, मलबन्ध रहे, तो यह चूर्ण रोगी को देना चाहिये। आध्मान में विरेचन के लिये यह औषध देनी चाहिये परन्तु विष्टब्धताजन्य अजीर्ण में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये; भोजन से पूर्व मधु के साथ देना चाहिये।

महानाराच चूर्ण—आध्मान नामक वातरोग में रोगी को मलबन्ध हो, तो विरेचन के लिये यह औषध शीतल जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। यह अतिशय विरेचक है, इसलिये विष्टब्धताजन्य आध्मान रोग में नहीं देनी चाहिये।

हिंग्वष्टक चूर्ण—आध्मान रोग में हृदय, पार्श्व, पक्वाशय में अति वेदना, उदर में वायु का आध्मान और प्रत्याध्मान रोग में अग्नि बहुत निर्बल, आमाशय में दर्द, आध्मान दीखता हो, आमाशयगत वायु में यह चूर्ण रोगी को गरम पानी से देना चाहिये।

स्वल्प अग्निमुख चूर्ण—आध्मान रोग में उदर वायु से भर जाये, हृदय, पार्श्व आदि स्थानों में वेदना एवं प्रत्याध्मान रोग में वायु और श्लेष्मा का प्रकोप होने से आमाशय में नाना की प्रकार पीड़ा होती हो या आमाशयगत वायु रोग में यह औषध उष्ण जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

वचाद्य चूर्ण—वाताष्ठीला रोग में उदर में वेदना, मल और मूत्ररोध एवं प्रत्यष्ठीला रोग के सब लक्षण मिलते हों; तब यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

वैश्वानर चूर्ण—तूनी रोग में पक्वाशय से लेकर मूत्राशय पर्यन्त वेदना, मलद्वार, शिश्न या योनिमूल में वेदना एवं प्रत्यष्ठीला रोग में मलद्वार या जननेन्द्रिय से ऊपर की ओर पक्वाशय या मूत्राशय पर्यन्त वेदना होती हो; एवं पक्वाशयगत वातरोग में, गुह्यगत वात में, त्रिकशूल में यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये; यह औषध मृदु विरेचक और वातानुलोमक है।

भास्करलवण—आमाशयगत वायु के जितने लक्षण हैं—वे सब हों-यथा-उदर, नाभि, हृदय आदि स्थानों में वेदना होती हो, तब यह औषध रोगी को गरम पानी से देनी चाहिये।

पिप्पल्यादि चूर्ण—तूनी रोग में पक्वाशय से मूत्राशय पर्यन्त तीव्र वेदना एवं मलद्वार और लिङ्गमूल में वेदना अथवा प्रतितूनी रोग में मलद्वार या जननेन्द्रिय से वेदना ऊपर की ओर पक्वाशय या मूत्राशय पर्यन्त जाये, तब यह औषध गुनगुनाते पानी से रोगी को देनी चाहिये; यह अग्निदीपक और आमपाचक है।

सैन्धवादि चूर्ण—वातिक रसाज्ञान रोग में जिह्वा में किसी पदार्थ का स्वाद प्रतीत न होने पर यह चूर्ण जिह्वा पर घिसना चाहिये।

किरातादि चूर्ण—पैत्तिक रसाज्ञान की प्रबलवस्था में जिह्वा के पदार्थ का स्वाद अनुभव न हो, तब यह चूर्ण जिह्वा पर बार-बार घिसना चाहिये।

अलम्बुषाद्य चूर्ण—क्रोष्टुकशीर्ष रोग की पुरातन अवस्था में जानुसन्धि सूज जाने पर एवं उससे असह्य वेदना होने पर यह चूर्ण रोगी को गरम पानी से देना चाहिये। वातकण्टक रोग में भी इसे बरता जाता है।

आभाद्य चूर्ण—जानुस्थित गांठ के सूजने पर एवं वेदना होने पर क्रोष्टुकशीर्ष रोग की प्रथमावस्था में यह चूर्ण रोगी को गरम जल से देना चाहिये। गृध्रसी, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, वातकण्टक रोग की प्रथमावस्था में बहुत लाभदायक है।

वातारि गुग्गुलु—खञ्जता, पङ्गुता, गृध्रसी, विश्वाची, अवबहुक, कलायखञ्ज, पादहर्ष रोगों की प्रथम या मध्यमावस्था में यह औषध रोगी को देनी चाहिये। पक्षाघात, सर्वांगवात, धनुस्तम्भ आदि वात रोगों की मध्य या तृतीयावस्था में इसका प्रयोग किया जा सकता है। यह औषध मृदु विरेचक है, इसीलिये वातिक, पैत्तिक प्रकृति वालों में इसको दे सकते हैं। आमवात में भी इसको दे सकते हैं, अनुपान—गरम जल।

योगराज गुग्गुलु—अवबाहुक, वातकण्टक, क्रोष्टुकशीर्ष, सर्वांगवात, विश्वाची, गृध्रसी, खल्ली, त्रिकशूल, अर्दित, खञ्जता, पङ्गुता, मन्यास्तम्भ, आक्षेप, अन्तरायाम, बहिरायाम, धनुस्तम्भ, कुब्जता, अपतन्त्रक, सन्धिगत वातरोगों में यह औषध अमृत के तुल्य लाभकारी है। जिन सब रोगों में प्रथम, मध्यम या अवस्थाभेद से तृतीयावस्था-रोगी को मलबन्ध रहता हो; उसमें रोगी को यह अवस्थाभेद से प्रातः या सायं एक बार देनी चाहिये। सन्धिगत, मज्जागत, कोष्ठगत वायु में यह औषध दी जा सकती है। हाथ-पैर-कटि-पार्श्व आदि की वेदना इससे शीघ्र नष्ट होती

है। यह औषध वाताश्रित पुरातन ज्वर में गुणकारी, वातानुलोमक, बलकर, अग्निवर्धक और मृदु विरेचक; है। अनुपान—उष्ण जल।

सिंहनाद गुग्गुलु—कुब्जता, एकाङ्गवात, खञ्जता, पङ्गुता, क्रोष्टुकशीर्ष, सन्धिगतवात और मांसगत वात आदि में मलबन्ध होने पर यह औषध रोग की प्रथम या मध्यमावस्था में गरम पानी से देनी चाहिये।

बृहत् सिंहनाद गुग्गुलु—कुब्जता, एकाङ्गवात, सर्वांगवात, खञ्जता, पङ्गुता, क्रोष्टुकशीर्ष, सन्धिवात और कटिस्थित वायु आदि रोगों में मलबन्ध रहने पर रोग की प्रथमावस्था में यह औषध गरम पानी से रोगी को देनी चाहिये। रोगी बलवान हो और कोष्ठ क्रूर हो तब औषध देनी चाहिये, क्योंकि यह तीव्र विरेचक है। आमवात, ऊरुस्तम्भ, कोष्ठबद्धता आदि में बहुत गुणकारी हैं। अन्य गुग्गुलों से लाभ न होने पर इससे विरेचन होकर वायु का अनुलोमन होता है।

अमृतादि गुग्गुलु—कुपित वायु रक्त में पहुँच जाये, शरीर में विवर्णता, अत्यन्त वेदना, उत्ताप, ज्वाला, स्थान-स्थान पर व्रण उत्पत्ति हो जाये, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अम्लपित्त, वातरक्त, कुष्ठ, प्रमेह आदि रोगों में इसका प्रयोग करना चाहिये। रक्तगत वायु की मध्यम या पुरातन अवस्था में अर्थात् वायु में रूक्षता आ जाने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। भिन्न-भिन्न कारणों से वायु का स्तम्भन होने पर यह नहीं देनी चाहिये; अनुपान—उष्ण जल।

त्रयोदशाङ्ग गुग्गुलु—अवबाहुक, गृध्रसी, खञ्जता, पङ्गुता, त्रिकशूल, सन्धिगतवात, अस्थिगत वात, मज्जागत वात, स्नायुगत वात, कटिशूल आदि रोगों में वात-कफ की प्रबलावस्था में रोगी को यह सेवन करानी चाहिये। वातरोग की प्रथम या मध्यावस्था में विशेषतः जिनको मलबन्ध रहता हो; उनके लिये यह औषध लाभदायक है। वायु-पित्तप्रधान-कृश और शुष्क पक्षाघात रोगी के मध्य और पुरातन अवस्था में यह विशेष लाभप्रद है। यह मलबन्धनाशक, बलकारक, और वातशामक है, अनुपान—उष्ण जल।

पथ्यादि गुग्गुल—क्रोष्टुकशीर्ष, गृध्रसी आदि वातरोगों की मध्यावस्था में और खञ्ज रोग की नूतनावस्था में यह औषध अत्यन्त लाभप्रद है। इससे मल का शोधन होने से विशेष लाभ होता है; यह औषध बलकारक है; वायु की नूतनावस्था में आम दोष रहने पर सर्वत्र एक जैसा लाभ नहीं होता। मध्यावस्था में अतिशय लाभप्रद है; अनुपान—उष्ण जल।

शिवा गुग्गुलु—क्रोष्टुकशीर्ष रोग में जानुसन्धि में सूजन और वेदना होने पर एवं कटिशूल, गृध्रसी आदि रोगी की प्रथम और मध्यमावस्था में यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से मल-प्रवृत्ति होने पर विशेष लाभ होता है। अन्य औषधियों से मल का शोधन कराके यह औषध देने पर अच्छा लाभ होता है। आमवात रोग में बहुत लाभप्रद है; अनुपान—उष्ण जल।

रसोनाष्टक—अर्दित, अपतंत्रक, अपतनाक, सर्वांगवात, गृध्रसी, अवबाहुक, विश्वाची, आदि वातरोगों की प्रथमावस्था में वात-कफ की प्रधानता होने पर एवं कटिशूल, पृष्ठशूल रोग में यह औषध अति लाभकारी है। प्रतिदिन एक मास तक सेवन करने पर इससे बहुत लाभ होता है। यह औषध उष्णवीर्य होने से सब व्यक्तियों में एक सा लाभ नहीं करती। हेमन्त और शीत ऋतु में इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है; वर्षा और वसन्त काल में सेवन से मध्यमरूप में लाभ होता है; ग्रीष्म और शरद् ऋतु में या रक्तविकृति या उपदंशजन्य वायु रोग में इसका व्यवहार नहीं करना चाहिये। गनोरिया में यह औषध नहीं देनी चाहिए। अनुपान—एरण्डमूल का क्वाथ या उष्ण जल।

रसोन पिण्ड—अर्दित, अपतन्त्रक, अपतानक, एकाङ्गवात, सर्वांगवात, गृध्रसी, अवबाहुक, ऊरुस्तम्भ विश्वाची, मन्यास्तम्भ, पादहर्ष, बाहुशोष, वातकण्टक, कुब्जता, क्रोष्टुकशीर्ष, सिरागत वात, सन्धिगत वात, पृष्ठगत वात, कटिशूल आदि रोगों की प्रथम या मध्यमावस्था में वायु या श्लेष्मा प्रबल हो जाये अथवा हाथ-पैर आदि अङ्ग सूख जाये, तब रोगी को यह औषध प्रातः उष्ण जल के साथ देनी चाहिये। यह औषध उष्णवीर्य है; इसलिये श्लेष्मा के कारण वायु की जड़ता अनुभव होने पर यह अतिशय उपकारी है। वायु रोग में वायु की रूक्षता होने पर इससे उतना लाभ नहीं होता। आमवात रोग में सब ऋतुओं में बरत सकते हैं; शीत ऋतु में इससे जितना लाभ होता है, उतना ग्रीष्म ऋतु में नहीं होता। लहसुन आमरस पाचक, है इसलिये आमवात में सब ऋतुओं में दे सकते हैं। गनोरिया या सिफलिस में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

वातगजांकुश—एकाङ्गवात, अर्थात् पक्षाघात, सर्वाङ्गवात, विश्वाची, गृध्रसी, क्रोष्टुकशीर्ष, अवबाहुक, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, स्नायुशूल आदि वातरोगों की प्रथमावस्था में शरीर में जड़ता या शरीर के किसी भाग में वेदना होने पर रोगी

को यह औषध देनी चाहिये। श्लेष्मा द्वारा वायु का अवरोध अथवा वातरोग में ज्वर, शरीर में दर्द आदि उपद्रव दीखने पर इस औषध से विशेष लाभ होता है। वात रोग की मध्यमा या पुरातन अवस्था में इससे बहुत लाभ नहीं होता। अनुपान—एरण्डमूल का रस और सैन्धवलवण अथवा आर्द्रक रस और मधु।

बृहद्वातगजांकुश—एकाङ्गवात, सर्वांगवात, गृध्रसी, विश्वाची, क्रोष्टुकशीर्ष, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, अवबाहुक, खञ्जता, पङ्गुता, स्नायुशूल आदि वातरोगों की मध्यम या पुरातन अवस्था में वात-श्लेष्मा का प्रकोप दीखने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये; अनुपान—एरण्डमूल का रस और सैन्धव लवण।

वातारि रस—आक्षेप, अपतंत्रक, पक्षाघात आदि वातरोगों की द्वितीयावस्था एवं सर्वांगवात, अवबाहुक, विश्वाची, कुब्जता आदि वातरोगों की प्रथम या मध्यमावस्था में रोगी के हाथ-पैर आदि अंगों में जड़ता, स्पर्शहीनता, वेदना आदि होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। कटिशूल, पृष्ठशूल आदि रोगों में अथवा जिन सब व्यक्तियों में वायु के प्रकोप के कारण हाथ-पैर में शुष्कता आ जाये एवं रोगी उठ-बैठ न सकता हो; उस अवस्था में यह विशेष लाभकारी है। इस औषध को देते समय रोगी की पीठ पर एरण्ड तैल मलकर स्वेद देना चाहिये। रोगी को अतिसार होने पर स्निग्ध एवं उष्ण द्रव्य भोजन देना चाहिये। अनुपान—सोंठ का चूर्ण और एरण्डमूल का क्वाथ।

आमवातारि वटिका—एकांगवात, सर्वांगवात, अवबाहुक, गृध्रसी, विश्वाची, क्रोष्टुकशीर्ष, पादहर्ष, वातकण्टक, बाहुशोष, मन्यास्तम्भ, खंजता, पंगुता, कुब्जता, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, सन्धिवात आदि रोगों की प्रथम या मध्यमावस्था में यह औषध रोगी को गरम जल के साथ देनी चाहिये। इसके सेवन करने से कोष्ठशुद्धि होती है। वायु के अल्प आक्रमण से मलबन्ध हो जाने पर इससे विशेष लाभ होता है। यकृत्-प्लीहा के बढ़ जाने से मलबन्ध हो तथा इससे पाण्डु या कामला हो जाये, तब इस औषधि से मल-प्रवृत्ति होने के कारण ये रोग शान्त होते हैं। गुल्म और शूलादि रोग में यह औषध बहुत लाभदायक है।

रामबाण रस—वायु अपक्व रस के साथ मिल जाये, सारे शरीर में दर्द, ज्वर प्रतीति, शरीर में भारीपन होने पर इस औषध का उपयोग लाभदायक है। आमरसगतवायु के लक्षणों में यह औषध बहुत लाभदायक है; अनुपान—आर्द्रक और बिल्वपत्र रस।

महालक्ष्मीविलास—शिरोग्रह, मूकत्व, मिन्मिनत्व, अर्दित, कर्णगतवात्, हनुस्तम्भ आदि वातरोगों की प्रथमावस्था में शिर में भारीपन, वाणी में अस्पष्टता, शरीर में भारीपन आदि उपद्रव होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। श्लेष्माश्रित वायु रोग में यह बहुत लाभदायक है। यदि वायु अकेला ही प्रबल हो अर्थात् रोग की पुरातन अवस्था में इससे अधिक लाभ नहीं होता। अनुपान-हल्दी के पत्ते का रस और आर्द्रक का रस तथा मधु। वायु की प्रबलता होने पर इस औषध में स्वर्ण की मात्रा द्विगुण कर देनी चाहिये।

लक्ष्मीविलास—शिरोग्रह, मूकत्व, मिन्मिनत्व, अर्दित, अपतन्त्रक, अपतानक, कर्णगतवात और हनुस्तम्भ आदि वातरोगों की मध्यमावस्था में शिर में भारीपन, वाणी में अस्पष्टता, शरीर में स्तब्धता, ग्रीवा में संकोच आदि लक्षण दीखते हों; तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये। ऊर्ध्वगत वायु और श्लेष्मा की उत्कृष्ट औषध है। कफाश्रित वायुरोग में यह बहुत ही लाभप्रद है; अनुपान-पान का रस और मधु; या हल्दी का पत्ररस और मधु।

महालक्ष्मीविलास (नारदोक्त)—अर्दित, अपतंत्रक, दण्डापतानक, आक्षेपक, मूकत्व, मिन्मिनत्व आदि वातरोगों की मध्यम या पुरातन अवस्था में रोगी में वायु की रूक्षता अथवा श्लेष्माश्रित वायु के सम्पूर्ण लक्षण हों, तब यह औषध देनी चाहिये। शुद्धवात या श्लेष्माश्रित वायु दोनों में इसका प्रयोग किया जा सकता है। अपस्मार-मूर्च्छा आदि रोगों में इसके प्रयोग से लाभ होता है। अर्दित, अपतन्त्रक, अपतानक आदि रोगों में प्रमेह, शुक्र क्षरण आदि शिकायत रहने पर यह औषध दी जा सकती है; अनुपान—पान का रस और मधु।

तालकेश्वर रस—स्पर्शहीनता वाले वातरोग में रोगी की स्पर्शशक्ति हीन होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इसको सेवन करते समय छाया में रहना उत्तम है; अनुपान—जल।

चतुर्मुख रस—आक्षेप, अन्तरायाम, बहिरायाम, अपतंत्रक, अपतानक, दण्डकापतानक, घनुस्तम्भ, पक्षाघात, बाहुशोष, अवबाहुक, तूनी, प्रतितूनी, ऊर्ध्ववात, आध्मान, प्रत्याध्मान, पक्वाशयगतवात, बस्तिगत वात और गुह्यगतवात आदि रोगों की मध्यम या पुरातन अवस्था में यह औषध रोगी को त्रिफला के शीत कषाय और मधु के साथ अपराह्ण में देनी चाहिये। वायु की रूक्षावस्था में यह

औषध देनी चाहिये, श्लेष्माश्रित वायु में नहीं देनी चाहिये। इसके सेवन से वायु का अनुलोमन होता है और मल का शोधन होता है। ऊर्ध्ववात, आध्मान, प्रत्याध्मान, वात, वस्तिगतवात और गुह्यगतवात को नूतनावस्था में प्रातः और मध्याह्न में यह औषध देनी चाहिये।

चिन्तामणि रस—आक्षेप, अन्तरायाम, बहिरायाम, अपतन्त्रक, धनुस्तम्भ, आध्मान, प्रत्याध्मान, पक्काशयगत वायु, बस्तिगत वायु, तूनी, प्रतितूनी, ऊर्ध्ववात, कर्णगत वायु आदि वायु रोगकी मध्य या पुरातन अवस्था में यह औषध रोगी को त्रिफला के शीत कषाय और मधु के साथ अपराह्न में देनी चाहिये। इसको श्लेष्माश्रित वायुरोग में प्रयोग कर सकते हैं; परन्तु वायु में रूक्षता रहने से इसके प्रयोग से अधिक लाभ होता है। आध्मान, प्रत्याध्मान, पक्काशयगत वायु, बस्तिगतवात, तूनी, प्रतितूनी आदि वातरोगों की नूतनावस्था में प्रातः और मध्याह्न में देनी चाहिये।

योगेन्द्ररस—पक्षाघात, सर्वांगवात, धनुस्तम्भ, वस्तिगत आदि वातरोगों की पुरातन अवस्था में वायु और पित्त प्रबल होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। पक्षाघातादि वायु के रोगों में उपयोगी है, प्रमेह आदि रोग इससे नष्ट होते हैं। यह औषध रसादि-धातुवर्धक है, इसलिये बलवर्धक और पुष्टिकारक है। उन्माद, मूर्च्छा, अपस्मार में इसका प्रयोग किया जा सकता है। अनुपान-त्रिफला का शीत कषाय और चीनी।

चिन्तामणिचतुर्मुख—पक्षाघात, धनुस्तम्भ, आक्षेप, अपतानक, दण्डापतानक, बहिरायाम, अन्तरायाम, आध्मान आदि वातरोगों में वायु एवं पित्त की अधिकता होने पर अपराह्न में यह औषध सेवन करानी चाहिये। वायु की शुद्धावस्था में इसको नहीं देना चाहिये। अनुपान-त्रिफला का शीत कषाय।

बृहत्-वातचिन्तामणि—पक्षाघात, दण्डक, दण्डापतानक, अपतानक, अपतन्त्रक, अर्दित आदि वातरोगों की पुरातन अवस्था में वायु अत्यन्त रूक्ष एवं पित्त प्रबल होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। पित्ताश्रित वायुरोग में यह औषध अतिउपकारी है। अनुपान-त्रिफला का शीत कषाय और मधु।

रसराजरस—पक्षाघात, अर्दित, अपतन्त्रक, अपतानक, धनुस्तम्भ, हनुस्तम्भ, बाधिर्य, भ्रम आदि वातरोगों में रोगी का शरीर अतिनिर्बल हो, तब

यह औषध गव्यघृत और चीनी के साथ देनी चाहिये। अतिसार आदि रोगों में शरीर की दुर्बलता होने पर वातव्याधि उत्पन्न हुई हो तो यह औषध बहुत लाभप्रद है।

अश्वगन्धा घृत—पक्षाघात, बाहुशोष, अवबाहुक, खंजता, पंगुता, मांसगत वायु आदि वातरोगों की तृतीयावस्था में रोगी का शरीर अतिकृश एवं वायु और पित्त की प्रवलता होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। यह औषध बल, पुष्टि और वीर्यवर्धक। अनुपान—उष्ण दूध।

दशमूलाद्यघृत—अर्दित, आक्षेप, अपतानक, मूकत्व, मिन्मिनित्व, बाहु-शोष आदि वातरोगों की पुरातन अवस्था में स्नान और आहार ठीक प्रकार से सहन होता हो; पित्त की प्रबलता हो, तब यह औषध गरम दूध के साथ अपराह्न में देनी चाहिये।

छागलाद्यघृत—अपतन्त्रक, अपतानक, कर्णगतवात, खंजता, कलायखंजता, गृध्रसी, कुब्जता, मूकत्व, मिन्मिनत्व, कर्णशूल, पक्षाघात और अवबाहुक आदि वायुरोगों की पुरातन अवस्था में स्नान और आहार ठीक रहने पर रोगी को यह घृत देना चाहिये। वात-कफप्रधान व्यक्ति में वायु के कारण श्लेष्मा रूक्ष हो जाये या वातपित्त-प्रधान रोगी के लिये यह औषध बहुत लाभकारी है। जिनकी स्मृति शक्ति कम हो, शरीर अतिनिर्बल, उनके लिये क्षय कास, यक्ष्मा, उन्माद आदि वातरोगों में यह घृत बहुत लाभदायक है। परन्तु अग्निमान्द्य या अजीर्णता रहने पर यह बिल्कुल नहीं बरतना चाहिये। अनुपान—उष्ण दुग्ध।

नकुलाद्यघृत—अर्दित, पक्षाघात, मूकत्व, मिन्मिनत्व, बाधिर्य आदि वात-रोगों की पुरातन अवस्था में एवं अन्य ऊर्ध्वजत्रुगत वातरोगों में यह घृत रोगी को सेवन के लिये देना चाहिये। हस्तकम्प, शिरःशूल आदि रोगों में यह बहुत लाभदायक है। अपस्मार रोग में इसके व्यवहार से विशेष लाभ होता है।

हंसादिघृत—एकांगवात या पक्षाघात, सर्वांगवात, अवबाहुक, बाहुशोष, मन्यास्तम्भ, कुब्जता, सन्धिवात, हस्तपादादिगत वात और मिन्मिनवात आदि रोगों में यह घृत रोगी को मालिश के लिये देना चाहिये। इन सब वातरोगों के लिये उत्कृष्ट औषध है। हाथ-पैर आदि अंगों में संकोच होने पर यह घृत इस स्थान पर मलना चाहिये।

चतुःस्नेह—आक्षेप, पक्षाघात, सर्वांगवात, अस्थिगतवात, मज्जागतवात, कम्पवात आदि वातरोगों की पुरातन अवस्था में शरीर में शिथिलता दीखने पर अन्य स्नेह मलने से पूर्व यह स्नेह मलना चाहिये। इसके प्रयोग से अधिक लाभ होता है।

रसोनाद्यतैल—ग्रन्थिवात, रसवात (अर्थात् हाथ-पैर आदि अवयव में रसधातु रुक जाये, इसके रुकने के कारण से वेदना हो), किसी स्थान का भग्न होने से वेदना हो; वेदना दीर्घकाल तक रहे, तब यह तैल उपकारी है। इस तैल का पान और मालिश दोनों रूप से प्रयोग करना चाहिये। रसदोष से कोई स्थान सूज जाये तो इससे लाभ होता है।

मूलकाद्य तैल—उत्कट ग्रन्थिवात, सन्धिगत वात, रसवात आदि रोगों की पुरातन अवस्था में यह तैल रोगी को मलना चाहिये और पीने के लिये देना चाहिये।

कुब्जप्रसारणी तैल—अन्तरायाम, बहिरायाम, कुब्जता, अपतन्त्रक, सर्वांगवात, पंगुता, गृध्रसी, अर्दित आदि वातरोगों की पुरातन अवस्था में यह तैल दो या तीन घण्टे मालिश करके वह स्थान गरम जल से धो देना चाहिये। वातव्याधि रोग की पुरातन अवस्था में जब वायु में रूक्षता आ जाये, कफ कम हो जाये, उस समय यह तैल मलना चाहिये। साधारणतः सब प्रकार के वातरोगों में यह तैल लाभदायक है।

बृहत् सैन्धवादि तैल—बहिरायाम, अन्तरायाम, कटिशूल, पृष्ठशूल, हृच्छूल, सन्धिगत वात, अर्दित, पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, बाहुशोष, अवबाहुक, विश्वाची, गृध्रसी, पङ्गुता, कलायखञ्ज आदि वात रोगों की पुरातन अवस्था में कफ की जड़ता दिखाई दे अथवा वायु में रुक्षता न आये, तब यह तैल मर्दन करना चाहिये। अनेक बार इससे असाधारण लाभ होता है। जिन व्यक्तियों के शरीर में श्लेष्मा की अधिकता और वायु के कारण रुक्षता न आई हो, उनमें इस तैल से बहुत लाभ होता है। वाताधिक व्यक्ति का रोग नया हो, तब यह औषध बरतनी अच्छी है; यह औषध आमरस पाचक होने से वातरोगों के अन्य तैल बरतने से पूर्व, शरीर सम्पूर्ण रुक्ष न हो, तब इस तैल को बरतना चाहिये। शरीर के सन्धिस्थान—हाथ-पैर आदि में वेदना होने पर इस तैल को मलकर स्वेद देना चाहिये; इससे वेदना कुछ ही समय में नष्ट हो जाती है।

बलातैल—आक्षेप के अन्तरायाम, वहिरायाम, सूतिकाश्रित पक्षाघात, प्रमेह, शुक्रक्षयजनित पक्षाघात, अपतानक, दण्डापतानक, शूल आदि वातरोगों की पुरातन अवस्था में रोगी की प्रकृति वायु और पित्त प्रधान होने पर यह तैल मलना चाहिये। स्त्रियों में सूतिकारोग के कारण आक्षेप आदि वायु रोग या अपस्मार, मूर्च्छा आदि उत्पन्न हो जायें तो यह तैल अतिशय लाभदायक है। प्रसूता के स्तनों में दूध सूख जाय तो यह तैल सम्पूर्ण शरीर पर मालिश करना चाहिये; वृद्ध एवं समृद्ध अथवा वातपित्ताधिक कृश व्यक्ति के लिये यह तैल उत्कृष्ट औषध है।

पुष्पराजप्रसारणी तैल—खंजता, पंगुता, शिरोगतवायु आदि, अर्दित, हनुस्तम्भ, कर्णगतवायु और बाहुशोष आदि वातरोगों की पुरातन अवस्था में यह तैल बरतना चाहिये। शिरोगतवात, अर्दित, हनुस्तम्भ, कर्णगतवायु, आदि रोगों में इस तैल का नस्य देना चाहिये, वात की अधिकता होने पर शिर पर यह तैल मलने से अधिक लाभ होता है। पक्षाघात और रक्तगत वातरोग में यह तैल लाभदायक है। इस तैल से नस्य और मर्दन दोनों ही करने चाहिये।

महामाष तैल—विश्वाची, गृध्रसी, पक्षाघात, कुब्जता, सर्वांगवात, बाहुशोष खंजता, कलायखंजता, अर्दित, अवबाहुक, कर्णगत वायुरोगों की पुरातन अवस्था में हाथ पैर आदि में संकुचता, स्पर्शाभाव, वायु के कारण कोई स्थान शुष्क एवं संकुचित हो जाये, उस स्थान पर इस तैल की मालिश करनी चाहिये। वायु एवं पित्त के प्रकोप के कारण युवा या वृद्ध व्यक्ति में जब दूसरी औषध से लाभ न हो; तब इस तैल की मालिश से सम्पूर्ण लाभ होता है। यह तैल, मूकत्व, मिन्मिनित्व, शिरःशूल आदि रोगों में नस्यरूप में और पक्वाशयगत वायु में वस्ति मार्ग से देना चाहिये; कोष्ट शुद्धि के लिये गरमदूध के साथ देना उत्तम है।

त्रिशतिप्रसारणी तैल—धनुस्तम्भ, अन्तरायाम, वहिरायाम, अर्दित, मूकत्व, मिन्मिनत्व, ऊर्ध्वगतवातरोग की पुरातन अवस्था में यह तैल नस्य से देना चाहिये, इस तेल की शिर पर मालिश करनी चाहिये। पक्षाघात, सर्वांगवात, बाहुशोष, अवबाहुक, विश्वाची, गृध्रसी, कलायखञ्जता, खल्त्री, मांसगतवात, अस्थिगतवात एवं मज्जागतवात आदि की पुरातन अवस्था में यह तैल मालिश करना चाहिये और फिर स्नान करना चाहिये। रोग की पुरातन अवस्था में वायु और श्लेष्मा का अनुबन्ध रहने पर यह तैल बहुत लाभ करता है। उन्माद और

अपस्मार में इस तैल की मालिश कर सकते हैं, दैवात हाथ पैर आदि टूट जायें और उस स्थान में वेदना और सूजन बनी रहे और पूर्व की क्षमता न आये; तब इस तैल की मालिश से विशेष लाभ होता है।

माषबलादि तैल—अववाहुक, बाहुशोष, पक्षाघात, हनुस्तम्भ, खंजता, मन्यास्तम्भ आदि वातरोगों की पुरातन अवस्था में विशेषतः वायु और पित्त की प्रबलता दीखने पर यह तैल रोगी के सर्वांग पर मलना चाहिये। पुरातन प्रमेहाश्रित विविध वातरोग में यह तैल बहुत उपकारी है। जिनका शरीर स्वभाव से ही कृश हो या दीर्घकाल रोग से निर्बल अथवा पीडित हो, देर में लम्बी बीमारी से स्वस्थता मिली हो, वाताधिक्य के कारण शरीर कृश, दुर्बल या कांपता हो; उनके लिये यह तैल प्रशस्त है।

बृहत् वातारि तैल—एकांगवात, सर्वांगवात, कुब्जता, अववाहुक, बाहुशोष, खंजता, पंगुता, कलायखंज, पादहर्ष, मिन्मिनवाग्, सन्धिवात, त्रिकशूल आदि वातरोग की पुरातन अवस्था में यह तैल मलना चाहिये। जिनके शरीर में कफ दोष हो अथवा कफ के कारण वातादि का अवरोध हो उनके लिये यह तैल बहुत उपयोगी है। शरीर के किसी स्थान पर चुभचुभाहटयुक्त वेदना या एक बार सुन्नता हो जाये अथवा ग्रन्थि वात, पृष्ठवातादिरोग में इस तैल को बरतना चाहिये।

अश्वगन्धा तैल—रक्तगत वायुरोग में कृशता एवं कृष्णिमा, अन्य लक्षण दीखते हों तब इस तैल के प्रयोग से लाभ होता है। पक्षाघात, सर्वांगवात आदि की पुरातन अवस्था में प्रमेह या रक्तदोष आदि उपद्रव विद्यमान हों, तब यह तैल बरतना चाहिये। इससे भिन्न वाताधिक व्यक्ति को कृशता या शुक्रक्षयादि दोष रहने पर यह तैल रोगी के शरीर पर मलना चाहिये। स्त्रियों में प्रदर या योनिगत रोगादि एवं पुरुषों के रक्तपित्तादि रोग में यह तैल मालिश करने से विशेष लाभ होता है। यह तैल वातघ्न, बलकारक और पुष्टिदायक है।

हिमसागर तैल—पित्ताश्रित वात में रोगी को अतिशय दाह, शरीर में कृशता और अति दुर्बलता रहने पर यह तैल मर्दन करना चाहिये। पित्ताधिक्य एवं क्षीण शुक्र व्यक्ति के लिये यह तैल बहुत लाभकारी है। इसके अतिरिक्त वातपित्ताधिक व्यक्ति में एकांग में शुष्कता हो जाये अथवा जिनको हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, मूकत्व, पंगुत्व या जो क्षयरोगाक्रान्त हों, उनके लिये यह तैल बहुत

लाभदायक है। श्लेष्माधिक या वातश्लेष्माधिक व्यक्ति में यह तैल सर्वथा न बरतना चाहिये। यह तैल अतिशय शीतल है। वातश्लेष्माधिक व्यक्ति के शिर तैल लगाने से सहसा ज्वर, शरीर में वेदना आदि शिकायत होने की सम्भावना है

मध्यम नारायण तैल—पक्षाघात, कुब्जता, खंजता, पंगुता, विश्वाची गृध्रसी, कलाय खंजता आदि रोगों की पुरातन अवस्था में रोगी की वायु प्रबल हो एवं इसके कारण नींद न आती हो, मलबन्ध हो, यह तैल उनके शिर तथा सारे शरीर पर मलना चाहिये। अवस्था विशेष में इस तैल की तीस या चालीस बूंद गरम दूध के साथ रोगी को दे सकते हैं। हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, अर्दित अन्तरायाम, बहिरायाम आदि वातरोग की पुरातन अवस्था में इस तैल का नस्य देना चाहिये। पक्वाशयगत वात, तूनी, प्रतितूनी आदि रोगों में मलबद्धता होने पर इस तैल को वस्ति से देना चाहिये। सब प्रकार के वातरोगों में यह तैल बरता जा सकता है।

मध्यम विष्णु तैल—पक्षाघात, कुब्जता, विश्वाची, गृध्रसी, खञ्जता, कलाय खञ्जता आदि वात रोगों की पुरातन अवस्था में नींद न आने पर, शरीर की क्षीणता, मलबन्ध, हाथ-पैर आदि अंगों में शक्ति की कमी होने पर यह तैल रोगी के शरीर और शिर पर मलना चाहिये। आध्मान, पक्वाशयगतवात बस्तिगतवात, तूनी, प्रतितूनी आदि रोगों में यह तैल उदर पर मलना चाहिये पुरातन अवस्था में विशेष अवस्थाओं में वस्ति से भी दिया जा सकता है। कोष्ठ बद्धता और पक्वाशयगतवायु में यह तैल ३० या ४० बूंद गरम दूध के साथ पीने के लिये भी दिया जा सकता है। प्रमेह, वातरक्त, पाण्डु आदि रोगों में यह तैल प्रयोग करना चाहिये।

वातरोग में ज्वर चिकित्सा

बृहत् पिप्पल्यादि क्वाथ—पक्षाघात, सर्वांगवात, कुब्जता, मन्यास्तम्भ आदि रोगों में ज्वर प्रबल होने पर यह क्वाथ रोगी को प्रतिदिन प्रातःकाल देना चाहिये। रोगी की प्रकृति वात कफ होने पर यह क्वाथ बहुत लाभदायक है

वातनिषूदन रस—पक्षाघात, सर्वांगवात, कुब्जता, धनुस्तम्भ आदि वात रोगों में रोगी को ज्वर होने पर यह औषध प्रतिदिन रोगी को देनी चाहिये। इस औषध से वाताश्रित मध्यम या अल्प ज्वर नष्ट होता है, **अनुपान**—सैन्धवलवण और आर्द्रक रस। मात्रा ४ रत्ती।

वातगजकेशरी—पक्षाघात, सर्वांगवात, हनुस्तम्भ, ग्रन्थिवात आदि रोगों में ज्वर रहने पर तथा ज्वर बहुत दिनों तक प्रतिदिन अल्पवेग से आता हो; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। जिन सब वातरोगों की पुरातन या मध्यमावस्था में वात-कफ की प्रधानता हो, ज्वर न रहने पर भी इससे लाभ होता है; अनुपान—हल्दी का पत्ररस और मधु। मात्रा दो रत्ती।

वातरोग में आध्मान के कारण मूत्र-मल का अवरोध-उसकी चिकित्सा

फलवर्ति—आध्मान, प्रत्याध्मान, बस्तिवात एवं पक्वाशयगतवात आदि रोगों में उदराध्मान एवं मल-मूत्र का अवरोध होने पर यह वर्त्ति मलद्वार में बरतनी चाहिये। जिन सब वातरोगों में उदराध्मान, मल-मूत्र का अवरोध हो, उन सब में यह वर्ति प्रयोग करनी चाहिये। इससे कोष्ट शुद्धि होने पर बहुत लाभ होता है।

हिंग्वाद्यवर्त्ति—आध्मान, प्रत्याध्मान, वस्तिवात, पक्वाशयगतवात, गुह्यगतवात आदि रोगों में उदराध्मान, मल-मूत्रावरोध होने पर यह वर्त्ति प्रयोग करनी चाहिये। आध्मान से पृथक् मल-मूत्ररोध होने पर भी इस वर्त्ति से बहुत लाभ होता है।

दारुषट्कलेप—आध्मान, प्रत्याध्मान, पक्वाशयगतवात, आमाशयगत आदि रोगों को प्रबलावस्था में उदर और हृदय में वेदना तथा अन्यान्य लक्षण उपस्थित हों, यह प्रलेप रोगी के आमाशय पर लगाना चाहिये।

यवप्रलेप—आध्मान, प्रत्याध्मान, पक्वाशयगतवात, आमाशयगत वायुरोग की प्रबलावस्था में उदर और हृदय आदि में वेदना या अन्यान्य लक्षण होने पर यह प्रलेप रोगी के उदर पर लगाना चाहिये।

वारिस्वेद—प्रत्याध्मान, तूनी, प्रतितूनी, वस्तिगतवात के आक्रमण के कारण रोगी का मल-मूत्र रुक जाये; प्रतिदिन आधा घण्टा तक स्वेद करना चाहिये। इससे वस्तिगत वायु क्रमशः कम होती है।

निरूहबस्ति—तूनी, प्रतितूनी, पक्वाशयगतवात, वस्तिगत वात आदि रोगों में कोष्टबद्धता होने पर निरुह वस्ति देनी चाहिये। पक्षाघात आदि रोगों में भी निरूहबस्ति बरती जासकती है।

अनुवासनवस्ति—कुब्जता, पक्षाघात सर्वांगवात आदि रोगों में रोगी को तीक्ष्ण विरेचक औषध अर्थात् सिंहनाद गुग्गुलु वा बृहत् सिंहनाद गुग्गुलु आदि सेवन कराके मल का शोधन होजाने के सप्ताह पीछे सायंकाल में अनुवासन वस्ति देनी चाहिये।

वायुरोग में मूर्च्छा-ज्ञानलोप चिकित्सा

मरिचादिनस्य—अन्तरायाम, वहिरायाम, अर्दित, अपतंत्रक, अपतानक, धनुष्टंकार, मूकत्व आदि वात रोगों में रोगी का ज्ञान लोप, वाणी का रुकना, औषध ग्रहण की असमर्थता आदि अस्वाभाविक अवस्था लक्षित होने पर यह नस्य रोगी को नासामार्ग से देना चाहिये। इसके प्रयोग से चेतना आती है।

वचादिनस्य—अर्दित, अपतंत्रक, अपतानक, अन्तरायाम वहिरायाम, धनुष्टंकार, मूकत्व आदि वातरोगों में वात कफ की प्रबलता दीखने पर एवं रोगी की सहसा अवस्था बदलने से मूर्च्छा, ज्ञानलोप, औषध लेने में असामर्थ्य होने पर यह नस्य देना चाहिये। नासा में थोड़ी भी औषध जाने से लाभ होता है।

चतुर्भुजरस—अर्दित, अपतन्त्रक, अपतानक, अन्तरायाम, वहिरायाम धनुष्टंकार, मूकत्व आदि वात रोगों में वात कफ की प्रबलता के कारण रोगी की संज्ञा का लोप, हाथ-पैर में आक्षेप, वाणीरोध होने पर नस्य द्वारा रोगी को चेतन करके यह औषध तालांकुर और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये। पक्षाघात और सर्वांगवात आदि रोग की प्रथमावस्था में वात कफ के प्रकोप के कारण अवस्था भेद दीखने पर यह औषध देनी चाहिये।

वातकुलान्तक—अर्दित, अपतन्त्रक, अपतानक, बहिरायाम, धनुष्टंकार मूकत्व, मिन्मिनित्व आदि में सहसा बेहोशी आ जाने पर नस्य द्वारा रोगी को चेतन करके यह औषध आर्द्रकरस और मधु से या तालांकुररस अथवा प्याज के रस और मधु से देनी चाहिये।

त्रैलोक्य चिन्तामणि—अर्दित, अपतानक, अपतन्त्रक, अन्तरायाम, बहिरायाम, आक्षेप आदि में सहसा बेहोशी आने पर नस्य द्वारा रोगी को सचेत करके यह औषध तालांकुर या आर्द्रकरस और मधु के साथ देनी चाहिये। पक्षाघात, बाहुशोष, अवबाहुक आदि रोगों की पुरातन अवस्था में अनुपानविशेष से इसका प्रयोग करना चाहिये।

उन्मादरोग-चिकित्सा

मदभंजनयोग—वायु और पित्तप्रधान तरुण उन्माद में अकारण हास्य, गीत, नृत, अंगविक्षेप, असहिष्णुता, क्रोध, तर्जन, प्रहार आदि अस्वाभाविक चेष्टा होने पर आवश्यकतानुसार एक बार, दो बार, तीन बार इसको बरतना चाहिये। यह औषध अत्यन्त अवसादक है। इसको देर तक लगातार देना अहितकर है; रक्तचाप की यह उत्कृष्ट औषध है (सर्पगन्धा का चूर्ण ४ आने से ८ आने तक शर्बत चीनी के साथ दें)।

ब्राह्मीयोग—वातिक उन्मादरोग की प्रथम या मध्यमावस्था में रोगी की स्मृति शक्ति नष्ट हो जाये, अस्वाभाविक चेष्टायें दीखने लगें, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये [ब्राह्मी पत्ररस ४ तोला, कूठ चूर्ण ३ मासा और मधु १ तोला मिलाकर प्रातः देना चाहिये।]

कुष्माण्डयोग—पैत्तिक उन्मादरोग में रोगी को प्यास, क्रोध आदि के लक्षण होने पर रोग की प्रथम या मध्यमावस्था में यह औषध बरतनी चाहिये। वाताश्रित उन्मादरोग में भी इससे लाभ होता है।

वचादियोग—श्लैष्मिक उन्माद में रोगी का स्मृतिह्रास, निर्जनप्रियता, कम बोलना आदि लक्षण होने पर रोग की प्रथम या मध्यमावस्था में यह औषध रोगी को देनी चाहिये। वातिक और सान्निपातिक उन्माद में यह उपकारी है। [वच चूर्ण १ तोला, कूठ चूर्ण ३ मासा, मधु १ तोला मिलाकर चटायें]।

शंखपुष्पीयोग—सान्निपातिक उन्मादरोग में रोगी में नानालक्षण दीखने पर रोग की प्रथम या मध्यमावस्था में रोगी को यह औषध देनी चाहिये। वातिक और श्लैष्मिक उन्माद की प्रथम और मध्यमावस्था में यह औषध बरती जा सकती है।

मनःशिलाद्यञ्जन—श्लैष्मिक वा सान्निपातिक उन्मादरोग की प्रथमावस्था में यह अंजन आंख में लगाना चाहिये।

त्र्यूषणाद्यवर्त्ति—उन्मादरोग की प्रथमावस्था में या श्लैष्मिक उन्माद में रोगी की स्मृति नष्ट हो जाने पर, जड़ता, निर्जनप्रियता एवं सान्निपाकि उन्मादरोग के विविध लक्षण दीखने पर इस वर्त्ति का अञ्जन रोगी की आंखों में करना चाहिये।

उन्मादभंजन नस्य—श्लैष्मिक उन्माद में रोगी का विमर्षभाव, निर्जन-उपवेशन, स्मृतिह्रास आदि होने पर एवं सान्निपातिक उन्माद में नाना लक्षण दीखने पर इस वटी को कांजी के साथ घिसकर रोगी के नासापुट में इस प्रकार लगाना चाहिये कि प्रश्वास के साथ अन्दर जाये। रोग की प्रबलावस्था में ७ या १० दिन के अन्तर से प्रातः देना चाहिये।

सारस्वत चूर्ण—सब प्रकार के उन्माद में स्मृति शक्ति का ह्रास होने पर, चित्त में विकलता रहने पर यह औषध घृत और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये। यह औषध स्मृति शक्तिवर्धक है। मात्रा दो आने से चार आना।

कल्याण चूर्ण—श्लैष्मिक उन्माद या वातिक उन्माद की प्रथमावस्था में विविध लक्षण दीखने पर यह चूर्ण गरम जल के साथ रोगी को देना चाहिये। मात्रा ½ तोला।

रसोनपिण्ड—श्लैष्मिक उन्माद की प्रथम या मध्यमावस्था का कोई भी लक्षण दीखने पर एवं वातिक उन्माद की प्रथमावस्था में श्लेष्मा का अनुबन्ध दीखने पर यह औषध प्रतिदिन प्रातः रोगी को गरम जल के साथ देनी चाहिये।

बृहत् सिंहनाद गुग्गुलु—पैत्तिक उन्मादरोग की प्रथमावस्था में रोगी को मलबन्ध रहने पर यह औषध विरेचन के लिये रोगी को देनी चाहिये। वातिक उन्माद की मध्यम या पुरातन अवस्था में मलबन्ध रहने पर पांच दिन के अन्तर से यह औषध रोगी को देनी चाहिये। उन्मादरोग की किसी भी अवस्था में मल-बन्ध रहने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

महालक्ष्मीविलास—श्लैष्मिक उन्मादरोग की प्रथम या मध्यमावस्था में नाना लक्षण दीखने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। सान्निपातिक उन्माद-रोग में वातकफ की प्रबलता होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—निर्गुण्डी के पत्तों का रस और मधु।

चतुर्भुजरस—श्लैष्मिक उन्मादरोग की प्रथमावस्था में रोगी कम बोले; निर्जनप्रियता एवं वातिक उन्माद में समय-समय पर नृत्य, गीत, हास्य आदि लक्षण दीखने पर यह औषध देनी चाहिये। पैत्तिक या सान्निपातिक उन्माद का कोई लक्षण दीखने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। यह औषध उन्मादरोग की प्रथमावस्था में बहुत लाभ करती है, किन्तु मध्यमावस्था में नहीं। अनुपान—तालकी कोमल शाखा का रस या ब्राह्मीपत्र स्वरस और मधु—तीन चार बूंद।

वातकुलान्तक—वातिक या पैत्तिक उन्माद की प्रथम या मध्यमावस्था में पित्त का अनुबन्ध दीखने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। सान्निपातिक उन्मादरोग में पित्त और वायु का अनुबन्ध दीखने पर इसका प्रयोग करना चाहिये; अनुपान-आर्द्रकरस और मधु।

त्रैलोक्य चिन्तामणि—वातिक उन्माद में श्लेष्मा का अनुबन्ध रहने पर या सान्निपातिक उन्माद में वायु की प्रबलता होने पर प्रथम या मध्यमावस्था में रोगी को यह औषध देनी चाहिये। वातिक उन्माद में वायु में रूक्षता न होने पर पुरातन अवस्था में यह औषध दी जा सकती है। अनुपान-तालकी शाखाका रस और मधु, पुराने उन्माद में-त्रिफला का शीत कषाय और मधु; प्रमेहादिरोग होने पर गाय के दूध के साथ।

लघ्वानन्दरस—पैत्तिक उन्मादरोग की प्रथमावस्था में विविध लक्षण दीखने पर, एवं वायु-कफ का अनुबन्ध रहने पर एवं सान्निपातिक उन्माद में पित्त की प्रबलता दीखने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान-पित्तपापड़े का रस या बीहीदाने का रस अथवा परवल का रस।

उन्मादभञ्जनरस—वातिक या पैत्तिक उन्माद रोग की मध्यम या पुरातन अवस्था में कोई भी लक्षण दीखने पर रोगी के शरीर में कृशता, होने से यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इस औषध को देने के सात दिन पीछे रेचक औषध देनी चाहिये। अपस्मार रोग में इसको बरत सकते हैं। अनुपान-भांगरे का रस और मधु। मात्रा ३ रत्ती।

चिन्तामणि रस—वातिक या पैत्तिक उन्माद की मध्यम या पुरातन अवस्था में अथवा सान्निपातिक उन्माद की मध्यम या पुरातन अवस्था में वात-पित्त की प्रबलता होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। मेहादि दोष के कारण पित्त की पुष्टि होने पर इससे विशेष लाभ होता है। इसको अपराह्न में देना चाहिये; अनुपान-हरीतकी, आंवला, बहेड़ा का शीत कषाय और मधु—दो-तीन बूंद।

चतुर्मुखरस—वातिक उन्माद की मध्यम या पुरातन अवस्था में यथोक्त लक्षण दीखने पर अथवा सान्निपातिक उन्माद रोग की पुरातन अवस्था में वायु की अधिकता होने पर यह औषध प्रातः काल में त्रिफला के शीत कषाय और मधु के साथ देनी चाहिये; यह वायु की रूक्षता को नष्ट करती है; स्निग्ध है।

योगेन्द्ररस—पैत्तिक या धातुक्षय आदि के कारण वायु के प्रकोप से उन्माद

रोग उत्पन्न हो, वायु में अतिशय रूक्षता हो; तब यह औषध हरड़, बहेड़ा और आंवला के शीत कषाय और मधु अथवा गाय के दूध के साथ देनी चाहिये।

बृहत् वात चिन्तामणि—वातिक, पैत्तिक उन्माद की पुरातनावस्था में नाना लक्षण हों एवं वायु में रूक्षता, पित्त में प्रबलता दीखती हो तो यह औषध अपराह्न में त्रिफला के शीत कषाय और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये। युवा, वृद्ध और धातुक्षयाक्रान्त व्यक्ति के लिये उत्तम है।

उन्मादगजकेशरी—श्लैष्मिक उन्माद रोग की प्रथमावस्था में रोगी में स्मृति नाश, निर्जन प्रियता आदि लक्षण हों अथवा वातिक उन्माद में श्लेष्मा का अनुबन्ध रहे; तब यह औषध घृत के साथ रोगी को प्रातः देनी चाहिये। अपस्मार और भूतोन्माद में भी इसका व्यवहार होता है। उन्माद रोग की यह उत्कृष्ट औषध है। मात्रा ५ रत्ती।

लशुनाद्यघृत—श्लैष्मिक उन्माद रोग की पुरातन अवस्था में वायु का प्रकोप और विविध लक्षण दीखने पर अथवा वातिक उन्माद रोग की पुरातनावस्था में श्लेष्मा का अनुबन्ध रहने पर रोगी को यह घृत प्रतिदिन सेवन कराना चाहिये। अनुपान–उष्ण दुग्ध। मात्रा ½ तोले से १ तोला।

चैतसघृत और महाचैतस घृत—वातिक, पैत्तिक अथवा सान्निपातिक उन्माद रोग की पुरातन अवस्था में यह घृत देना चाहिये। मानसिक विकारों की शान्ति के लिये यह घृत उत्तम है, अपराह्न में इसको दूध के साथ देना चाहिये। महाचैतसघृत–देव गुहादिजनित उन्माद रोग में, मूर्च्छा, अपस्मार, में यह घृत उत्तम है, विशेष करके यह स्मृतिवर्धक है। अतिसार होने पर घृत नहीं देना चाहिये। मात्रा ½ तोले से १ तोला।

महाकल्याणघृत—वातिक, पैत्तिक या सान्निपातिक उन्माद रोग की पुरातन अवस्था में वायु और पित्त की प्रबलता होने पर एवं उन्माद रोगी का शरीर क्रमशः कृश होता जाता हो, तब यह घृत अपराह्न में सेवन कराना चाहिये। भिन्न भिन्न रोगों में मानसिक विकारों में वायु–पित्त प्रबल उन्माद रोग उत्पन्न हो जाये, इस घृत का प्रयोग अत्यन्त उपकारी है। कृश और दुर्बल व्यक्ति के लिये पुष्टिकारक और बलवर्धक है। अनुपान—उष्ण दुग्ध। मात्रा ½ तोला।

महापैशाचिकघृत—बालक आदि में अधिक परिश्रम के कारण क्रमशः मानसिक रोग एवं संसर्ग दोष अथवा माता पिता के शासन की ढीलाई से चित्त में

अधीरता के कारण मन में विकार उत्पन्न हो जाये-जिससे पीछे उन्माद के लक्षण दीखने लगे, तब यह घृत देना उत्तम है। अपस्मारादि रोग में उत्तम फलदायक, एवं स्मृतिशक्ति और बुद्धि को बढ़ाने वाला है' बालकों को यह घृत देने से कृशता नष्ट होती है. बल बढ़ता है; अनुपान-उष्ण दूध। मात्रा ½ तोला।

शिवाघृत—वातिक, पैत्तिक, सान्निपातिक उन्माद रोग की पुरातन अवस्था में नाना प्रकार के लक्षण दीखने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। जिन सब व्यक्तियों में चिन्ता, शोक के कारण मानसिक विकार या उन्माद के लक्षण दीखते हों, उनके पक्ष में यह घृत अति उत्तम है। इसके अतिरिक्त यक्ष्मा, उरः क्षत, बहुमूत्र, प्रमेह, मूत्राघात, जीर्णज्वर आदि रोगों में जब वायु-पित्त की प्रबलता हो, तब यह घृत देना उत्तम है। जिन सब रोगों में मानसिक विकार दीर्घ काल स्थायी हो, उनमें यह घृत बरतना चाहिये। उन्माद रोग में जिनका शरीर अति निर्बल और कृश हो, उनके लिये यह घृत बहुत लाभ दायक है। बन्ध्या स्त्रियों के लिये उत्तम फल दायक है; अपस्मार एवं मूर्च्छा रोग में इस घृत का व्यवहार हो सकता है; अनुपान-उष्ण दूध। मात्रा ½ तोला।

बृहत् दशमूल तैल—श्लैष्मिक उन्माद रोग की पुरातन अवस्था में वायु का अनुबन्ध रहने पर इसके कारण रात में नींद का न आना, असमय में हास्य, गीत आदि करना, नस्य आदि से श्लेष्मा का कुछ ह्रास हुआ हो, तब इस तैल की शिर पर मालिश करनी चाहिये। वातिक या सान्निपातिक उन्माद रोग में श्लेष्मा का अनुबन्ध रहने पर यह तैल रोगी के शिर पर मालिश करना चाहिये।

मध्यमनारायण तैल—वातिक, पैतिक उन्माद रोग के बीच में या पुरातनावस्था में रोगी की दशा में कुछ सुधार दिखाई देवे, तब यह तैल उसके शिर पर तीन या चार घण्टे मलना चाहिये। रोगी के सिर में गरमी लगने पर यह तैल सदा सिर पर रखना चाहिये। सान्निपातिक उन्माद में वायु और पित्त की प्रबलता होने पर इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है।

त्रिशतीप्रसारणी तैल—वातिक, पैत्तिक, सान्निपातिक उन्माद रोग की मध्यम या पुरातन अवस्था में रोग कुछ घटा दीखता हो; तब यह तैल शिर पर मलना चाहिये। श्लैष्मिक उन्माद रोग की पुरातन अवस्था में यह तैल प्रयोग किया जा सकता है। जिन व्यक्तियों में वायु के कारण रूक्षता, चित्तचांचल्य एवं

हाथ-पैर आदि अंगों में बलहीनता रहती हो उनके लिये यह तैल अति उपकारी है। यह सब प्रकार के वायु विकार अर्थात् अपस्मार, मूर्च्छा रोग में बरता जा सकता है।

हिंगुलेश्वर—उन्माद रोग में आहार आदि की अनियमितता से अथवा अत्यधिक शीतल द्रव्य पान या शीत क्रिया के कारण रोगी को ज्वर हो जाये एवं ज्वर में शीत एवं कम्प रहता हो, तब रोगी को यह औषध आर्द्रक रस और मधु के साथ देनी चाहिये। ज्वर की नूतनावस्था में इसको देना चाहिये।

मृत्युञ्जयरस—उन्माद रोग में अत्यधिक शीत क्रिया के कारण अथवा आहारादि की अनियमितता से ज्वर हो जाये, यह औषध रोगी को पान के रस और मधु के साथ अथवा आर्द्रक रस और मधु के साथ देनी चाहिये। ज्वर की नूतनावस्था में इसको देना चाहिये।

बृहत् वात चिन्तामणि—प्रमेह रोग में या नाना कारणों से शुक्र क्षय के कारण वायु का प्रकोप होने से उन्माद रोग हुआ हो, इस उन्माद में दीर्घ काल-तक ज्वर भी रहे; तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। उन्माद रोगी का शरीर कृश या क्षय ग्रस्त हो; यह औषध अधिक लाभ दायक है। जीर्ण ज्वर में इसको बरतना चाहिये; अनुपान-दूध।

अपस्माररोग-चिकित्सा

वचादि नस्य—श्लैष्मिक अपस्मार में मूर्च्छा से आक्रान्त होने पर रोगी के अंगों में श्वेतिमा तथा दीर्घ काल में चेतना आने पर यह नस्य श्वास के मार्ग से देना चाहिये। सान्निपातिक अपस्मार में वात कफ की प्रबलता होने पर यह नस्य प्रयोग करना चाहिये।

कल्याण चूर्ण—अपस्मार रोगी को हृत्कम्प, नेत्रविकृति, गरमी, हाथ-पैर में शीतलता आदि उपद्रव होने पर गरम पानी के साथ यह चूर्ण रोगी को देना चाहिये। उन्माद और अर्श में भी इस औषध को बरत सकते हैं। यह अग्नि वर्धक, वातिक और श्लैष्मिक अपस्मार रोग में उपकारी है।

वातकुलान्तक—वातिक और पैत्तिक अपस्मार रोग में नाना प्रकार के लक्षण दीखते हों एवं दोषों के प्रकोप के कारण रोगी प्रतिदिन या थोड़े दिनों पीछे

बार-बार मूर्च्छा आक्रान्त हो जाता हो, उसे प्रतिदिन यह औषध देनी चाहिये। रोग की प्रथमावस्था में यह औषध बहुत लाभ दायक है। रोगी दीर्घ काल तक मूर्च्छा से आक्रान्त हो जाये; वातादि दोषों की प्रबलता दीखती हो, तब यह औषध देना आवश्यक है। सान्निपातिक अपस्मार रोग की प्रथमावस्था में वायु और पित्त की प्रबलता रहने पर इससे विशेष लाभ होता है। अनुपान-बला का रस और मधु।

चतुर्भुज रस—वातिक, पैत्तिक, सान्निपातिक अपस्मार के रोगी में मूर्च्छा और पूर्वोक्त अन्यान्य लक्षण दीखते हों, तब रोग की प्रथमावस्था में रोगी को यह औषध देनी चाहिये। सब प्रकार के अपस्मारों को नूतनावस्था में यह उपयोगी है; अनुपान-तालकी शाखा का रस और मधु।

त्रैलोक्य चिन्तामणि—वातिक, पैत्तिक और सान्निपातिक अपस्मार रोग की प्रथमावस्था में वात-कफ का प्रकोप दीखने पर एवं मूर्च्छा काल में रोगी के हाथ-पैर आदि में कम्प आदि उपद्रव होने पर यह औषध आर्द्रक रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये। अपस्मार की पुरातन अवस्था में दूध के साथ देनी चाहिये।

उन्मादगज केशरी—श्लैष्मिक अपस्मार की प्रथमावस्था में नाना प्रकार के लक्षण दीखते हों, रोगी को गाय के घृत के साथ एक वटी प्रतिदिन देनी चाहिये। उन्मादरोग की श्रेष्ठ औषध है।

बृहत् नारदीय लक्ष्मीविलास—श्लैष्मिक अपस्मार की प्रथमावस्था में भिन्न भिन्न लक्षण दीखते हों, रोगी की मूर्च्छा देर में छुटती हो, यह औषध रोगी को देनी चाहिये। वातिक अपस्मार में इसका प्रयोग करना चाहिये; अनुपान—निर्गुण्डी के पत्तों का रस और मधु।

चतुर्मुख रस—वातिक या पैत्तिक अपस्मार की मध्यम या पुरातनावस्था में रोगी का शरीर क्षीण एवं वायु-पित्त की प्रबलता रहने पर यह औषध रोगी को अपराह्न में देनी चाहिये। अनुपान—हरीतकी आंवला-बहेड़ा का शीत कषाय और मधु।

चिन्तामणि चतुर्मुख—वातिक, पैत्तिक अपस्मार रोग की मध्यम या पुरातनावस्था में यह औषध रोगी को अपराह्न में देनी चाहिये। जिन रोगीयों में हृत्कम्प,

शारीरिक दुर्बलता और नींद का अभाव रहता हो उनके लिये यह बहुत लाभदायक है।

योगेन्द्र रस—वातिक या पैत्तिक अपस्मार रोग की पुरातनावस्था में रोगी का शरीर कृश हो प्रमेह-बहुमूत्र रोग हो या ये रोग रोगी को पूर्व रहे हों, यह औषध रोगी को अपराह्न में देनी चाहिये, अनुपान—त्रिफला का शीत कषाय और ईक्षु चीनी।

रसोनपिण्ड—श्लैष्मिक अपस्मार रोग की प्रथम या मध्यमावस्था में भिन्न भिन्न लक्षण हों एवं साथ में रोगी में वायु की प्रबलता हो, यह औषध उसको सेवन करानी चाहिये; अनुपान-उष्ण जल।

योगराजगुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक या सान्निपातिक अपस्मार रोग की मध्यमावस्था में रोगी को मलबन्ध न हो तथा वात के अन्य लक्षण रहें तब यह औषध प्रतिदिन प्रातः एक बार गरम जल से देनी चाहिये।

बृहत् पञ्च गव्यघृत—वातिक, पैत्तिक अपस्मार रोग की पुरातन अवस्था में यह घृत अपराह्न में देना चाहिये। जीर्णज्वर, कास, उदर, अर्श में व्यवहृत होता है। पाण्डु, कामला, हलीमक रोग की पुरातन अवस्था में यह घृत दिया जा सकता है; अनुपान-दूध।

कुष्माण्डघृत—पैत्तिक अपस्मार रोग की पुरातन अवस्था में भिन्न भिन्न लक्षण दीखने पर रोगी के बहुत कृश और दुर्बल होने पर यह घृत उसको देना चाहिये। पित्त प्रधान व्यक्ति में इससे विशेष लाभ होता है; अनुपान-उष्ण दुग्ध।

पलङ्कषाद्य तैल—वातिक, पैत्तिक या सान्निपातिक अपस्मार रोग की मध्यम या पुरातन अवस्था में मूर्च्छा का वेग पूर्वापेक्षा कम हो जाये अथवा वायु और पित्त की प्रबलता के कारण नाना लक्षण दीखते हों तब यह तैल रोगी के शिर और सर्वांग पर मलना चाहिये।

मूर्च्छारोग-चिकित्सा

कणादि क्वाथ—वातिक मूर्च्छा रोग की प्रथमावस्था में शरीर में कृशता और वाताश्रित अन्य लक्षण दीखने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। ज्वर में मूर्च्छा होने पर इसके देने से लाभ होता है।

ह्रीवेरादि क्वाथ—पैत्तिक मूर्च्छा रोग में रोगी को दाह, प्यास, सन्ताप, नेत्रों में सुर्खी दिखाई देवे, यह क्वाथ उसे देना चाहिये। पैत्तिक ज्वर में या अन्य किसी ज्वर में मूर्च्छा होने पर यह वरतना चाहिये।

वचादिनस्य—मूर्च्छा रोग में रोगी देर तक मूर्च्छा से आक्रान्त रहे, विशेषतः श्लैष्मिक और सान्निपातिक मूर्च्छा रोग में; तब इसको नासा मार्ग से देना चाहिये। सन्यास रोग में यह नस्य बहुत लाभ दायक है।

ताम्रयोग—वातिक या पैत्तिक मूर्च्छा रोग में यह औषध शीतल जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। [उत्कृष्ट ताम्र भस्म, खस, नागकेशर–प्रत्येक का चूर्ण आधा रत्ती लेकर मिलाकर मधु से दें]।

सूतभस्म योग—श्लैष्मिक या सान्निपातिक मूर्च्छा रोग में यह औषध रोगी को प्रातः और संध्या काल में देनी चाहिये [कणा मधुयुतं सूतं मूर्च्छायामनु शीलयेत् ॥ रसेन्द्र]।

वातकुलान्तक—वातिक, पैत्तिक या सान्निपातिक मूर्च्छा रोग में रोग की प्रथमावस्था में बलामूल के रस और मधु के साथ यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

नारदीय महालक्ष्मीविलास—श्लैष्मिक या सान्निपातिक मूर्च्छा रोग की प्रथमावस्था में विविध लक्षण दीखने पर यह औषध पान के रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

मूर्च्छान्तक रस—वातिक या पैत्तिक मूर्च्छा रोग की मध्यम या पुरातनावस्था में एवं प्रमेहादि विविध कारणों से शरीर में कृशता होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान–प्रमेह रोग में शतावरी का रस या त्रिफला का शीत कषाय और मधु। मात्रा २ रत्ती।

बृहत् शतावरीघृत—वातिक या पैत्तिक मूर्च्छा रोग की पुरातनावस्था में विशेषतः प्रमेह; सूतिका रोग, शुक्र-क्षरण आदि कारणों से शरीर अति कृश हो जाये, तब यह घृत गरम दूध के साथ देना चाहिये।

अश्वगन्धारिष्ट—वातश्लैष्मिक या श्लैष्मिक मूर्च्छारोग की मध्यम या पुरातनावस्था में रोगी का शरीर कृश, स्नायु दौर्बल्य, मानसिक दुर्बलता आदि लक्षण दीखने पर यह औषध सन्ध्याकाल में रोगी को देनी चाहिये।

मध्यमविष्णुतैल—वातिक या पित्तप्रधान मूर्च्छा रोग की मध्यम या पुरातनावस्था में यह तैल रोगी के सिर पर मलना चाहिये।

वायुच्छायासुरेन्द्र तैल—वातिक या पैत्तिक मूर्च्छा रोग की पुरातनावस्था में नींद न आना, सन्ताप, गात्र दाह, कम्प आदि लक्षण दीखने पर विशेषतः स्त्रियों के प्रदर, सूतिका रोग, रजःस्राव आदि कारणों से मूर्च्छा रोग उत्पन्न हुआ हो, तब यह तैल सिर पर मालिश करना चाहिये। वायु और पित्त प्रधान व्यक्तियों में यह तैल बहुत लाभदायक है।

आमवात चिकित्सा

अहिंस्रादिलेप—प्रमेहाश्रित या उपदंश जनित आमवात में या सन्धिगत वातरोग में बड़ी सन्धियों में या सन्धि में वेदना और सूजन होने पर यह प्रलेप लगाना चाहिये [तालमखाना, केवुकमूल, सहिजन छाल और वल्मीकमृत्तिका, इनको समान भाग लेकर गोमूत्र में पीसकर लगाना चाहिये]।

त्रिवृत्तादियोग—सन्धिगत या सर्वांगगत आमवात की प्रथमावस्था में मलवन्ध एवं हाथ-पैर की सन्धियों में बेदना होने पर यह औषध कांजी के साथ प्रातः सेवन कराना चाहिये, इससे दो-एक बार मल आता है; मात्रा—½ से १ तोला।

अमृतादियोग—नूतन सन्धिगत या सर्वांगगत आमवात रोग में हाथ और पैर आदि सन्धिस्थान पर वेदना हो; यह औषध प्रातःकाल कांजी से देनी चाहिये। मात्रा—३ मासा।

शंकर स्वेद—सन्धि सूजन में, सर्वांगवात; सूतिकाश्रित वातरोग की प्रथमावस्था में सर्वांग या हाथ-पैर आदि की सन्धिस्थल में उत्कट वेदना दीखती हो; तो यह स्वेद बार-बार देना चाहिये।

रास्नासप्तक—सर्वांगगत आमवात रोग की प्रथमावस्था में रोगी के शरीर में वेदना, ज्वर, मलबन्ध रहने पर इस क्वाथ में आधा तोला एरण्डतैल डालकर पिलाना चाहिये।

महारास्नादि क्वाथ—सर्वांगगत या सन्धिगत आमवात की प्रथमावस्था में या मध्यमावस्था में हाथ-पैर आदि सन्धिस्थल में या सर्वांग में वेदना होने पर एवं साथ में ज्वर भी रहे, यह क्वाथ प्रातः आभाद्य चूर्ण या अलम्बूसाद्य चूर्ण के साथ देना चाहिये।

वैश्वानर चूर्ण—आमवात रोग की प्रथम या मध्यमावस्था में कोष्टवद्धता, अग्निमान्द्य, सर्वांग में वेदना होती हो, तब यह चूर्ण प्रातः गरम जल के साथ देना चाहिये; यह चूर्ण रेचक और अग्निवर्धक है।

अलम्बुषाद्य चूर्ण—सन्धिगत, सर्वांगगत या प्रमेहाश्रित वातरोग की प्रथम या मध्यमावस्था में हाथ-पैर आदि सन्धिस्थल में या सर्वांग में प्रबल वेदना हो; तब यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

योगराजगुग्गुलु—सन्धिगत और सर्वांगगत आमवात में एवं प्रमेहाश्रित, उपदंशाश्रित वातरोग की नूतन या मध्यमावस्था में सन्धिस्थान या सर्वांग में वेदना कोष्टवद्धता, अग्निमान्द्य लक्षण रहने पर यह औषध रोगी को प्रातः गरम जल के साथ देनी चाहिये। आमवात रोग की यह उत्तम औषध है। पीठ, कटि, त्रिक-सन्धि की वेदना इससे नष्ट होती है। वायु के प्रकोप के कारण कोष्टशुद्धि न हो तब इसको प्रातः और सायं दो वार देना चाहिये।

बृहत् योगराजगुग्गुलु—चिरकालीन आमवात के कारण जिनमें अंगों में गति की कमी, पैर में विकृति, कटि देश या सर्वांग में सदा वेदना, भारीपन, गमनागमन में अति कष्ट होता हो उनके लिये यह औषध उत्तम है; अनुपान—उष्ण जल।

शिवागुग्गुलु—सर्वांगगत या सन्धिगत वात की प्रथम या मध्यमावस्था में हाथ-पैर आदि के सन्धि स्थल में वेदना, कोष्टबद्धता रहने पर यह औषध उष्ण जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। कटिशूल और सर्वांगगत आमवात में भी इसको बरत सकते हैं। प्रमेहाश्रित या उपदंशाश्रित वायु की प्रथमावस्था में सन्धिस्थल में वेदना या कोष्टकाठिन्य होने पर यह बहुत लाभदायक है।

सिंहनाद गुग्गुलु—आमवात रोग की प्रथम या मध्यमावस्था में रोगी के सर्वांग में वेदना और कोष्टवद्धता रहने पर यह औषध सेवन करानी चाहिये। इसके सेवन से दो एक बार मल-प्रवृत्ति होती है। सन्धिगतवात, कटिशूल एवं पृष्ठशूलादि में इसके प्रयोग से असाधारण लाभ होता है।

बृहत् सिंहनाद गुग्गुलु—प्रमेहाश्रित वातरोग में सन्धि में वेदना प्रबल हो; रोगी बलवान् हो; तब यह औषध देनी चाहिये। प्रतिदिन इसको नहीं बरतना चाहिये। अनुपान—गरम जल।

रसोनपिण्ड—सर्वांगगत आमवात या सन्धिगत आमवात की नूतन या मध्यमावस्था में सन्धिस्थान या सर्वांग में वेदना होने पर यह औषध प्रतिदिन प्रातः रोगी को सेवन करानी चाहिये। सन्धिस्थान सूज जाये अथवा प्रमेहाश्रित आमवात में प्रमेहदोष निवृत्त हो जाये, तब इसका सेवन करा सकते हैं। किन्तु प्रमेह रोग या उपदंशाश्रित वात रोग के रहने पर इसका व्यवहार नहीं कराना चाहिये। अनुपान—उष्ण जल।

आमवातारि गुटिका (१)—सर्वांगगत या सन्धिगत आमवात की प्रथम या मध्यमावस्था में रोगी के समस्त सन्धिस्थल में वेदना, मलबन्ध रहने पर यह औषध उसको प्रातःकाल देनी चाहिये। जिनको अतिसार या नियमित मल प्रवृत्ति होती हो, उनको यह औषध नहीं देनी चाहिये। प्रमेहाश्रित वात की प्रथमावस्था में ज्वर या अन्य लक्षण रहने पर कोष्ठशुद्धि के लिये इसका व्यवहार करना चाहिये। ग्रन्थिशूल, शिरःशूल और गृध्रसी आदि रोगों में मलबद्धता रहने पर इस औषध को बरतना चाहिये; अनुपान—उष्ण जल।

आमवातारिगुटिका—(२) आमवात रोग की प्रथमावस्था में रोगी के सन्धिस्थल या सर्वांग में वेदना, मलबन्ध रहने पर यह औषध प्रातः एरण्ड तैल से सेवन करानी चाहिये, ऊपर से गरम पानी पिलाना चाहिये [कर्षोऽस्यैरण्डतैलेन हन्त्युष्णजलपायिनः। आमवातमतीवोग्रं दुग्धं मुद्गादि वर्जयेत्॥]।

आवातगजेन्द्रसिंह—आमवात रोग की प्रथम या मध्यमावस्था में रोगी को नियमित मलत्याग हो; अथवा अतिसार में आमवात हो; सूतिका रोग या अतिसार में आमवात हो; या सूतिका रोग में अतिसार होने से आमवात हो जाये; तब यह औषध गरम पानी से रोगी को देनी चाहिये। नियमित मलत्याग होने पर एरण्डमूलरस और सैन्धव नमक के साथ देना चाहिये। नूतन आमवात में नियमित कोष्ठ वाले व्यक्ति को प्रमेह में इसको देना चाहिये परन्तु गनोरिया में नहीं देना चाहिये; अनुपान—पुनर्नवाका रस और मधु।

बृहत् सैन्धवादितैल—सर्वांगगत, सन्धिगत या सूतिकाश्रित वातरोग की पुरानी अवस्था में रोगी के जिन स्थानों में वेदना होती है, वहां पर यह तैल मलकर स्वेद देना चाहिये। कटि, पृष्ट, जंघा और बाहू में वेदना होने पर यह तैल विशेष लाभकारी है।

विजयभैरव तैल—सन्धिगतवात, मेहाश्रितवात पुरानी हो जाये, सन्धि-स्थान में थोड़ा या अधिक दर्द और सूजन रहने पर यह तैल मलकर स्वेद देना चाहिये। आघात लगने से कोई स्थान टूट जाये या वहां पर वेदना हो; इस तैल का प्रयोग करना चाहिये। हाथ' जंघा, शिरःकम्प में यह तैल बहुत उपयोगी है।

महाविजयभैरव तैल—सन्धिगत प्रमेहाश्रित और उपदंशाश्रित प्रभृति वातरोग की पुरानी अवस्था में सन्धिस्थान में वेदना और सूजन होने पर यह तैल मलना चाहिये। बाहुकम्प, शिरःकम्प, जंघाकम्प आदि वात रोगों में यह तैल बहुत उपयोगी है।

आमवात में ज्वरचिकित्सा

बृहत् पिप्पल्यादि क्वाथ—सन्धिगत, प्रमेहाश्रित आमवात में ज्वर हो एवं इसके कारण अरुचि, शरीर में वेदना, मलबन्ध आदि लक्षण होने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

मृत्युंजयरस—सर्वांगगत या सन्धिगत वायुरोग की प्रथमावस्था में ज्वर, शरीर में वेदना, प्यास आदि लक्षण प्रबल हो, रोगी को मलबन्ध रहे, तो यह औषध आर्द्रकरस और मधु के साथ प्रातः और रात्रि में देनी चाहिये।

जयावटी—सन्धिगत और मेहाश्रित वातरोग में सन्धि और सर्वांग वेदना, ज्वर, प्यास, मूत्राधिक्य, अन्य उपद्रवों के साथ ज्वर होने पर यह औषध पान के रस और मधु के साथ प्रातः और रात्रि में रोगी को देनी चाहिये।

वातनिषूदनरस—सन्धिगत या प्रमेहाश्रित वातरोग में ज्वर मन्दरूप में रहे या पुराना हो जाये, तो यह औषध प्रतिदिन आर्द्रकरस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

चन्द्रप्रभा गुटिका—सन्धिगत वात और प्रमेहाश्रित वातरोग में मल बद्धता, चूने के पानी या चाक के समान सफेद मूत्र (लसीका मेह), पूय की भांति शुक्र क्षरण, लाल या हल्दी के रंग का मूत्र, मूत्र का थोड़ा थोड़ा आना या मूत्र का अधिक मात्रा में आना, इनमें से कोई भी लक्षण होने पर यह औषध देनी चाहिये। यह औषध वातानुलोमिक और कोष्टशुद्धिकारक है, अनुपान—घृत और मधु।

महावङ्गेश्वर रस—सन्धिगत वात या प्रमेहाश्रित वातरोग में मूत्र में दाह, हरिद्रा वर्ण या पीत वर्ण मूत्र अथवा चूने के समान श्वेत मूत्र, शरीर में अति

कृशता होने पर रोगी को यह औषध कच्ची हरिद्रा का रस और मधु या शतावरी रस, मधु और केवल दूध के साथ दिन में एक बार देनी चाहिये। मूत्र में कष्ट या मूत्राधिक्य में इससे बहुत लाभ होता है।

आमवात में दुर्बलता की चिकित्सा

मकरध्वज रस—प्रमेहाश्रित वात रोग में शरीर में अति कृशता, बलहानि, क्षुधामान्द्य आदि लक्षण रहने पर वात श्लेष्माधिक प्रकृति के व्यक्ति को यह औषध दिन में एक बार बकरी के दूध के साथ देनी चाहिये। आमवात की पुरातनावस्था में वेदना और ज्वर कम हो जाये, तो इसका सेवन विशेष लाभदायक है। प्रमेहाश्रित आमवात की प्रथमावस्था में ज्वर एवं प्रमेहजनित ज्वाला, पूयस्रवा आदि उपद्रव कम होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। मात्रा—२ रत्ती।

मकरध्वज वटिका—प्रमेहाश्रित आमवात में सन्धिगत आमवात की पुरानी अवस्था में रोगी के शरीर में कृशता, बलहानि, क्षुधानाश, अल्पज्वर आदि रहने पर वातश्लेष्माधिक या श्लेष्माधिक व्यक्ति को यह औषध पान के रस और मधु के साथ देनी चाहिये। नूतनावस्था में ज्वर कम हो जाने पर यह प्रयोग करनी चाहिये।

अमृतप्राशघृत—प्रमेहाश्रित आमवात वा सन्धिगत वात अत्यन्त प्रबल हो और रोगी का शारीरिक बल एक दम से कम हो जाये, उस समय यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। वायु की नूतनावस्था में या पुरातनावस्था में ज्वर और वेदना कम हो जाने पर इसका सेवन कराना चाहिये।

वातरक्त-चिकित्सा

रास्नादिलेप—वातरक्त के शोथयुक्त स्थान में दाह, वेदना और गरमी आदि उपद्रव होने पर वेदना के स्थान पर यह लेप लगाना चाहिये। [रास्ना, गिलोय, मुलहठी और बला—प्रत्येक वस्तु समान लेकर दूध में पीसकर लेप करना चाहिये]।

पटोलादि क्वाथ—पैत्तिक वातरक्त में दाह, गरमी, मूर्च्छा, एवं प्यास आदि उपद्रव होने पर यह क्वाथ रोगी को प्रातः काल देना चाहिये। इससे मल का शोधन होता है।

गडूची क्वाथ—वातिक वातरक्त की नूनतावस्था में शूल, स्फुरण, भग्न की भांति वेदना, कृष्णाभा, धमनी और अंगुली आदि में सङ्कुचन, कम्प, स्पर्श शक्ति का अभाव, ये सब लक्षण होने पर इस क्वाथ में गाय के घृत का प्रक्षेप देकर रोगी को पिलाना चाहिये। वातरक्त में पित्त की अधिकता के कारण हाथ-पैर में दाह, घर्म, (पसीना) प्यास, मूर्च्छा आदि उपद्रव होने पर इक्षुचीनी का प्रक्षेप देकर इसको देना चाहिये। वातरक्त में कफ की अधिकता से शरीर में भार बोध, स्पर्शशक्ति की कमी, रुग्ण स्थान पर थोड़ी वेदना होने पर यह क्वाथ मधु के साथ रोगी को देना चाहिये।

वासादि क्वाथ—वातिक वातरक्त में हाथ आदि स्थानों में वेदना, धमनी अंगुली आदि का संकोच, कम्प और स्पर्श शक्ति की कमी आदि उपद्रव दीखने पर अथवा वात-पित्ताश्रित वातरक्त में ये लक्षण दिखाई दें; रोगी को पसीना, तृष्णा, दाह, शीत क्रिया की अनिच्छा, शरीर में भारीपन, रोग स्थान का पकना आदि लक्षण हों तो इस क्वाथ में एरण्ड तैल ½ तोला मिला कर रोगी को देना चाहिये (वासा, गिलोय, अमलतास मज्जा, प्रति द्रव्य समभाग लेकर मिलित द्रव्य समूह २ तोला, पानी ३२ तोला, जल ८ तोला शेष करें)।

अमृतादि क्वाथ—श्लैष्मिक वातरक्त में स्पर्शशक्ति की कमी, रोग के स्थान में खाज, थोड़ी-थोड़ी वेदना, एवं पित्तश्लैष्मिक वातरक्त में दाह, कण्डू, पक्वता, स्पर्शशक्ति की कमी, अल्पवेदना, पसीना आदि उपद्रव होने पर इस क्वाथ को देना चाहिये।

नवकार्षिक क्वाथ—वातश्लैष्मिक वातरक्त में स्पर्शशक्ति की कमी, दाह, पसीना, सन्धि-धमनी संकोच, रोग के स्थान में पक्वता, अल्पवेदना, शीतद्वेष आदि लक्षण उपस्थित हों अथवा एक मात्र (पैत्तिक) वातरक्त में दाह, पसीना, प्यास; रोग स्थान में पक्वता आदि उपद्रव हों, यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। वातरक्त में यह क्वाथ बहुत लाभदायक है।

निम्बादि चूर्ण—वातिक, श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक वातरक्त में शूल, भङ्गवत् पीड़ा, धमनी या अङ्गुली का सङ्कोच, अङ्गों में दर्द, शरीर में भारीपन, कण्डु, अल्पवेदना आदि लक्षण दीखने पर यह औषध गिलोय के क्वाथ के साथ सेवन करानी चाहिये। पैत्तिक या पित्तश्लेष्माश्रित वातरक्त में दाह, स्वेद, रुग्ण स्थान में पक्वता

होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। यह औषध वातरक्त के मध्य या परिणतावस्था में बरतनी चाहिये। कुष्ठ और दद्रु आदि रोगों में बहुत लाभदायक है।

अमृतागुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक, सान्निपातिक या रक्तप्रधान वातरक्त में दाह, स्वेद, रुग्णस्थान की पक्वता, कण्डु, स्पर्शशक्ति का अभाव, धमनी और अङ्गुली आदि में संकोच, शरीर में वेदना, शीतद्वेष, शरीर में स्तब्धता आदि दो-तीन लक्षण या सम्पूर्ण लक्षण दीखने पर रोगी को यह औषध गरम जल के साथ प्रातः और सायंकाल देनी चाहिये। कुष्ठ, दूषितव्रण, प्रमेहादि में इसको बरत सकते हैं। वातरक्त की मध्यम और पुरातनावस्था में इसको बरतना चाहिये; अनुपान—गरम जल।

कैशोर गुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक, सान्निपातिक या रक्तप्रधान वातरक्त में दाह, स्वेद, रुग्ण स्थान का पकना, कण्डू, सुर्खी, सूजन, स्पर्शशक्ति की कमी, अङ्गुलियों में संकोच, शरीर में भारीपन, शीतद्वेष आदि लक्षण एक साथ या अलग-अलग दिखाई दें; तब यह औषध रोग की प्रथम, मध्यम और पुरातनावस्था में प्रातःकाल और सन्ध्याकाल में गरम जल के साथ देनी चाहिये। कुष्ठ रोग में इसको बरत सकते हैं।

गुडूच्यादि लौह—पैत्तिक, वातपैत्तिक या रक्तप्रधान वातरक्त में अति दाह, स्वेद, मूर्च्छा आदि लक्षण दीखने पर एवं हाथ-पैर आदि कट जायें, कण्डू और क्लेद निकलता हो, यह औषध धनिया और परवल के शीत कषाय के साथ रोगी को देनी चाहिये। रोग की प्रथम और मध्यमावस्था में इसको देना चाहिये।

लांगलाद्य लौह—पैत्तिक, वातपैत्तिक, सान्निपातिक, रक्तप्रधान वातरक्त की प्रथम, मध्यमावस्था में दाह, स्वेद, प्यास, शूल, टूटने कीसी वेदना, धमनी-अङ्गुली, सन्धि में सङ्कोच, अङ्गवेदना, कम्प, कण्डू, क्लेद का आना, आदि उपद्रव अधिक मात्रा में हों तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। यह औषध रक्तप्रधान वातरक्त में बहुत उपयोगी है। वातरक्त में सम्पूर्ण शरीर पर क्षत होने पर इसको बरतना चाहिये। अनुपान—गिलोय का क्वाथ [आजानुस्फुटितं घोरं सर्वांगस्फुटितं तथा। तत् सर्वं नाशयत्याशु साध्यासाध्यञ्च शोणितम् ॥]।

योगसारामृत—पैत्तिक, वातपैत्तिक, सान्निपातिक वातरक्त की नूतन या मध्यमावस्था में रुग्णस्थान में दाह, कण्डू, शोथ, स्पर्श की असहिष्णुता, धमनी

और अङ्गुली में सङ्कोच, अङ्गवेदना, शूल, शीतद्वेष, शरीर में भारीपन, कम्प, स्पर्शशक्ति का अभाव, रुग्णस्थान में अपेक्षाकृत शीतलता, शोथ, शरीर में भार प्रतीति आदि लक्षण समस्त रूप में या दो-तीन दिखाई दें, तो यह औषध जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

विश्वेश्वर रस—श्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक या रक्तप्रधान वातरक्त में शरीर में भारीपन, रुग्णस्थान पर फोला, कण्डू, अल्पवेदना, स्पर्शशक्ति की कमी, प्रबलदाह, स्वेद, चुमचुमाहट, क्लेद का बहना-स्राव आदि दो-तीन या सम्पूर्ण लक्षणों में यह औषध लाभदायक है, अनुपान—गिलोय का क्वाथ।

वातरक्तान्तक रस—श्लैष्मिक वातरक्त की नूतन या मध्यमावस्था में भार की प्रतीति स्पर्शशक्ति की कमी, रुग्ण स्थान पर अपेक्षाकृत शीतलता, अल्प या अधिक वेदना, वातश्लैष्मिक वातरक्त में फोले के स्थान में रूक्षता, धमनी-अङ्गुली में संकुचन; शरीर में दर्द, शीत अनिच्छा, स्वेद आदि लक्षण होने पर यह औषध नीमपुष्प और नीम की छाल का चूर्ण समभाग मिश्रित करके ½ तोला; तथा घी मिलाकर रोगी को देना चाहिये। इससे वातरक्त के सब उपद्रव नष्ट होते हैं; हाथ-पांव आदि गल भी जायें तो भी इससे बहुत अधिक लाभ होता है [वातरक्तं महाघोरं गम्भीरं सर्वजञ्च यत्। सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्ययम् ॥]।

तालभस्म—रक्तप्रधान वातरक्त में हाथ-पैर और अंगुली गलित् प्राय हो अथवा क्षत, कण्डू, स्राव, अतिशय दाह; चिमचिम वेदना एवं पित्तश्लैष्मिक वातरक्त में प्यास, स्वेद, कण्डू, अल्पवेदना, शरीर में भारीपन आदि लक्षण होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इससे गलित्कुष्ठ, विस्फोटक, चर्मदल आदि रोगी आराम होते हैं। सान्निपातिक वातरक्त में इसका प्रयोग कर सकते हैं। अनुपान—नीम का पत्ता, पुष्प और छाल का चूर्ण गव्य घृत [विचर्चिकां चर्मदलं वातरक्तञ्च शोणितम्। रक्तपित्तं तथा शोथं गलत्कुष्टं विनाशयेत् ॥]

महातालेश्वर रस—रक्तप्रधान वातरक्त में कण्डू, हाथ-पैर और अंगुली से स्राव होना, अतिशय दाह, चिमचिम वेदना, आदि लक्षण हों अथवा पित्तश्लैष्मिक वातरक्त में प्यास, स्वेद आदि उपद्रव होने पर यह औषध नीम का पत्ता, छाल, पुष्प का चूर्ण और गव्य घृत के साथ रोगी को देनी चाहिये। गलितकुष्ठ, विस्फोटक, चर्मदल, शूल आदि रोगों में इस औषध को बरत सकते हैं। सान्नि-

पातिक वातरक्त में इसके प्रयोग से लाभ होता है, (हन्यात् कुष्ठानि सर्वाणि वात-रक्तमथापि वा ॥)।

गुडूची घृत—वातरक्त की पुरातनावस्था में कोष्ठबद्धता, हाथ-पैर आदि में संकोच, अंगों में दर्द, शरीर में कृशता आदि लक्षण हों एवं वातपित्ताश्रित वातरक्त की पुरानी अवस्था में यह घृत रोगी को सेवन कराना चाहिये; अनुपान—गरम दूध।

पंचतिक्त गुग्गुलु घृत—पैत्तिक वातरक्त की पुरातनावस्था में दाह, स्वेद रुग्ण स्थान में सुर्खी एवं वातपैत्तिक वातरक्त में रुग्ण स्थान में टूटने के समान दर्द, कृष्णवर्णता, धमनी-अंगुली का संकोच, दाह, स्वेद आदि लक्षण दीखने पर एवं सान्निपातिक वातरक्त में कफ स्थान से स्राव बहना, स्राव स्थान पर दाह, उष्णिमा, वेदना और रोगी को मलबन्ध आदि उपद्रव रहने पर यह घृत गरम दूध के साथ रोगी को देना चाहिये।

महातिक्त घृत—पैत्तिक, वातपैत्तिक वातरक्त की पुरातनावस्था में शरीर में कृशता, वायु के प्रकोप के कारण मलबन्ध, धमनी-अंगुली आदि में संकोच; प्रमेह, जीर्णज्वर आदि उपद्रव रहते हों; रोगी कृश एवं दुर्बल हो; तो उसके लिए यह औषध लाभदायक है। विसर्प, अम्लपित्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक आदि रोगों में यह घृत सेवन कराने से विशेष अवस्थाओं में विलक्षण लाभ होता है।

गुडूची तैल—वातिक, वातश्लैष्मिक वातरक्त की पुरातनावस्था में रुग्ण स्थान में रूक्षता, दाह, कालिमा, उष्णता, वेदना, संकुञ्चन, कम्प होने पर यह तैल रोगी के शरीर पर मलना चाहिये। रात्रि में नींद कम आने पर यह तैल रोगी के शिर पर मलना चाहिये।

बृहत् गुडूची तैल—पित्त की अधिकता के कारण दाह, मूर्च्छा, उष्णता आदि प्रबल हों तो इस तैल की मालिश अधिक लाभदायक है।

रुद्र तैल—रक्तप्रधान वातरक्त की पुरातनावस्था में, हाथ-पैर-अंगुली गलितप्राय हों, इनसे क्लेद बहता रहे, पैत्तिक, वातपैत्तिक वातरक्त में दाह, उष्णता, संकुञ्चन, रुग्ण स्थान पर वेदना, कालिमा आदि लक्षण दीखने पर यह तैल मलना चाहिये। कुष्टरोग में भी इससे लाभ होता है।

महारुद्र तैल—वातश्लैष्मिक वातरक्त की पुरातनावस्था में यह तैल बहुत लाभदायक है।

महापिण्ड तल—वातिक, श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक, सान्नि· पातिक वातरक्त के भिन्न-भिन्न लक्षण दीखने पर, विशेषतः धमनी और अंगुली आदि में संकोच, अंगों में वेदना, स्पर्शशक्ति का अभाव, भारबोध, दाह, उष्णता, कण्डू आदि लक्षण होने पर यह तैल बहुत लाभदायक है। वातरक्त की प्रबलावस्था में ग्रन्थि स्थान में दर्द होने पर इस तैल का उपयोग बहुत लाभदायक है। ग्रन्थिवात, आमवात, कुष्ठ में भी इस तैल का व्यवहार हो सकता है।

सारिवाद्य तैल—रक्तप्रधान वातरक्त में हाथ-पैर आदि बहुत गल जायें, चक्षु-कर्ण आदि इन्द्रियों में विकृति होने से स्राव-क्लेद बहता रहे: पैत्तिक वातरक्त में प्रबल अंगदाह, उष्णता रहने पर यह तैल मर्दन करना चाहिये। गलितकुष्ट और चर्मदल आदि रोगों मे यह तैल बहुत लाभदायक है।

वातरक्त में ज्वर चिकित्सा

बृहत् गुडूच्यादि क्वाथ—वातिक, पैत्तिक या वातपैत्तिक वातरक्त में रोगी को मलबन्ध, दाह, उष्णता, प्यास, हाथ-पैर में संकुचन आदि उपद्रव दीखने पर साथ में अल्प ज्वर होने से यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। ज्वर के साथ कास और श्वास होने पर इस क्वाथ के साथ पिप्पलीचूर्ण ३ मासा प्रक्षेप देकर पिलाना चाहिये।

घनचन्दनादि क्वाथ—पैत्तिक या पित्तश्लैष्मिक वातरक्त में दाह, उष्णता, प्यास आदि लक्षण हों, एवं साथ में अल्प ज्वर भी रहे, तो यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

वातरक्त में शरीर में वेदना की चिकित्सा

वातगजांकुश—वातिक या वातश्लैष्मिक वातरक्त में विविध लक्षण दीखने पर साथ में शरीर के अन्दर बहुत दर्द रहने पर यह औषध प्रतिदिन निर्गुण्डी के पत्र रस और मधु के साथ देनी चाहिये।

रास्नासप्तक—वातिक या वातश्लैष्मिक वातरक्त में नाना लक्षण दिखाई दें, साथ में मलबन्ध, शरीर में दर्द अत्यधिक रहने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

ऊरुस्तम्भ-चिकित्सा

धत्तूरादि लेप—ऊरुस्तम्भ रोग की प्रथमावस्था में वेदना प्रबल हो और रोगी चल-फिर न सके, तब यह लेप ऊरुभाग पर लगाना चाहिये, यह अपक्व रस-नाशक है।

रास्नादि क्वाथ—ऊरुस्तम्भ रोग की प्रथम या मध्यमावस्था में ऊरुदेश में अति वेदना, आलस्य, शरीर में भार-बोध आदि उपद्रव होने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। यह क्वाथ आमवात और उससे उत्पन्न वेदना-नाशक और अग्निवर्धक है।

महारास्नादि क्वाथ—ऊरुस्तम्भ रोग की मध्यमावस्था में ऊरुदेश में अतिशय वेदना हो एवं साथ में ज्वर, शरीर में दर्द, मलबन्ध हो, तब यह क्वाथ शुण्ठी चूर्ण के प्रक्षेप के साथ रोगी को प्रातः देना चाहिये।

योगराजगुग्गुलु—ऊरुस्तम्भ रोगी की प्रथम या मध्यमावस्था में ऊरुभाग में और शरीर में वेदना, कोष्ठबद्धता, वायु की अधिकता आदि उपद्रव होने पर यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। इससे मल का शोधन, वेदना का नाश और आमरस का पाचन होता है।

अमृतादि गुग्गुलु—ऊरुस्तम्भ रोग की पुरातनावस्था में वायु की अधिकता, कोष्ठ बद्धता, ऊरुभाग में कम या अधिक वेदना होने पर यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

गुंजाभद्र रस—ऊरुस्तम्भ रोग बहुत प्रबल हो और रोगी चल-फिर न सके, रोगी को मलबन्ध रहे यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान-हींग और सैन्धव लवण।

महासैन्धवादि तैल—ऊरुस्तम्भ रोग पुराना हो जाये एवं ऊरुदेश में वेदना, गमनागमन में क्लेश, वायु की प्रबलता होने पर यह तैल पान और मालिश में वरतना चाहिये।

ऊरुस्तम्भ में ज्वर-चिकित्सा

मृत्युञ्जय रस—ऊरुस्तम्भ रोग में ज्वर रहे एवं साथ में शरीर में वेदना, शीत एवं कम्प आदि लक्षण होने पर यह औषध आर्द्रक रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

हिंगुलेश्वर—ऊरुस्तम्भ रोग की प्रबलावस्था में रोगी को प्रबल ज्वर एवं साथ में शरीर में दर्द, अतिशय शीत लगता हो, तब यह औषध आर्द्रक रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

ऊरुस्तम्भ रोग में गात्रवेदना-चिकित्सा

रामबाण रस—ऊरुस्तम्भ रोग में ज्वर, ऊरुभाग में वेदना आदि उपद्रव, शरीर में वेदना रहने पर यह औषध आर्द्रक रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये। ज्वर न रहने पर केवल शरीर में दर्द रहने पर इससे अधिक लाभ होता है।

वातगजांकुश—ऊरुस्तम्भ रोग में ज्वर और ऊरुभाग में वेदना आदि लक्षणों के साथ शरीर में वेदना प्रबल हो तो इस औषध को निर्गुण्डी के पत्तों के रस और मधु अथवा आर्द्रक रस और मधु के साथ देना चाहिये।

शूलरोग-चिकित्सा

त्रिफलाद्य क्वाथ—पैत्तिकशूल की प्रथमावस्था में नाभि प्रदेश में वेदना प्रबल होने पर शरीर में दाह, मलबन्ध, भ्रम, मूर्च्छा आदि लक्षण रहने पर यह क्वाथ रोगी को ३ मासा मधु के साथ देना चाहिये।

पटोलादि क्वाथ—पैत्तिक या पित्तश्लैष्मिक शूलरोग की प्रथमावस्था में रोगी को ज्वर, दाह, वमन, मलबन्ध, रहने पर यह क्वाथ ३ मासा मधु के साथ देना चाहिये।

बिल्वादि क्वाथ—वातिक शूलरोग की प्रथमावस्था में हृदय, पार्श्व, पीठ आदि स्थानों में दर्द रहने पर इस क्वाथ में हींग ६ रत्ती और कूठ का चूर्ण १२ रत्ती मिलाकर रोगी को देना चाहिये।

दारुषट्कलेप—अन्न द्रवशूल, परिणामशूल, या अन्य किसी शूलरोग में वायु की अधिकता से उदर में वेदना, गुड़गुड़ शब्द रहने पर रोगी के उदर पर यह लेप लगाना चाहिये।

स्वल्प अग्निमुख चूर्ण—वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक, सान्निपातिक एवं वाताधिक परिणामशूल में मलबन्ध, उदर में गुड़गुड़ शब्द, वेदना, कटि, पार्श्व,

पीठ आदि में दर्द, आध्मान आदि लक्षण होने पर यह चूर्ण गरम जल के साथ रोगी को देना चाहिये।

शंखादि चूर्ण—सान्निपातिक शूलरोग में श्लेष्मा प्रबल होने पर अर्थात् अग्निमान्द्य, शिर मे भारीपन, मलबन्ध आदि रहने पर यह चूर्ण गरम जल के साथ रोगी को देना चाहिये।

सामुद्राद्य चूर्ण—अन्नद्रवशूल और परिणामशूल में वातश्लेष्मा का प्रकोप, उदर में गुड़ गुड़ ध्वनि, मल-मूत्र का अवरोध, चित्त में अस्थिरता, रहने पर यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

कृष्णाद्य चूर्ण—परिणामशूल में श्लेष्मा के प्रकोप के कारण वमनभाव, शरीर में भारीपन एवं अन्य उपद्रव रहने पर यह चूर्ण रोगी को गुड़ के साथ देना चहिये;

शम्बूकादि गुटिका—परिणामशूल की प्रबलावस्था में रोगी वेदना के कारण परेशान हो, तब यह औषध रोगी को देनी चाहिये। वातश्लैष्मिक परिणाम-शूल में नाना लक्षण दीखने पर इससे अच्छा लाभ होता है।

हिंग्वाद्य गुटिका—वातिक शूल रोग में मलबन्ध एवं कटि, पृष्ट, पार्श्व आदि स्थानों में वेदना रहने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—उष्ण जल।

हरीतकी खण्ड—वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक या अन्यान्य शूल में पित्त के प्रकोप के कारण दाह, वमन और मूर्च्छा हो और साथ में मलवद्धता भी रहे, तब यह औषध देनी चाहिये; यह औषध कोष्टशुद्धिकारक और पित्त-निःसारक है। प्रातः-गरम दूध से देना चाहिये।

भास्कर लवण—श्लैष्मिक शूल और परिणाम शूल में श्लेष्मा का प्रकोप होने पर साथ में अग्निमान्द्य, वमन आदि भी रहें, तब यह औषध गरम पानी के साथ प्रातः और सन्ध्याकाल में देनी चाहिये।

योगराज गुग्गुलु—वातिक या वातश्लैष्मिक शूल की नूतन या पुरानी अवस्था में हृदय, पार्श्व, पीठ आदि स्थानों में वेदना और मलबन्ध रहने पर यह औषध गरम जल से रोगी को देनी चाहिये।

चतुर्मुख रस—वातिक, वातपैत्तिक, सान्निपातिक, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल में वायु या वातपित्त की प्रबलता रहने पर अथवा रोगी को मलबन्ध, आध्मान,

कम्प, मूत्र में कृच्छ्रता—दाह आदि उपद्रव रहने पर यह औषध रोगी को त्रिफला के शीत कषाय और मधु के साथ देनी चाहिये।

वातचिन्तामणि—वातिक, वातपैत्तिक और सान्निपातिक शूल रोग में रोगी का शरीर अति कृश एवं दुर्बल हो तथा वायु के प्रकोप के कारण कम्प, आध्मान, मूर्च्छा और दाह आदि लक्षण होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। परिणाम शूल में वायु और पित्त का प्रकोप दीखता हो, तो यह औषध बरत सकते हैं। अनुपान—हरड़, बहेड़ा और आंवला का शीतकषाय और मधु।

महाशंख वटी—श्लैष्मिक, सान्निपातिक और वातपैत्तिक परिणामशूल में रोगी को अग्निमान्द्य, उदर में गुड़गुड़ ध्वनि, पाचनशक्ति की कमी, वमन आदि लक्षण होने पर गरम जल के साथ यह वटी भोजन से पूर्व या पीछे देनी चाहिये।

धात्री लौह—पैत्तिक, वातपैत्तिक, सान्निपातिक, पैत्तिक परिणामशूल में रोगी को दाह, वमन और उष्णता आदि लक्षण दीखने पर, विशेषतः परिणामशूल और अन्नद्रव शूल में वमन प्रबल होने पर एक-एक गोली घृत और मधु के साथ भोजन के आदि मध्य और अन्त में देनी चाहिये।

विद्याधराभ्र—पैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक, वातपैत्तिक, सान्निपातिक, श्लैष्मिक परिणामशूल और अन्नद्रवज शूल में नाभिप्रदेश, आमाशय और बस्तिस्थान में दर्द तथा वमन, दाह, कम्प, उष्णता आदि लक्षण दीखते हों, तो यह औषध रोगी को बकरी के दूध और चीनी के साथ देनी चाहिये।

त्रिफला लौह—पैत्तिक, वातपैत्तिक शूल रोगों में नाभिप्रदेश या वस्तिस्थान में वेदना एवं कम्प, दाह, मूर्च्छा, वमन आदि लक्षण होने पर यह औषध गाय के दूध के साथ रोगी को देनी चाहिये।

सप्तामृत लौह—पैत्तिक, वातपैत्तिक, परिणामशूल में वायु और पित्त के प्रकोप के कारण नाभिशूल या बस्तिप्रदेश में वेदना और साथ में वमन, दाह, मूर्च्छा और कम्प आदि लक्षण रहने पर यह औषध रोगी को दूध के साथ देनी चाहिये।

शूलहरण रस—श्लैष्मिकशूल और आमशूल में आमाशय में वेदना, वमन, शरीर में भारीपन, ग्लानि रहने पर यह औषध रोगी को जल के साथ देनी चाहिये। यकृत् शूल आदि में इसे बरत सकते हैं।

नृपतिवल्लभ—श्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और आमशूल में रोगी के आमाशय में वेदना हो, वमन वेग, शरीर में भारीपन, अग्निमान्द्य आदि लक्षण होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—हरीतकी चूर्ण और सैन्धव लवण या बकरी का दूध।

शूलवज्रिणी वटिका—श्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक, आमशूल, परिणामशूल, पित्तश्लेष्मा का प्रकोप हो; आमाशय, नाभि और हृदय स्थान के मध्यभाग में या कुक्षिभाग में शूल रहे; विशेष करके इसके साथ में अग्निमान्द्य, शरीर में भारीपन, जड़ता या वमन रहने पर यह औषध रोगी को बकरी के दूध के साथ देनी चाहिये।

सर्वांगसुन्दर रस—वातिक, वातश्लैष्मिक शूल में रोगी के हृदय, पार्श्व और पृष्ठदेश में वेदना दीखने पर एवं साथ में अन्य उपद्रव रहने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये; अनुपान—सोंठ, मरिच, पिप्पली, सौवर्चल लवण, हींग, करंजबीज चूर्ण और गरम जल।

तारामण्डूर—परिणामशूल में पित्त और कफ की प्रबलता रहे और साथ में अग्निमान्द्य, वमन, दाह, मूर्च्छा आदि उपद्रव विद्यमान रहने पर उदर, नाभि-प्रदेश, आमाशयादि में वेदना होने पर यह औषध रोगी को भोजन के आदि, मध्य और अन्त में मधु और घृत के साथ सेवन करानी चाहिये। जिन सब रोगियों में वमन की अधिकता रहे और अग्निमान्द्य रहे उनमें इससे विशेष लाभ होता है।

चतुःसममण्डूर—पैत्तिक या पित्तश्लैष्मिक परिणामशूल में रोगी के उदर में वेदना, वमन हो; अन्नद्रवशूल में अन्न के परिपाक के पीछे या परिपाक समय में उदर में प्रबल वेदना रहे; तो यह औषध भोजन के आदि, मध्य और अन्त में शीत जल के साथ रोगी को देना चाहिये [चतुःसमलौह भी इस अवस्था में देते हैं]।

नारिकेल खण्ड—वातिक, पैत्तिक शूल रोग में मलबद्धता, वमन, दाह, मूर्च्छा आदि लक्षण दीखने पर एवं रोगी को कृशता रहने पर यह औषध देनी चाहिये, इस से कोष्ठशुद्धि होती है।

बृहत् नारिकेल खण्ड—वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक एवं अम्लशूल में वमन, कोष्टबद्धता, मूर्च्छा, शरीर में अति ग्लानि रहती हो, तो यह औषध दूध के साथ रोगी को देनी चाहिये। यह पुष्टिजनक और कोष्टशुद्धिकारक है।

नारिकेल क्षार—वातिक परिणामशूल में उदर में गुड़गुड़ ध्वनि, असह्य वेदना, उदराध्मान, मलमूत्र का अवरोध आदि उपद्रव रहने पर यह औषध पिप्पली चूर्ण के साथ रोगी को देनी चाहिये।

लगजेन्द्र तैल—वातिक, पैत्तिक या वातपैत्तिक शूल रोग में रोगी को नींद न आये, उदर में असह्य वेदना रहने पर यह तैल उदर पर और सर्वांग पर मलना चाहिये।

बृहत् सैन्धवादि तैल—वातिक, वातश्लैष्मिक शूल रोग में कटि, पृष्ठ, पार्श्व आदि स्थानों में वेदना होने पर यह तैल उक्त स्थानों पर एवं रोग पुराना होने पर सारे शरीर पर मलना चाहिये।

महामाष तैल—वातिक, वातपैत्तिक शूल रोग में कटि, पृष्ठ, पार्श्व, नाभि, बस्ति में वेदना रहने पर मलना चाहिये।

शूल रोग में दाहचिकित्सा

गुडूच्यादि लौह—पैत्तिक शूल रोग में हाथ-पैर आदि में दाह रहता हो तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये। पित्तजनित अन्य रोगों में भी प्रबल दाह होने पर यह औषध दी जा सकती है; अनुपान—गिलोय का स्वरस।

गुडूची तैल—पैत्तिक शूल रोग में दाह प्रबल हो एवं साथ में नींद न आना, मूर्च्छा आदि उपद्रव रहते हों; तो यह तैल रोगी के शिर और शरीर पर मलना चाहिये।

शूल रोग में ज्वरचिकित्सा

द्राक्षादि क्वाथ—शूल रोग में अल्प ज्वर रहता हो तथा साथ में दाह, वमन, तृष्णा, मूर्च्छा आदि हो, तो यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

दार्व्यादि क्वाथ—शूल रोग में अल्प ज्वर, दाह, वमन, मूर्च्छा आदि रहने पर यह क्वाथ देना चाहिये।

चिन्तामणि रस—शूल रोग में ज्वर और इसके साथ में अग्निमान्द्य, कोष्ठ-बद्धता आदि उपद्रव रहने पर यह औषध आर्द्रक रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

उदावर्त्त और आनाह चिकित्सा

फलवर्त्ति—उदावर्त्त रोग में मलबन्ध रहने से इसके कारण कटि-पीठ आदि में वेदना, हृच्छूल और वस्तिशूल आदि भिन्न-भिन्न उपद्रव रहने पर रोगी के मलद्वार में यह वर्त्ति वरतनी चाहिये।

हिंग्वाद्यवर्त्ति—उदावर्त्त रोग में मलबन्ध एवं इसके कारण कटिशूल, वस्तिशूल, हृदय-वेदना, श्वास आदि रहने पर यह वर्त्ति मलद्वार में प्रयोग करनी चाहिये।

त्रिवृत्तादि गुटिका—उदावर्त्त और आनाह रोग में कोष्टवद्धता एवं त्रिक और पीठ आदि स्थानों में वेदना दीखने पर यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। इससे मलशुद्धि होने पर सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

वैश्वानर चूर्ण—उदावर्त्त और आनाह रोग में रोगी को मलबन्ध एवं कटि-पृष्ठ-पार्श्व-त्रिक भाग में वेदना होने पर यह औषध गरम जल के साथ देना चाहिये।

वैद्यनाथ वटी—उदावर्त्त और आनाह रोग में रोगी को मलबन्ध तथा कटि, पीठ आदि में वेदना रहने से यह औषध उष्ण जल के साथ देनी चाहिये (गुटी सिद्धफला चेयम्)।

नाराच रस—उदावर्त्त और आनाह रोग में मलबन्ध रहने पर इसके कारण भिन्न भिन्न उपद्रव होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

बृहत् इच्छाभेदी रस—मलरोधजनित आनाह और उदावर्त्त रोग में कोष्ठ क्रूर होने पर यह औषध जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

उदावर्त्तरोगमें ज्वरचिकित्सा

चतुर्दशांग क्वाथ—उदावर्त्त रोग में अल्पज्वर एवं इसके साथ में मलबन्ध एवं कटि-पीठ आदि में वेदना रहने पर इस क्वाथ में आधा तोला त्रिवृत्त चूर्ण मिलाकर रोगीको सेवन कराना चाहिये।

दशमूल क्वाथ—उदावर्त्त रोग में मलबन्ध, कटि-पीठ में दर्द, शिर में भारीपन, अल्पज्वर आदि उपद्रव होने पर इस क्वाथ में अमलतास का गूदा १ तोला मिलाकर पिलाना चाहिये।

उदावर्त्तरोग में वेदना-चिकित्सा

रास्नासप्तक—उदावर्त्त रोग की मध्यमावस्था में कोष्ठबद्धता एवं इसके कारण कटि-पृष्ठ-पार्श्व-त्रिक में वेदना रहने पर इस क्वाथ में आधा तोला एरण्ड तैल मिलाकर रोगी को पीने के लिये देना चाहिये।

आमवातारि गुटिका—उदावर्त्त रोग की मध्यमें या पुरातनावस्था में कटि, पीठ और त्रिक स्थानों में वेदना प्रबल हो जाये, तब यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

योगराज गुग्गुलु—उदावर्त्त रोग या आनाह की मध्य या पुरातनावस्था में मलबन्ध और इसके साथ कटि-पृष्ठ-त्रिक में, शिरमें वेदना रहने पर गरम जल के साथ यह औषध रोगी को प्रातःकाल में देनी चाहिये।

गुल्मरोग-चिकित्सा

तिलादि लेप—श्लैष्मिक गुल्मरोगी का गुल्म उठा हुआ और कठिन हों, साथ में ज्वर, अवसन्नता, कास आदि उपद्रव भी हों, तब यह लेप गुल्म के ऊपर लगाना चाहिये एवं लोहपात्र गरम करके उसके ऊपर स्वेद देना चाहिये। इसके द्वारा गुल्म की वेदना और काठिन्य कम होता है (तिल, अलसी, एरण्डबीज, श्वेत सरसों इनको समभाग लेकर-पीसकर कांजी या जल से लगाये)।

स्वल्पाग्निमुख चूर्ण—वातिक, श्लैष्मिक या वातश्लैष्मिक गुल्मरोग में मलबन्ध, उदर में वायु का भरना, कटि, पीठ आदि स्थान में वेदना, गुल्म में उन्नति या काठिन्य, अग्निमान्द्य, शरीर में भार प्रतीत होने पर यह औषध गरम जल के साथ रोगी को प्रातः और सायंकाल देनी चाहिये।

हिंग्वाद्य चूर्ण—वातिक, वातश्लैष्मिक गुल्मरोग में रोगी को मलबन्ध, उदर में आध्मान, हृदय-पार्श्व और कुक्षि में वेदना, गुल्म में काठिन्य, अधोवायु की अप्रवृत्ति, दीखने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। वातज कास, हिक्का, प्लीहा और अर्श आदि रोगों में मलबन्ध या अन्य उपद्रव होने पर इसका व्यवहार करना चाहिये।

वचाद्य चूर्ण—वातिक, श्लैष्मिक और वातश्लैष्मिक गुल्मरोग में मलबन्ध, उदर में वायु भरना, कास, श्वास और अन्य उपद्रव होने पर रोगी को यह औषध

देनी चाहिये। पैत्तिकशूल, वेदना, ज्वर और गुल्म के पकने की सम्भावना होने पर इससे असाधारण लाभ होता है।

त्रिवृत्तादि चूर्ण—वातपैत्तिक गुल्मरोग में मलबन्ध, कटि-पीठ आदि में वेदना, ज्वर और प्यास आदि उपद्रव होने पर यह औषध गोमूत्र या गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। प्लीहोदर और अर्शरोग में इसको बरतना चाहिये।

लवंगादि चूर्ण—पैत्तिक या वातश्लैष्मिक गुल्म में दाह, ज्वर, मलबन्ध, अग्निमान्द्य, गुल्म में काठिन्य, उन्नति आदि उपद्रव दीखने पर यह औषध गरम जल के साथ देनी चाहिये। अर्श, आमवात एवं उदर रोग में इसको बरत सकते हैं।

वज्रक्षार—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक, पित्त-श्लैष्मिक या सान्निपातिक गुल्म में विविध लक्षण दीखने पर गुल्म में काठिन्य, उन्नति, अग्निमान्द्य, अजीर्णता, उदर में वायु का भरना एवं पैत्तिक गुल्म के पकने के समय नाना प्रकार का कष्ट दीखने पर यह औषध बहुत लाभदायक है। इससे शूल, अजीर्ण, उदर, अग्निमान्द्य, प्लीहा और उदावर्त्त रोग शीघ्र शान्त होते हैं। अनुपान—वातिक और वातश्लैष्मिक गुल्म में उष्ण जल, पैत्तिक और वातपैत्तिक गुल्म में गाय का घृत; श्लैष्मिक गुल्म में गोमूत्र; एवं सान्निपातिक गुल्म में कांजी।

कांकायन गुटिका—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और सान्निपातिक और रक्तगुल्म के भिन्न भिन्न लक्षण दीखने पर, विशेषतः गुल्म में काठिन्य, उन्नति, मलबन्ध, उदर में वायु भरना, अजीर्णता, अग्निमान्द्य या पैत्तिक गुल्म में पकता आदि लक्षणों में से कोई भी लक्षण होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। गुल्मरोग की यह श्रेष्ठ औषध है और सब अवस्थाओं में इसको बरत सकते हैं। अर्श, हृद्रोग, कृमि आदि रोगों में लाभकारी है। अनुपान—वातिक और वातश्लैष्मिक गुल्म में उष्ण जल या कांजी; पैत्तिक या वातपैत्तिक गुल्म में दूध, श्लैष्मिक गुल्म में गोमूत्र; सान्निपातिक गुल्म में त्रिफला जल, रक्तगुल्म में उष्ट्री दूध या उसके अभाव में गाय का दूध।

दन्ती हरीतकी—वातिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक गुल्मरोग में नाना लक्षण दीखने पर विशेषतः प्रबल मलबन्ध रहने से कटि, पृष्ठ, स्कन्ध आदि में वेदना होने पर यह औषध गरम जल से रोगी को देनी चाहिये। गुल्म रोग की प्रबलावस्था में ज्वर, अरुचि, वमन आदि लक्षण होने पर यह औषध दी जा सकती

प्रति दिन मल प्रवृत्ति हो, इसके लिये इसका उपयोग आवश्यक है। प्लीहा, ा, अर्श में भी अवस्थानुसार इसका प्रयोग किया जा सकता है।

गुल्मकालानल रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक गुल्म में नाना प्रकार के लक्षण दीखने पर विशेषतः में काठिन्य, कास, गुल्म में उन्नति, वमनप्रवृत्ति, ज्वर रहने पर यह औषध की के शीत कषाय के साथ देनी चाहिये। वातिक गुल्म में कुक्षि, स्कन्ध, में वेदना एवं अधोवायु की अप्रवृत्ति आदि लक्षण विद्यमान रहने पर यह त्र देनी चाहिये। गुल्मरोग की प्रथम, मध्य और पुरातन अवस्था में यह लाभदायक है।

बृहद् गुल्मकालानल रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक रक्तगुल्म में नाना प्रकार के लक्षण दीखने पर विशेषतः ज्वर, अग्निमान्द्य, अरुचि ये लक्षण देर से चालू रहते हों तब रोग की मध्य और पुरातन था में यह औषध जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

विद्याधर रस—श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक गुल्मरोग में ज्वर, शरीर में कृशता, न्ध और अन्य उपद्रव प्रबल होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। ल्मरोग की पुरातन अवस्था में ज्वर आदि उपद्रव रहने से विशेष लाभकारी अनुपान—गोमूत्र।

गुल्मशार्दूल रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक रक्तगुल्म में मलबन्ध, ान्द्य, उदर में वायु भरना, ज्वर, कास एवं हृदय–पार्श्व-कुक्षि आदि में वेदना अधोवायु की अप्रवृत्ति आदि लक्षण होने पर यह औषध आर्द्रक रस और जल के साथ देनी चाहिये। इससे प्रतिदिन दो–तीन बार मलप्रवृत्ति होकर कोमल हो जाता है। रक्तगुल्म में इस औषध के प्रयोग से बहुत अधिक ोता है। गुल्मरोग की सब अवस्थाओं में इसे बरत सकते हैं। प्लीहा, कामला, पाण्डु आदि रोगों में मलबन्ध रहने पर यह औषध रोगी को ाहिये।

ाणवल्लभ रस—सान्निपातिक गुल्म में और रक्तगुल्म में मलबन्ध, गुल्म ान्य एवं गुल्म के बढ़ने के कारण जाल की भांति सिरासमूह फैला हो, ाल जाये, तब इस औषध को जल के साथ रोगी को देना चाहिये।

त्र्युषणाद्य घृत—वातिक गुल्मरोग को पुरातन अवस्था में अधिकांश उपद्रव शान्त हो जायें, परन्तु रोगी में मलबन्ध, गुल्म में काठिन्य, शरीर में कृशता रहने पर यह घृत रोगी को देना चाहिये।

त्रायमाणाद्य घृत—पैत्तिक, वातपैत्तिक और रक्तगुल्म की पुरानी अवस्था में जीर्णज्वर, शरीर में कृशता, मलबन्ध आदि रहने पर यह घृत गरम दूध के साथ रोगी को देना चाहिये। हृदय रोग, कामला, और कुष्ठ रोग की उत्तम औषध है। अनुपान—गरम दूध।

त्र्युषणाद्य घृत—वातिक गुल्मरोग की पुरातन अवस्था में मलबन्ध, हृदय-पार्श्व आदि स्थानों में वेदना, अरुचि आदि दीखने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। जीर्णज्वर, कास, श्वास आदि रोगों की पुरानी अवस्था में इसका प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—गरम दूध।

धात्रीषट्पलक घृत—पैत्तिक या वातपैत्तिक गुल्मरोग की पुरातन अवस्था में रोगी के शरीर में कृशता, दाह, मलबन्ध आदि रहने पर एवं रक्तगुल्म में क्षत अवस्था शान्त हो जाने पर रोगी को यह घृत देना चाहिये। अनुपान-गरम दूध।

गुल्मरोग में वेदना-चिकित्सा

वैश्वानर चूर्ण—वातिक या वातश्लैष्मिक गुल्मरोग में मलबन्ध एवं साथ में हृदय-पार्श्व-कटि में वेदना एवं अधोवायु की अप्रवृत्ति होने पर गरम जल के साथ यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

अलम्बूषाद्य चूर्ण—गुल्मरोग में कटि पीठ-पार्श्व-हृदय आदि स्थानों में वेदना दीखने पर और यह वेदना प्रबल हो, तब यह चूर्ण गरम जल के साथ रोगी को देना चाहिये।

गुल्मरोग में ज्वर-चिकित्सा

जयावटी—गुल्मरोग की नूतन या मध्यावस्था में ज्वर प्रबल हो जाये, तब इस औषध की एक गोली पुराने गुड़ और गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। मलबन्ध होने पर आर्द्रक रस के साथ देनी चाहिये [इस औषध को बनाते समय जयन्ती चूर्ण अन्य सब द्रव्यों के समान रखना चाहिये]।

ज्वरारि अभ्र—गुल्म रोग की नूतन या मध्यावस्था में ज्वर होने पर एवं

साथ में वातकफ का प्रकोप दीखने से, यह औषध आर्द्रक रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

गुल्मरोग में शूल-चिकित्सा

शूलहरण योग—वातिक, वातपैत्तिक या वातश्लैष्मिक गुल्म रोग में समय समय पर और गुल्म में वेदना होने पर यह औषध गरम दूध के साथ रोगी को देनी चाहिये।

चतुःसम लौह—पित्ताश्रित या वातपित्ताश्रित गुल्म की नूतन या पुरातनावस्था में प्रबल वेदना दीखने पर यह औषध रोगी को घृत और मधु के साथ देनी चाहिये (हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च सामवातं कटिग्रहम्। गुल्मशूलं शिरःशूलं योगेनानेन नाशयेत् ॥)।

गुल्मरोग में मलबन्ध और आध्मान-चिकित्सा

स्वल्पाग्निमुख चूर्ण—गुल्मरोग में मलवन्ध, अधोवायु की अप्रवृत्ति, अग्निमान्द्य रहने पर यह औषध गरम जल के साथ रोगी को प्रातः देनी चाहिये।

हिंग्वाष्टक चूर्ण—गुल्म रोग में मलवन्ध होने से अधोवायु की अप्रवृत्ति, उदराध्मान आदि होने पर यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

हृद्रोग-चिकित्सा

विडंगादि योग—कृमिजनित हृदयरोग में वमन का वेग, हृदय में असह्य वेदना, अरुचि और मुख में थूक भरकर आये; तब यह औषध रोगी को प्रातः और अपराह्न में गोमूत्र के साथ देनी चाहिये।

हृच्छूलान्तक योग-वातिक हृदयरोग में हृदय के अन्दर असह्य वेदना रहने पर और यह वेदना वक्षःस्थल और पृष्ठभाग में सम्पूर्ण फैल जाती हो; रोगी को यह औषध गव्य घृत के साथ देनी चाहिये (शृंगभस्म १ रत्ती से दो-तीन रत्ती तक दें)।

श्रीपर्ण्यादि क्वाथ—पैत्तिक हृदयरोग में हृदय के अन्दर ग्लानि, तृष्णा, दाह, कण्ठ देशसे धुंवा-सा निकलता प्रतीत हो, मूर्च्छा, उष्णिमा, मुखशोष आदि लक्षण होने पर इस क्वाथ में मदनफल का चूर्ण, चीनी और मधु मिलाकर देना चाहिये। इससे वमन होने पर वेदना कम होती है।

पुष्करादि चूर्ण—वातज हृदयरोग में हृदय में असह्य वेदना हो और वेदना धीरे-धीरे बढ़कर सारी छाती में फैल जाये; तब यह औषध दूध, कांजी या गव्य घृत और सैन्धव लवण के साथ देनी चाहिये।

अर्जुनादि क्षीर—पैत्तिक हृदयरोग में वक्षःस्थल में दाह, तृष्णा, अग्नि की जलन हृदय में ग्लानि, मूर्च्छा आदि दीखने पर यह दूध रोगी को देना चाहिये।

एलादि चूर्ण—श्लैष्मिक हृदयरोग में भार प्रतीति; मुख से कफस्राव, अरुचि, जड़ता, अग्निमान्द्य आदि लक्षण होने पर यह औषध घृत के साथ रोगी को चटानी चाहिये।

ककुभाद्य चूर्ण—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक वा सान्निपातिक हृदयरोग में जो भी लक्षण हों, विशेषतः हृदयमें शूल, भार प्रतीति, ग्लानि, अग्निमान्द्य आदि रहने पर यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

हृदयार्णव रस—पैत्तिक हृदयरोग में हृदय में भारीपन, हृदय में वेदना, अग्निमान्द्य आदि रहने पर रोग की मध्य या पुरानी अवस्था में यह औषध मकोयफल, आमलकी, बहेड़ा और हरड़ इनके क्वाथ के साथ रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—अर्क मकोय पर्याप्त देना चाहिये (काकमाची फलं कर्ष त्रिफला-फलसंयुतम्। द्वात्रिंशत् तोलकं तोयं क्वाथमष्टावशेषितम्॥ अनुपानं पिबेच्चात्र–)।

विश्वेश्वर रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक हृदयरोग की प्रथम और मध्यमावस्था में विविध लक्षण दीखने पर विशेषतः हृदयस्थान पर भार, असह्य वेदना, अग्निमान्द्य आदि रहने पर यह औषध देनी चाहिये। हृदय की क्रिया (रक्तसंचालन) में व्यतिक्रम होने से फेफड़ों में भारीपन रहने पर यह औषध देनी चाहिये। फुफ्फुस रोगों के लिये यह उत्कृष्ट औषध है,। अनुपान—सोंठ और भार्गी का क्वाथ।

प्रभाकर वटी—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक हृदयरोग में विविध लक्षण दीखने पर, विशेष करके साथ में दाह, मूर्च्छा, हृदय में यंत्रणा, तृष्णा, उष्णिमा, अरुचि, अग्निमान्द्य आदि उपद्रव रहने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। रोग की मध्य या पुरानी अवस्था में यह बहुत लाभदायक है। अनुपान—अर्जुनछाल का क्वाथ और मधु।

श्वदंष्ट्राद्य घृत—वातिक, पैत्तिक हृदयरोग की पुरातन अवस्था में हृदय में असह्य ज्वाला, शूल विद्धवत् वेदना, दाह, मूर्च्छा, गले में धूम की प्रतीति होने,

पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। इससे भिन्न रोग की पुरानी अवस्था में हृदय की क्रिया में परिवर्तन होने से श्वास, कास, आदि लक्षण हो जायें और रोगी को मेहदोष, मूत्रकृच्छ्रता आदि हों, तब यह घृत रोगी को देना चाहिये। कृश व्यक्ति के लिये बलवर्धक और पुष्टिकारक है। क्षतकास, श्वास, पैत्तिक कास और वातिक कास आदि में इसे बरता जा सकता है। अनुपान—उष्ण दूध।

अर्जुन घृत—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक हृदयरोग की पुरातन अवस्था में भिन्न भिन्न लक्षण दीखने पर यह घृत रोगी को सेवन कराना चाहिये। हृदयरोग में यह घृत बहुत लाभकारी है, सम्पूर्ण अवस्था में इसको दे सकते हैं। इससे सदा लाभ ही होता है। अनुपान—गरम दूध।

हृद्रोग में कास-चिकित्सा

वासावलेह—हृदयरोग की प्रबलावस्था में हृदय क्रिया के व्याघात से कास हो तो रोगी को यह औषध गरम दूध से देनी चाहिये।

अगस्तहरीतकी—हृदय रोग की प्रबलावस्था में श्वास प्रबल होने पर गरम जल से यह औषध देनी चाहिये।

वसन्ततिलक रस—हृदय रोग में रोग वृद्धि से हृदय में वेदना, साथ में कास, ज्वर होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—पिप्पली-चूर्ण और मधु।

हृद्रोग में श्वास-चिकित्सा

श्वासकुठार रस—हृदयरोग की प्रबलावस्था में हृदयकी क्रिया और श्वासक्रिया कम हो जाये; तो यह औषध कास की तरल अवस्था में रोगी को देनी चाहिये; अनुपान—घिसा बहेड़ा और मधु।

श्वास भैरवरस—हृदयरोग की प्रबलावस्थामें हृदय की क्रिया मन्द हो जाये, रोगी को कास, श्वास, ज्वर आदि रहने पर कासको तरलावस्था में रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—सोंठ और भार्गीमूल का क्वाथ।

हृद्रोग में ज्वर-चिकित्सा

ज्वरारि अभ्र—हृदयरोग की प्रबलावस्थामें श्वास, कास के साथ मध्य वेग से ज्वर भी रहने पर यह औषध आर्द्रक रस और मधु के साथ रोगीको देनी चाहिये।

बृहत् चूड़ामणि रस—वातिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक हृद्रोग में हृदय की क्रिया के बन्द होने से कास और ज्वर रहता हो तथा जो ज्वर प्रतिदिन अल्पवेग से आता हो; उसमें पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ यह औषध देनी चाहिये।

वृद्धि-आन्त्रवृद्धि और ब्रध्नरोग-चिकित्सा

पंचवल्कल लेप—पैत्तिक वा रक्तवृद्धि रोग में अण्डकोष फूल जाये; दाह एवं ज्वर रहता हो, तब यह लेप अण्डकोष पर लगाना चाहिये, परन्तु रात्रि में नहीं लगाना चाहिये [देखिये-आवश्यक सूचनाएं]।

सुरसादि लेप—मेदजवृद्धि रोग में अण्डकोष बहुत अधिक बढ़ जाये, इनमें वेदना होती हो, यह प्रलेप लगाना चाहिये। यह अति उत्तम औषध है [तुलसी, निर्गुण्डी, श्वेत पुनर्नवा, कट्फल, भार्गी, गन्धतृण, तालमखाना, कासमर्द, कुचला, इनको समभाग लेकर पीस लेना चाहिये।]।

रास्नादि क्वाथ—अन्त्रवृद्धि रोग में अण्डकोष बढ़ जायें एवं वायु से भरकर चमड़े कुप्पे के समान हो जायें, इसके कारण रोगी को ज्वर तथा अन्य लक्षण रहने पर इस क्वाथ में आधा तोला एरण्ड तैल मिलाकर रोगी को देना चाहिये।

हरीतक्यादि क्वाथ—ब्रध्न रोग में वंक्षण में गांठ फूल जाये एवं रोगी को ज्वर, कास आदि लक्षण रहने पर यह क्वाथ सेवन करने के लिये देना चाहिये। इससे मल साफ आता है और ज्वर कम होता है।

वातारि—आंत्रवृद्धि रोग में प्रथम या मध्यावस्था में अण्डकोष में वायु भर जाये, बढ़ जाये, इससे प्रबल वेदना होती हो, तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये। भेदक हैं। अनुपान—आर्द्रक रस और तिलतैल।

वृद्धिवाधिका वटी—आन्त्रवृद्धि रोग में अण्डकोष बढ़ जाये; श्लेष्मा और वात कफ की प्रबलता दीखती हो; तो यह औषध जल के साथ रोगी को देनी चाहिये।

आमवातारि वटिका—वृद्धि और आंत्रवृद्धि रोग में अण्डवृद्धि हो जाये, वायु भरी प्रतीत हो, साथ में मलवन्ध और ज्वर आदि रहने पर यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। यह कोष्टशोधक है।

सिंहनाद गुग्गुलु—वृद्धि और आंत्रवृद्धि रोग में अण्डकोष फूल जायें, इनमें वेदना हो, रोगी को मलवन्ध रहे, तब यह औषध उसको देनी चाहिये। अनुपान—गरम जल।

सैंन्धवादि तैल—मूत्रजवृद्धि रोग की पुरातन या मध्यावस्था में अण्डकोष बढ़ जायें, इनमें वेदना और अन्य लक्षण रहते हों, तब इस तैल की अनुवासन बस्ति प्रति सप्ताह देनी चाहिये। इससे कोष्टशुद्धि होकर वायु को अनुलोमन होने से सूजन और वेदना कम होती है। ब्रध्न रोग की पुरातनवस्था में यही विधि बरती जाती है। आनाह, अश्मरी और गुल्म रोग में इस तैल की बस्ति से बहुत लाभ होता है।

गन्धर्वहस्त तैल—आंत्रवृद्धि रोग की मध्य या पुरातनावस्था में विरेचक या अन्य ओषधियों के सेवन से लाभ न हो; अण्डकोष में सूजन और वायु का प्राबल्य रहने पर यह तैल गरम दूध के साथ रोगी पिलाना चाहिये। इससे कोष्टशुद्धि होकर वायु का अनुलोमन होने से सूजन कम होती है। थोड़ी मात्रा से मल का शोधन न हो तो मात्रा को बढ़ा देनी चाहिये।

ब्रध्न-वृद्धिरोग में सर्वाङ्गवेदना-चिकित्सा

वातगजाङ्कुश—वातज, पित्तज, श्लेष्मज या रक्तजवृद्धि रोग में या ब्रध्नरोग की प्रथम या मध्यमावस्था में रोगी के शरीर में वेदना प्रबल हो जाये तब एक वटी आर्द्रक रस और मधु के साथ देनी चाहिये। वेदना प्रबल होने पर **महावात गजाङ्कुश** देना चाहिये।

ब्रध्न और वृद्धिरोग में ज्वर-चिकित्सा

मृत्युञ्जय रस—वातज, पैत्तिक, श्लैष्मिक और मेदजवृद्धि या ब्रध्न रोग की प्रबलावस्था में रोगी को प्रबल ज्वर रहे, तब यह औषध आर्द्रक रस और मधु के साथ प्रातः एवं अवस्थाभेद से रात्रि में देनी चाहिये।

जया वटी—वातज, पैत्तिक, रक्तज और मूत्रजवृद्धि रोग में ज्वर प्रबल हो, तो इसकी एक गोली प्रातः एवं अवस्थाभेद से सायंकाल में पान के रस और मधु अथवा आर्द्रक रस और मधु के साथ देनी चाहिये।

बृहत् पिप्पल्यादि क्वाथ—वातिक, पैत्तिक और मेदजवृद्धि रोगी की प्रबलावस्था में ज्वर दीर्घकाल पर्यन्त स्थायी हो जाये; शरीर में दर्द रहे, तब यह क्वाथ रोगी को प्रातः देना चाहिये।

श्लीपदरोग-चिकित्सा

धत्तूरादि लेप—श्लैष्मिक श्लीपद कठिन, श्वेत या पाण्डु वर्ण दिखाई दे, यह प्रलेप रुग्ण स्थान पर प्रतिदिन लेप करना चाहिये। रोगी की प्रथम; मध्य और पुरातन अवस्था में लाभकारी है।

सिद्धार्थ प्रलेप—वातिक या श्लैष्मिक श्लीपद बढ़ जाये एवं उसमें वेदना या यन्त्रणा विद्यमान रहे, अथवा यह स्थान कठिन बोध हो, तो यह प्रलेप प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिये। रोगी को प्रथम और मध्यावस्था में यह बहुत उपकारी है।

शाखोटक क्वाथ—मांस और मेदोदोष से ग्रीवा, कूर्पर, जंघा आदि स्थानों में श्लीपद दिखाई देवे; तो इस क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर रोगी को सेवन कराना चाहिये।

महारास्नादि क्वाथ—वातिक श्लीपद बढ़ जाये एवं इसमें असह्य वेदना, यन्त्रणा, रोगी को ज्वर रहे; तब यह क्वाथ देना चाहिये। इसमें सोंठ का चूर्ण प्रक्षेप देकर देना चाहिये। इससे श्लेष्मिक श्लीपद अच्छा होता है।

कणादि चूर्ण—वातिक या श्लैष्मिक श्लीपद बढ़ जाने से वेदना, यन्त्रणा, भारबोध प्रतीत होने पर यह चूर्ण कांजी के साथ रोगी को देना चाहिये। मात्रा ३ रत्ती। (निहन्ति वल्लः सकाञ्जिकः श्लीपदमुग्रवेगम्।)।

आमवातारि गुटिका—वातिक या श्लैष्मिक श्लीपद बढ़ जाये, इससे वेदना, यन्त्रणा और अन्य उपद्रव दिखाई दें, विशेषतः रोगी को कोष्ठवद्धता रहने पर रोगी को यह औषध गरम जल के साथ देनी चाहिये। नूतन और पुरातन दोनों अवस्था में लाभदायक है।

श्लीपद गजकेशरी—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक श्लीपद बढ़ जाये, इसके कारण वेदना, दाह, असह्य पीड़ा और भारबोध होने पर यह औषध देनी चाहिये। यह कोष्ठशोधक और रोग की मध्य और पुरातनावस्था में लाभदायक है। प्लीहा रोग में रोगी को ज्वर एवं मलवन्ध रहने पर इसका प्रयोग किया जा सकता है। अनुपान—गरम जल।

नित्यानन्द रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, मेद एवं मांसगत श्लीपद रोग में श्लीपद में दाह, यन्त्रणा, भारबोध और स्राव होने पर यह औषध रोग की मध्य और पुरातनावस्था में देनी चाहिये। अर्बुद, वातरक्त आदि में इसका व्यवहार हो सकता है। अनुपान—जल।

सौरेश्वर घृत—वातिक, पैत्तिक, मांसाश्रित या मेदाश्रित श्लीपद बढ़ जाने से-वेदना, यन्त्रणा, दाह, स्राव, होने पर रोग की मध्य या पुरातनावस्था में यह घृत रोगी को देना चाहिये। यह घृत सब प्रकार के श्लीपद में, अपची, गण्डमाला, अर्बुद, आंत्रवृद्धि आदि रोगों की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में प्रयोग किया जा सकता है। अनुपान—दूध।

विडङ्गादि तैल—वातिक श्लीपद बढ़ जाये, पुराना हो अथवा वेदना या यन्त्रणा होती हो, तो यह तैल रुग्ण स्थान पर मलना चाहिये और गरम दूध के साथ पीने को देना चाहिये।

श्लीपदरोग में ज्वर-चिकित्सा

मृत्युञ्जय रस—वातिक या श्लैष्मिक श्लीपद के बढ़ जाने से ज्वर की वृद्धि होने पर यह रस प्रातः और सन्ध्याकाल में पान के रस और मधु के साथ देना चाहिये।

जया वटी—पैत्तिक श्लीपद बढ़ जाये, इसके कारण रोगी को प्रबल ज्वर रहे; तो यह औषध पान के रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

कार्श्य-स्थौल्य और मेदोरोग-चिकित्सा

त्रिफलादि क्वाथ—पित्तश्लेष्मा के प्रबल होने पर रोगी में मेदवृद्धि हो जाये, पित्तजनित स्वेद, दाह आदि रहने पर यह क्वाथ २ रत्ती लोहचूर्ण प्रक्षेप देकर पिलाना चाहिये।

त्र्यूषणाद्य चूर्ण—वात कफ रोगी में मेदवृद्धि हो जाये एवं मेदजनित प्रमेहादि रोग हो जायें, तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

विडङ्गादि चूर्ण—पित्त और कफ प्रबल व्यक्ति में मेद बढ़ जाने पर रोगी की प्रथम अवस्था में यह चूर्ण मधु के साथ ३ मासा मात्रा में रोगी को चाटना चाहिये।

अमृतादि गुग्गुलु—मेद और मांस के बढ़ने से शरीर अतिस्थूल हो जाने पर यह औषध मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये। यह भगन्दररोग तथा पिड़कारोग नाशक है।

वाड़वाग्नि लौह—श्लेष्म प्रधान मेदोरोग में अथवा मेद और मांस के बढ़ने से शरीर में स्थूलता आ जाये, तो यह औषध घृत और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये। शोथ और शूल रोग में कफ की प्रबलता में इसका व्यवहार करते हैं।

वाड़वाग्नि रस—मेद और मांस की वृद्धि होने से स्थूलता आ जाये तो यह औषध मधु के साथ देनी चाहिये। श्लेष्माप्रधान रोग में यह बहुत लाभदायक है।

लौहरसायन—मेद और मांस के बढ़ने से रोगी बहुत स्थूल हो जाये; अथवा पित्त एवं पित्तश्लेष्माधिक व्यक्ति में मेद बहुत बढ़ जाये, एवं रोग पुरातन हो जाये, तब यह औषध दूध के साथ रोगी को देनी चाहिये। वातश्लेष्मजनित विविध रोग-कुष्ठ, मेह, ज्वर, कामला, पाण्डु, अर्श, भगन्दर, मूर्च्छा, आदि में अवस्थाभेद से इसका उपयोग होता है। इसमें एक विशेष गुण है, इसके सेवन से स्थूलता और मेदो रोग समान रूप में नष्ट होते हैं।

कार्श्यहर लौह—वात पित्त प्रधान व्यक्ति का शरीर भिन्न-भिन्न रोगों से कृश हो जाये, तब यह औषध देनी चाहिये। इसके सेवन से अग्नि बढ़ती है और पित्तजनित रोग नष्ट होता है। अनुपान—दूध; पित्तप्रधान रोग में—भृंगराज रस। [नास्त्यनेन समं लौहं सर्वरोगान्तकं मतम्। दीपने बलवर्णाग्निवृष्यदश्चोत्तमोत्तम्]।

अश्वगन्धा घृत—वायु के प्रकोप के कारण शरीर कृश हो जाये, अथवा शरीर में वातजन्य रोग देर तक बना रहे, तो यह घृत अपराह्न में दूध के साथ देना चाहिये। यह मांस और बलवर्द्धक तथा कोष्टशुद्धिकारक है।

बृहदश्वगन्धा घृत—वायु और पित्तश्लेष्मा प्रबल व्यक्ति का शरीर रोगों से अतिकृश और बलहीन हो जाये, तो यह घृत अपराह्न में गरम दूध के साथ रोगी को देना चाहिये। कास, श्वास, जीर्ण ज्वर आदि रोगों में शरीर अतिकृश हो जाये तब इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। यह घृत अतिशय बलवर्धक और इन्द्रिय शक्ति में स्थिरता उत्पन्न करता है।

अश्वगन्धा तैल—वायु और वायुपित्त प्रधान व्यक्ति में विविध रोगों से कृशता आ जाने पर इस तैल को शरीर पर मलना चाहिये। वातजन्य रोग में यह तैल बहुत लाभदायक है।

मेदोरोग में प्रमेह-चिकित्सा

विडङ्गादि लौह—मेदो रोग की प्रबलावस्था में रोगी को बहुमूत्र, मेदोरोग और अग्निमान्द्य विद्यमान होने पर यह औषध दूध के साथ रोगी को देनी चाहिये।

त्र्यूषणाद्य लौह—मेद प्रधान रोगी को बहुमूत्र या प्रमेह रहने पर यह औषध देनी चाहिये। मेद एवं मांस प्रधान स्थौल्य रोग में प्रमेह रहने पर यह औषध लाभकारी है; अनुपान—घृत और मधु (स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं बलवर्णाग्निवर्धनम्। मेहघ्नं कुष्ठशमनं सर्वव्याधिहरं परम् ॥)।

शीतपित्त-उदर्द और कोठ-चिकित्सा

दूर्वादि लेप—शीतपित्त रोग में चक्राकार शोथ दिखाई दे, इसमें कण्डु और दाह रहे, तो यह औषध प्रलेप की भांति रोगी के शरीर पर लगानी चाहिये। उदर्द रोग में भी यह औषध बरती जा सकती है। परन्तु ज्वर प्रबल होने पर शीतपित्त या उदर्द में इसका व्यवहार नहीं करना चाहिये।

सिद्धार्थ लेप—शीतपित्त, उदर्द और कोठ में चक्राकार शोथ एवं कण्डु, दाह आदि होने पर यह औषध रोगी के शरीर पर मलनी चाहिये, किन्तु ज्वर होने पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। शीतपित्त रोग की यह उत्तम औषध है [सिद्धार्थरजनीकल्कं प्रपुन्नाडतिलैः सह। कटु तैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम्]।

आमलादि योग—शीतपित्त, उदर्द, कोठ रोग की प्रथमावस्था में मण्डलाकार शोथ, दाह आदि होने पर, यह औषध गाय के दूध के साथ रोगी को देनी चाहिये, ज्वर प्रबल होने पर इसका उपयोग निषेध है।

अमृतादि क्वाथ—शीतपित्त, उदर्द या कोठ की मध्य अथवा पुरातनावस्था में शरीर पर मण्डलाकार शोथ, दाह, कण्डु होने पर यह क्वाथ रोगी को प्रतिदिन सेवन करना चाहिये। यह कोष्ठ शोधक है; शीत पित्त आदि में ज्वर हो तो वह इससे जाता रहता है।

नवकार्षिक क्वाथ—शीतपित्त, उदर्द, कोठ की प्रथम या मध्यावस्था में मण्डलाकार चिह्न, कण्डु, आदि रहने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

हरिद्रा खण्ड—शीतपित्त, उदर्द, कोठ रोगों की मध्य या पुरातनावस्था में मण्डलाकार शोथ, दाह, कण्डु आदि होने पर यह औषध गरम दूध के साथ रोगी

को देनी चाहिये। खाज, विस्फोट, दद्रु, आदि रोगों में इसका व्यवहार हो सक है। इस औषध के खाने से शरीर का वर्ण बहुत उज्ज्वल हो जाता है।

बृहत् हरिद्रा खण्ड—रोग का बहुत पुराना हो जाने पर यह औषध ग दूध के साथ रोगी को देनी चाहिये। पामा, विचर्चिका, कृमि आदि में भी रोग मध्य या पुरानी अवस्था में इसको बरत सकते हैं।

आर्द्रक खण्ड—उदर्द, कोठ, स्पर्शवात आदि रोगों में मण्डलाकार चि दीखने पर एवं कण्डू आदि होने पर; रोग की मध्य या पुरानी अवस्था में य औषध उसे देनी चाहिये। स्पर्शवात में यह बहुत लाभदायक है। विशेष कर तम श्वास, वातिक गुल्म, उदावर्त्त, शोथ आदि में इसका व्यवहार करना चाहिये अनुपान—उष्ण जल।

श्लेष्मपित्तान्तक रस—शीतपित्त और कोठ रोग में पित्त के प्रकोप कारण हाथ, पैर आदि में दाह, वायु के प्रकोप से नींद का न आना; शरीर कृशता, उदर्दरोग में श्लेष्मा के प्रकोप से नानाविध लक्षण दीखते हों; तो यह औष परवल के रस और मधु अथवा पित्तपापड़े का रस और मधु के साथ रो को देनी चाहिये।

तिक्तक घृत—शीतपित्त, उदर्द, कोठ रोग की पुरातनावस्था में शरीर दाह, मण्डलाकार शोथ, वमन, आदि होने पर यह घृत गरम दूध के सा अपराह्ण में रोगी को देना चाहिये। यह घृत इन समस्त अवस्थाओं बहुत लाभकारी है।

महातिक्त घृत—शीतपित्त, उदर्द, कोठरोग की पुरानी अवस्था में चक्र कार शोथ दाह, कण्डू, जीर्णज्वर आदि लक्ष होने पर गरम दूध के सा रोगी को देना चाहिये। शीतपित्तादि रोग की यह घृत बहुत लाभप्रद है विसर्प, विस्फोट, क्षय और हृद्रोग आदि रोगों की भिन्न-भिन्न अवस्था में इसक व्यवहार हो सकता है।

गुडूची तैल—शीतपित्त, उदर्द, कोठ रोग में चक्राकार शोथ, कण्डू, दा होने पर रोग की पुरातनावस्था में यह तैल रोगी के शरीर पर मालना चाहिये नींद न आने पर शिर पर यह तैल मलकर स्नान कराना चाहिये। स्पर्शवात वायु और पित्त जनित भिन्न भिन्न लक्षणों में यह तैल उपयोगी है।

शीतपित्त-उदर्द-कोठरोग में ज्वर-चिकित्सा

जयावटी—शीतपित्त, उदर्द कोठरोग में ज्वर प्रबल हो; साथ में दाह और कण्डू आदि उपद्रव भी रहते हों तो यह औषध पान के रस और मधु के साथ देनी चाहिये।

वैद्यनाथ वटी—शीतपित्त, उदर्द, कोठ रोग में ज्वर प्रबल रहने पर साथ में दाह, गात्रकण्डु, मलबन्ध आदि रहने पर यह औषध दिन में २ या ३ बार गरम जल के साथ देनी चाहिये। यह मृदु विरेचक है।

वातपित्तान्तक रस—शीतपित्त, उदर्द, कोठ रोग की पुरातनावस्था में रोगी को अल्प ज्वर रहता हो और साथ में पित्त जनित विविध उपद्रव रहने पर यह औषध रोगी को पान के रस और मधु के साथ अपराह्ण में देनी चाहिये।

शीतपित्त में वमन-चिकित्सा

आमलाद्य योग—शीतपित्त रोग की प्रथमावस्था में दाह, शरीर पर चकत्ते आदि लक्षण होने पर एवं साथ में वमन रहने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये [आंवला, किसमिस, चीनी, मधु इनमें प्रत्येक आठ तोला लेकर मर्दन करके ३२ तोला पानी में मिलाकर बरते, मात्रा ½ से १ तोला]।

वृषध्वज रस—शीतपित्त रोग की प्रबल अवस्था में ज्वर, दाह, चकत्ते हों और साथ में वमन भी हो, तब यह औषध शालपर्णी का रस और मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

गगनादि वटी—शीतपित्त, स्पर्शवात रोग में दाह, भ्रम, निद्राह्रास आदि पित्तवृद्धि के लक्षण दीखने पर, रोग की मध्य या पुरातनावस्था में घृत और मधु के साथ यह औषध देनी चाहिये। पित्ताश्रित वातरोग में अति उपकारी है।

उपदंश और फिरंग-चिकित्सा

दारुहरिद्रादि लेप—श्लैष्मिक उपदंश रोग में छाले—बड़े आकार के, श्वेत वर्ण, कण्डुयुक्त होने पर छालों से गाढ़ा स्राव हो, लिंग पर सूजन हो; इसमें क्षत स्थान को जयन्त्यादि क्वाथ से धोकर दिन में २ या ३ बार यह लेप लगाना चाहिये। रात्रि में इसे न बरतें।

रसाञ्जन लेप—रक्तज उपदंश में छाले लाल वर्ण या काले रंग के हों; स्राव निकलता हो; छालों में दाह होता हो, क्षत स्थान को निम्बादि क्वाथ या भृंगराज रस से धोकर दिन में दो-तीन बार यह लेप लगाना चाहिये। सब प्रकार के उपदंश में यह लेप उपयोगी है।

नरास्थि लेप—वातिक, पैत्तिक, रक्तज उपदंश में छाले भिन्न वर्ण के हों, इनमें वेदना, स्राव, ज्वाला आदि लक्षण रहते हों तब क्षत स्थान को नीम के पत्तों के क्वाथ या त्रिफला के क्वाथ से धोकर दिन में दो-तीन बार लेप करना चाहिये [मनुष्य के शिर की दग्ध अस्थि का चूर्ण करके क्षत पर प्रलेप देना चाहिये। यह उपदंश क्षत की उत्तम औषध है]।

जयन्त्यादि क्वाथ—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक और रक्तज उपदंश में छाले सब पक जायें, इस क्वाथ द्वारा धोकर लेप लगाना चाहिये।

निम्बादि क्वाथ—पैत्तिक वा रक्तज उपदंश में छाले पीले हों, स्राव निकलता हो; तो इस क्वाथ से क्षत स्थान धोकर प्रलेप लगाना चाहिये।

त्रिफला लेप—वातिक, पैत्तिक, रक्तज या श्लैष्मिक उपदंश में क्षत को त्रिफला या भृंगराज के रस से धोकर त्रिफला की अन्तर्धूम भस्म को मधु के साथ मिलाकर लगाना चाहिये [उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम्]।

पटोलादि क्वाथ—वातिक, पैत्तिक और सान्निपातिक या रक्तज उपदंश में विभिन्न वर्ण के छाले दीखने पर और साथमें असह्य वेदना, ज्वाला, क्लेद का आना, छाले सब पक जायें; तब इस क्वाथ में गुग्गुलु ३ मासा; त्रिफला चूर्ण ३ मासा मिलाकर पान कराना चाहिये। यह क्वाथ रक्त और कोष्ठ शुद्धिकारक है।

सारिवादि क्वाथ—वातिक, पैत्तिक, सान्निपातिक और रक्तज उपदंश एवं फिरंग रोग की प्रथमावस्था का क्षत एवं द्वितीयावस्था में सारे शरीर पर पिड़िकायें या स्थान विशेष में क्षत दीखने पर यह क्वाथ प्रतिदिन प्रातः रोगी को देना चाहिये। यह रक्त और कोष्ठ परिष्कारक है। इसके सेवन काल में मत्स्य और मांस वर्जित हैं।

अमृतादि क्वाथ—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक या रक्तज उपदंश में विभिन्न वर्ण के छाले उत्पन्न हो जायें या क्षत हो जायें, इनमें असह्य वेदना, यंत्रणा या क्षत के स्थान से क्लेद निकलता हो, या फिरंग रोग की द्वितीयावस्था में सम्पूर्ण शरीर में विभिन्न वर्ण की पिड़कायें हो जायें, तब यह

क्काथ रोगी को देना चाहिये। फिरंग रोग की प्रथम अवस्था में यह क्काथ बरतने से क्षत शीघ्र सूखता है और विशेषलाभ होता है, परन्तु फिरंग विषनष्ट नहीं होता।

वरादि गुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, रक्तज और साम्निपातिक उपदंश रोग में भिन्न भिन्न वर्ण के स्फोट उत्पन्न हो जायें अथवा क्षत से क्लेद निकलता हो; असह्य वेदना, यंत्रणा, ज्वरभाव उपस्थित हो; रोगी को मलबन्ध रहता हो; तथा फिरंगरोग की प्रथमावस्था में यह औषध प्रतिदिन प्रातः उष्ण जल के साथ देनी चाहिये। इसके सेवन से कोष्ठ शुद्धि होती है और फिरंग रोगका दोष दूर होता है।

अनन्ताद्यघृत—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, साम्निपातिक, रक्तज उपदंश रोग में रक्त की शुद्धि के लिये एवं फिरंगरोग की प्रथम, द्वितीय और तृतीय अवस्था में क्षत, स्फोट पिड़का कम हो जायें; या थोड़ी मात्रा में रह जायें; नासिका, विशेषतः मुख वा ओष्ठ आदि के क्षत पुराने हो जायें तो रोगी को यह औषध रक्तशोधन के लिये गरम दूध से देनी चाहिये। रक्तदोषजनित विविध रोग में यह औषध सेवन कराने से लाभ होता है। यह औषध पुष्टिकारक और बलवर्धक है।

फिरंगरोग में पारद-विधान

रस चूर्ण—फिरंग रोग की प्रथम, द्वितीय और तृतीय अवस्था के किसी भी लक्षण में इसका प्रयोग करना चाहिये। परन्तु फिरंगरोग में रक्तहीन, दुर्बल, क्षीणकाय व्यक्ति में अथवा गण्डमाला या यक्ष्मा रोगी को अथवा मद्यपानासक्त व्यक्ति में यह औषध नहीं देनी चाहिये। फिरंग रोग की तृतीयावस्था में जब अतिसार, ग्रहणी होने से रोगी बहुत निर्बल हो जाये, तब इस औषध को बहुत थोड़ी मात्रा में अफीम के साथ मिलाकर देना चाहिये। इससे अधिक मात्रा में लालास्राव न हो तथा रोगी निर्बल अधिक न हो जाये, इसका सदा ध्यान रखना चाहिये। शिशु, बालक और गर्भवती को नहीं देनी चाहिये। यह औषध विरेचक है; बहुत दिन देने से अधिक विरेचन होने पर इसमें योग्य मात्रा में अफीम मिला देनी चाहिये। प्राथमिक क्षत, द्वितीयावस्था में भी बना रहे; तो इसके प्रयोग से क्षत शीघ्र कोमल एवं शुष्क हो जाता है। यदि मसूड़े फूल जायें, लाला आये, दाँन्त ढीले पड़ जायें, तब इसको बन्द करके मृदु विरेचन दे देना चाहिये। स्वभावतः कोष्ठशुद्धि होती हो तो विरेचन देने की जरूरत नहीं। रस चूर्ण के साथ साथ स्वर्ण और लोह घटित औषध प्रयोग करना उत्तम है। इससे रोगी में

दुर्बलता नहीं आती और पारद के दोष नष्ट हो जाते हैं। फिरंग रोग की प्रथम, द्वितीय और तृतीय अवस्था में या पैतृक फिरंग रोग में सन्तान आक्रान्त हो जाये, स्त्रियों की गर्भावस्था में फिरंग रोग के लक्षण दीखने पर इसका व्यवहार करना उत्तम है।

मात्र—पूर्ण युवा के लिये ½ से १ रत्ती। १० वर्ष से १६ वर्ष की आयु तक ¼ से ½ रत्ती; ५ वर्ष से १० वर्ष के लिये ¼ रत्ती; ५ वर्ष तक ⅛ रत्ती। अनुपान—स्तनपायी शिशु के लिये—स्तनदूध और मधु; दूसरों के लिये दूध और मधु; रस चूर्ण के साथ अफीम ¼, ⅙ या ⅛ वां भाग मिलाना चाहिये।

भैरव रस—फिरंग रोग की प्रथमावस्था में प्राथमिक क्षत शुष्क हो जाये, तब फिरंग विषको नष्ट करने के लिये एवं द्वितीयावस्था में रोगी के शरीर पर पिड़कायें हों, एवं पिड़काओं से क्लेद निकलता रहे, ज्वर रहे; शरीर में दर्द रहने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। प्रतिदिन तीन वटी देकर चौथे दिन से एक एक गोली देनी चाहिये। इस प्रकार से १४ दिन रोगी को औषध देनी चाहिये। औषध के समय चीनी और अल्प घृत संयुक्त गरम भोजन देना चाहिये। जलपान और जलस्पर्श पूर्ण वर्ज्य है। प्यास लगने पर ऊख का रस या अनार का रस पीना चाहिये। शौचकार्य उष्ण जल से करके तुरन्त जल को सूखा देना चाहिये। धूप और अग्नि से बचना चाहिये। वर्षा या शीत ऋतु में इसका व्यवहार उत्तम है। औषध सेवन से मुख आ जाये तो मुखरोग की चिकित्सा करनी चाहिये। औषधसेवन काल में श्रम से बचना चाहिये। कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्यों से युक्त पान चवाना चाहिये। कफ का नाश हो और वायु एवं पित्त न बढ़ें वह उपाय करना चाहिये। लवण, अम्लद्रव्य, दिवानिद्रा, रात्रिजागरण, स्त्रियों का मुखदर्शन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार १४ दिन औषध सेवन करना चाहिये, और उष्ण जल से स्नान और जांगल मांस रस का आहार करना चाहिये।

रस शेखर—फिरंग रोग के प्राथमिक क्षत की अवस्था में या द्वितीयावस्था में सम्पूर्ण शरीर पर पिड़का वा क्षत होने पर नासिक-मुख में क्षत होने से वेदना हो या क्षत स्थान से स्वेद निकलता रहे, रक्त दूषित होने से यकृत् अत्यधिक पीड़ित हो, अग्निमान्द्य, पतला मल रहता हो, रोगी को प्रतिदिन सन्ध्या में एक वटी देनी चाहिये। इस औषध के सेवन काल में रोगी को स्नान और आहार में

बहुत सावधान रहना चाहिये। अम्लद्रव्य, दधि, मत्स्य, मांस आदि को छोड़ देना चाहिये। अनुपान—दूध।

उपदंश और फिरंग में व्रध्न-चिकित्सा

लाक्षादि लेप—उपदंश या फिरंग रोग की प्रथम या द्वितीयावस्था में गांठ सूज जाये तो यह लेप लगाना चाहिये (लाख, करंज बीज, सोंठ, देवदारु, गेरु और कुन्दरु, इनका चूर्ण कांजी में पीस कर बरतना चाहिये)।

हरीतक्यादि क्वाथ—उपदंश रोग या फिरंग रोग की प्रथम या द्वितीयावस्था में गांठ फूल जाये, इससे ज्वर, मलबन्ध आदि होने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

भूनिम्बादि क्वाथ—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक या रक्तज उपदंश या फिरंग रोग की प्रथम या द्वितीयावस्था में क्षत और पिड़का के कारण ज्वर होने पर यह क्वाथ देना चाहिये। इससे ज्वर नष्ट होता है, क्षत सूखता है, परन्तु विष नष्ट नहीं होता।

अमृतादि क्वाथ—उपदंश या फिरंग रोग की प्रथम या द्वितीयावस्था में क्षत या पिड़का होने से रोगी को ज्वर हो जाये तो यह क्वाथ देना चाहिये। यह व्रणरोपक, क्षत मांसशोधक है, परन्तु इससे रोग का विष नष्ट नहीं होता।

फिरङ्गरोग में आमवात-चिकित्सा

अमृतादि गुग्गुलु—फिरङ्ग रोग की द्वितीयावस्था में सर्वाङ्ग या स्थान-स्थान पर पिड़का या तृतीयावस्था में छाले या इसके कारण क्षत हो जायें, अथवा ये क्षतों के शुष्क होने पर इन स्थानों पर असह्य वेदना हो, तब यह औषध गरम जल के साथ रोगी को देनी चाहिये। इससे रक्तशोधन एवं सन्धिगत वेदना नष्ट होती है, परन्तु विष नष्ट नहीं होता। विष नष्ट करने के लिये १५ दिन पीछे रस चूर्ण देना आवश्यक है। कोष्ठशुद्धि का होना इसमें आवश्यक है,। इसलिये गुग्गुलु और रसचूर्ण देना चाहिये।

कैशोर गुग्गुलु—फिरङ्ग रोग की द्वितीयावस्था में शरीर में नानावर्ण की पिड़का एवं तृतीयावस्था में छाले या इनके कारण क्षत उत्पन्न हो जाये, पिड़का, छाले या क्षत न हों परन्तु ग्रन्थिस्थल सूजे हों, परन्तु वेदना न हो, तब यह औषध

गरम जल के साथ रोगी को देना चाहिये। अमृतादि गुग्गुलु की तरह, रसचूर्ण के साथ इसको प्रतिदिन एक समय देना चाहिये।

योगराज गुग्गुलु—फिरङ्ग रोग की द्वितीय या तृतीय अवस्था में सब लक्षण घट जाने पर और गांठ के स्थान पर वेदना और फूला दीख जाये तो यह औषध गरम जल के साथ अमृतादि गुग्गुल की भांति प्रतिदिन रसचूर्ण के साथ देनी चाहिये।

महापिण्ड तैल—फिरङ्ग रोग की दूसरी या तीसरी अवस्था में गात्र में पिड़का, छाले या इसके कारण क्षत हो जाये, सन्धिस्थान पर वेदना और छाला हो, तब यह तैल इन स्थानों पर दो या तीन बार लगाकर गरम जल से धो देना चाहिये।

फिरङ्गरोग में पिड़का और कुष्ठ-चिकित्सा

चालभोगरा तैल—फिरङ्ग रोग की तृतीयावस्था में कुष्ठ रोग के लक्षण दीखने पर एवं पैत्तिक फिरङ्ग रोग में सन्तानसन्तति में नानाप्रकार के चर्म्मरोग, कुष्टरोग होने पर यह तैल पान और मर्दन करने से बहुत लाभ होता है। इससे फिरङ्ग विष नष्ट हो सकता है। नियम से इसका पान और मर्दन करना चाहिये। मात्रा—५ से १० बूँद; दो समय देना चाहिये। अनुपान—गरम दूध।

बृहन्मरिचादि तैल—फिरङ्ग रोग की अवस्था में शरीर में पिड़का हो जाये या तृतीयावस्था में नाना प्रकार के चर्म रोग या कुष्ठ हो जाये; तब यह तैल सारे शरीर पर मलकर गरम जल से स्नान करना चाहिये। इसके उपयोग से रक्त-शुद्धि और त्वक्‌रोग नष्ट होते हैं।

हंसादि घृत—फिरङ्ग रोग की दूसरी या तीसरी अवस्था में शरीर के किसी भी भाग में संकुचन या जड़ता और शुष्कता होने से पक्षाघात की स्थिति हो जाये, तब यह घृत रुग्ण स्थान पर २ या ३ घण्टे मलना चाहिये। सन्धिस्थल सूजा या किसी स्थान पर जड़ता प्रतीत हो तो इस घृत की मालिश बहुत लाभप्रद है।

विषतिन्दुक तैल—फिरङ्ग रोग की द्वितीय या तृतीय अवस्था में शरीर के किसी अङ्ग में वेदना, जड़ता रहने पर यह तैल दो-तीन घण्टा मलकर गरम पानी से स्वेद देना चाहिये।

फिरङ्गरोग में यक्ष्मा, कास और हृद्रोग-चिकित्सा

पञ्चतिक्त घृत—फिरङ्ग रोग की तीसरी अवस्था में फेफड़े आक्रान्त हो जायें; यक्ष्मा के लक्षण दिखाई दें अर्थात् कास, स्वभङ्ग, श्वास और पार्श्ववेदना आदि उपस्थित हों; तो यह घृत रोगी को देना चाहिये। यह घृत वात, पित्त, क्षत-नाशक और रक्तशोधक है। रक्तशोधन के लिये इसको बरतना चाहिये। अनुपान—गरम दूध।

पञ्चतिक्तघृत गुग्गुलु—फिरङ्ग रोग की तीसरी अवस्था में फेफड़ा और हृदय पीड़ित हो जाये, कास और यक्ष्मा के लक्षण दीखते हों; तब यह घृत अच्छा लाभ करता है। पञ्चतिक्तघृत से इच्छित लाभ न होने पर इसको देना चाहिये। इससे नाना प्रकार के वातज, पित्तज रोग नष्ट होते हैं। अनुपान—गरम दूध।

फिरङ्गरोग में अतिसार-चिकित्सा

पीयूषवल्ली रस—फिरङ्ग रोग की दूसरी या तीसरी अवस्था में अतिसार या ग्रहणी रोग हो जाये, तो इसको मोथे के रस और मधु से देना चाहिये।

ग्रहणीशार्दूल रस—फिरङ्ग रोग की दूसरी या तीसरी अवस्था में अतिसार या ग्रहणी रोग होने पर रोगी को यह औषध मोथे का रस और मधु से देना चाहिये। इससे रक्तदुष्टि और फिरङ्ग विष कुछ नष्ट होता है।

फिरङ्गरोग में शिर की पीड़ा-मूर्च्छा-आक्षेप चिकित्सा

बृहत् छागलाद्य घृत—फिरङ्ग रोग में मूर्च्छा, आक्षेप, शिरोरोग होने पर यह घृत गरम दूध के साथ रोगी को देना चाहिये।

महाचैतस घृत—फिरङ्ग रोग में मूर्च्छा, आक्षेप, शिरोरोग होने पर यह घृत रोगी को गरम दूध के साथ देना चाहिये।

महालक्ष्मी विलास (नारदीय)—फिरङ्ग रोग की दूसरी या तीसरी अवस्था में यकृत अत्यधिक बढ़ा होने से मल पतला आये, शिर में दर्द और मूर्च्छा हो, तब घृत के स्थान पर यह औषध देनी चाहिये, क्योंकि इस अवस्था में घृत सह्य नहीं होता। अनुपान—पान का रस और मधु।

फिरङ्गरोग में वृद्धि-चिकित्सा

दन्ती घृत—फिरङ्ग रोग की प्रथम या द्वितीयावस्था में अण्डकोष बढ़ जायें;

तब यह घृत गरम दूध के साथ रोगी को देना चाहिये; रोग प्रारम्भ में ही इसका उपयोग करने से बहुत लाभ होता है।

शतपुष्पादि घृत—फिरङ्ग रोग की दूसरी और तीसरी अवस्था में अण्डकोष बढ़ जायें, तब इस घृत से बहुत लाभ होता है। अनुपान—उष्ण दूध।

गलगण्डादि रोग-चिकित्सा

गिरीकर्णिकादि योग—श्लैष्मिक गलगण्ड में कण्डू; बड़ा आकार एवं कफ के लक्षण अर्थात् शिर में भारीपन, मुख में मधुरता रहने पर यह औषध घृत के साथ रोगी को देनी चाहिये (अपराजिता मूल पत्थर पर घिसकर दो आना भर देना चाहिये)।

मण्डूर योग—वातिक गलगण्ड में सूई चुभने की दर्द हो, चारों ओर कृष्ण-वर्ण, शिराजाल से गलगण्ड व्याप्त रहे, वायु के लक्षण दीखते हों; तो यह औषध मधु के साथ रोगी को देनी चाहिये।

विकङ्कतादि लेप—श्लैष्मिक ग्रन्थिरोग में ग्रन्थिस्थल अति कठिन; अल्प-वेदनायुक्त, इसमें कण्डु होने पर यह लेप गाँठ पर लगाना चाहिये।

दन्त्यादि लेप—श्लैष्मिक ग्रन्थिस्थान, कठिन, स्वभाविक वर्णयुक्त, अल्प-वेदनायुक्त, अतिशय कण्डु होने पर यह लेप इसमें लगाना चाहिये। मेदज ग्रन्थि-रोग में स्थल स्निग्ध और बहुत बड़ा दिखाई दे; तब यह लेप लगायें। इस लेप से ग्रन्थि विदीर्ण हो जाती है।

शङ्खादि लेप—श्लैष्मिक अर्बुद स्वाभाविक वर्णयुक्त, अतिकठिन, अल्प-वेदना, अति कण्डुयुक्त होने पर यह लेप लगाना चाहिये। मांसज और अध्यर्बुद रोग में भी इसको बरत सकते हैं।

शिग्रुकादि लेप—श्लैष्मिक अर्बुद स्वाभाविक वर्णयुक्त एवं इसमें अतिकण्डु, अल्पवेदना आदि लक्षण होने पर यह लेप प्रयोग करना चाहिये।

गन्धकादि लेप—वातिक, श्लैष्मिक या मांसार्बुद के विविध लक्षण दीखने पर यह लेप अर्बुद पर लगाना चाहिये (गन्धक; मनःशिला, सोंठ; सीसक भस्म—समभाग लेकर इसमें छिपकली का रक्त मिलाकर लेप करना चाहिये)।

कांचनार गुग्गुलु—गलगण्ड, अपची, ग्रन्थि, अर्बुद रोग में वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक लक्षण प्रबल होने पर यह औषध देनी चाहिये। इससे कोष्ठशुद्धि होती है और अग्नि बढ़ती है। गलगण्डादि रोगों की प्रथम या मध्यावस्था में यह बरतना चाहिये। भगन्दर और व्रण में भी इसका व्यवहार होता है। अनुपान—गरम दूध; मुण्डी का क्वाथ; खदिर का क्वाथ; या हरीतकी क्वाथ।

पञ्चतिक्त घृतगुग्गुलु—गण्डमाला, पैत्तिक या रक्तज अर्बुद अथवा अपची रोग में नाना लक्षण दीखने पर तथा रोग के पुराना होने पर यह औषध अपराह्न में गरम दूध के साथ प्रतिदिन देनी चाहिये। इसके सेवन से दो-एक बार मल आता है।

तुम्बी तैल—वातिक और श्लैष्मिक गलगण्ड रोग पुराना हो जाये एवं गलगण्ड में अल्प वेदना रहने पर प्रतिदिन प्रातः थोडी मात्रा में इसका नस्य देना चाहिये।

शाखोटक तैल—ग्रीवा, स्कन्ध और गले के सिराजाल में गण्डमाला उत्पन्न हो जाये, देर से इसकी स्थिति बनी रहे, तब प्रतिदिन प्रातः इसका नस्य देना चाहिये।

निर्गुण्डी तैल—स्कन्ध, गला और ग्रीवा की शिराओं का आश्रय करके गण्डमाला उत्पन्न होने पर दीर्घकाल तक रहने पर प्रतिदिन प्रातः इसका नस्य देना चाहिये। गण्डमाला में शिर में वेदना या भार प्रतीत होने पर इससे नष्ट होता है।

अमृतादि तैल—वातिक गलगण्ड में प्रबल वेदना होने पर और रोग पुराना हो जाये, तब इस तैल को २० या ३० बूंद गरम दूध के साथ रोगी को देना चाहिये।

गुञ्जाद्य तैल—अपची रोग में गाँठे पक जायें, तब यह तैल गाँठों पर मलना चाहिये। इसके प्रयोग से पक्वता नष्ट होती है और पुनः ग्रन्थि इस स्थान पर उत्पन्न नहीं होती। पुरातन अवस्था में गाँठ पर मलने से गाँठ सर्वथा बैठ जाती है। तैल मर्दन करने के समय तैल में पिप्पली चूर्ण, मरिच चूर्ण, विट् लवण, सैन्धव, कांच और साम्भर तथा सौवर्चल लवण ये सब समान भाग में मिला लेने चाहियें। अर्बुद और नाडीव्रण में भी इसका उपयोग कर सकते हैं।

अपचीरोग में ज्वर-चिकित्सा

भूनिम्बादि क्वाथ—अपची रोग में अल्प ज्वर रहे और गण्डमाला रोग में गाँठे पक जायें, तब यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। इससे क्षत कम हो जाता है।

अमृतादि क्वाथ—अपची रोग में अल्प ज्वर और गाँठें जब पक जायें; तब यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

तिलादि लेप—वातिक, पैत्तिक या क्षतजन्य भगन्दर के व्रण में अति वेदना और अतिस्राव निकलने पर यह लेप लगाना चाहिये। व्रण होने से रक्त निकलता हो, तब इस लेप से बहुत अधिक लाभ होता है। व्रण में नाडी होने पर इसके प्रयोग से अच्छा लाभ मिलता है। उपदंश रोग में भी इसे बरत सकते हैं।

रसाञ्जनादि लेप—वातिक या पैत्तिक भगन्दर में सूक्ष्म नाली होने पर इसमें से क्लेद निकलता हो, तब इसमें यह लेप लगाना चाहिये। इससे भगन्दर का शोधन होता है।

त्रिवृत्तादि लेप—वातिक, पैत्तिक और सान्निपातिक भगन्दर में अतिशय क्लेद बाहर आता हो; या इसमें वेदना या दाह प्रतीत हो; यह प्रलेप व्रण पर लगाना चाहिये। इससे क्षतस्थान सूख जाता है।

अमृतादि क्वाथ—सब प्रकार के भगन्दर में व्रण से क्लेद आने पर, साथ में अल्प ज्वर, कास आदि लक्षण होने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

सप्तविंशतिक गुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक भगन्दर में रोगी के व्रण में वेदना, व्रण से क्लेद-पूयादि का निकलना, अल्पज्वर, कास आदि रहने पर, रोगी को मलबन्ध होने पर यह औषध मधु के साथ देनी चाहिये। इसके सेवन से वायु-पित्तादि का अनुलोमन होता है।

नवकार्षिक गुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, सान्निपातिक और क्षतज भगन्दर रोगी के व्रणसे क्लेद निकलता हो; व्रण में अतिवेदना, शरीर में दर्द; मलबन्ध; आदि लक्षण होने पर यह औषध गरम जलके साथ रोगी को देनी चाहिये। इसके सेवन से वायु और पित्त का अनुलोमन होता है।

भगन्दरहर रस—वातिक, पैत्तिक, सान्निपातिक और क्षतज भगन्दर रोग की मध्यावस्था में विविध लक्षण दीखने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान-मधु।

ताम्रयोग—वातिक, पैत्तिक, साग्निपातिक और क्षतज भगन्दर रोग में व्रण-क्षत पुराना हो जाये, तो यह औषध रोगी को घी और मधु में मिला कर देनी चाहिये।

पञ्चतिक्त घृतगुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, साग्निपातिक तथा क्षतज भगन्दर रोग में व्रण दीर्घ काल से चला आता हो; क्षत सूखता न हो, यह घृत रोगी को गरम दूध के साथ देना चाहिये। इस घृत से व्रण-नाडी-शुष्क और पूर्ण होती है; वायु और पित्त शान्त होते हैं; भगन्दर रोग की उत्तम औषध है।

सोमराजी तैल—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, साग्निपातिक और क्षतज भगन्दर पुराना हो जाये, क्षतस्थान सूखता न हो, तो यह तैल क्षतस्थान पर लगाना चाहिये। क्षतस्थान पर नाडी व्रण हो तो वह भी इस तैल से अच्छा हो जाता है।

प्रमेहरोग-चिकित्सा

त्रिफलादि कषाय—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मेहरोग की प्रथमावस्था में मूत्र में अविलता (गदलापन) और मात्रा में आधिक्य एवं मूत्र त्याग काल में दाह, पीड़ा आदि लक्षण होने पर यह औषध प्रतिदिन रोगी को प्रातःकाल देनी चाहिये।

न्यग्रोधादि चूर्ण—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मेहरोग में मूत्र में दाह-जलन; बार-बार मूत्र प्रवृत्ति, मूत्र का अधिक्य, आविलता, धातुस्राव आदि उपद्रव रहने पर यह औषध रोगी को मध्याह्न में देनी चाहिये। इस औषध के सेवन से प्रमेहजनित पिडका का बाहर आने का भय नहीं रहता। अनुपान-पाषण भेद के पत्ते का रस और हरिद्रा चूर्ण अथवा त्रिफला का जल।

कुशावलेह—वीस प्रकार के मेह, विषाक्त मेह; मूत्रकृच्छ्रता, मूत्राघात और अश्मरी रोग में मूत्र के अन्दर असह्य ज्वाला-दाह, जननेन्द्रिय या मूत्राशय में प्रदाह, बूंद-बूंद मूत्र का आना; रुक कर मूत्र आना; प्रस्राव के साथ रक्त-पूय का आना अथवा मूत्र की मात्रा का कम होना आदि उपद्रवों में यह औषध असाधारण लाभप्रद है। गनोरिया रोग में मूत्र प्रदाह को कम करने के लिये इससे उत्तम दूसरी औषध नहीं है। मेहरोग जनित वातिक-पैत्तिक शिरोरोग में इससे आश्चर्य लाभ होता है। मेह या गनोरिया जनित चक्षुरोग में आंख में कर्कराहट, दाह,

सुर्खी आदि उपद्रव होने पर इसके सेवन से स्वस्थता मिलती है। आर्द्रक रस के साथ देने से श्वास, नारियल के पानी के साथ देने से अम्लपित्त और शूलरोग, लाजा के पानी के साथ देने से हिक्का और वमि में असाधारण लाभ होता है। मधुमेह और अश्मरी रोग में भी इससे लाभ होता है। इससे बहुमूत्रजनित दाह और प्यास शान्त होती है। यह मूत्राशय शोधक और पैत्तिक लक्षणों वाले मेह रोग की अद्वितीय औषध है'। अनुपान—त्रिफला जल।

मेहकुलान्तक—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मेहरोग की प्रथमावस्था में मूत्र में दाह; धातुस्राव, मूत्र में गदलापन, विभिन्न वर्ण, मूत्राशय में दाह, पिपासा, मूत्रकृच्छ्रता, अग्निमान्द्य, शरीर में पाण्डुता और अरुचि होने पर यह औषध देनी चाहिये। मूत्रकृच्छ्रता, मूत्राघात और अश्मरी रोगों में उत्तम है। अनुपान—आमलकी रस या आमलकी क्वाथ या कुलत्थी का क्वाथ।

विडङ्गादि लौह—सहज एवं सुलभ औषधियों में यह उत्कृष्ट औषध है, सर्वदा व्यवहार करने योग्य एवं मेहरोग की प्रथमावस्था में विशेष लाभकारी है। अनुपान—हल्दी का रस और मधु।

शुक्रमातृका वटी—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मेह की प्रथम या द्वितीयावस्था में भिन्न भिन्न लक्षण, विशेषतः कोष्ठकाठिन्य, प्यास, दाह होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। मेह रोग में क्षुधा की कमी, ज्वर प्रतीति होने पर इससे विशेष लाभ होता है। दुर्बल शरीर में बलरक्षा के लिये, मूत्रकृच्छ्रता और अश्मरी रोग में इसका प्रयोग करते हैं। अनुपान-श्लैष्मिक मेह में—अनार का रस, वातिक और पैत्तिक मेह में बकरी का दूध।

बंगेश्वर—प्रमेह रोग की प्रथमावस्था में इसके प्रयोग से मूत्रदाह; धातुस्राव आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। अनुपान—मधु।

स्वर्णवङ्ग—वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक मेह की प्रथम और द्वितीयावस्था में रोगी के मेहदोष को दूर करने के लिये, बल-कान्ति, स्मृति-शक्ति, अग्निवृद्धि या साधारण स्वास्थ्य की उन्नति करने के लिये यह औषध बरती जाती है। इससे शुक्रमेह और विषाक्तमेह में लाभ होता है।

वङ्गाष्टक—वातिक एवं पैत्तिक मेहरोग की प्रथमावस्था में विशेष करके श्लैष्मिक रोग में अग्निमान्द्य, आमदोष, तथा पैत्तिक मेह में पतला मल या ज्वर की

प्रतीति होने पर यह औषध रोगी को सन्ध्याकाल में देनी चाहिये। अनुपान—आमलकी रस या हल्दी का रस और मधु। प्रबल बहुमूत्र में इसको बरतना चाहिये।

बृहत् बङ्गेश्वर रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मेह में शुक्रक्षरण, मूत्राधिक्य, मूत्र में गदलापन और अन्य रंग, मूत्रकृच्छ्रता, मूत्रदाह, मूत्राशय में दाह, शर्कराक्षरण, प्रमेहजनित पाण्डुता, धातुगत ज्वर, मूत्र में रक्त आना; ग्रहणी-आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि, क्षीणता, ओजक्षय या तेज क्षय आदि उपद्रवों में यह औषध देनी चाहिये। मधुमेह में क्षय के लक्षण दीखने पर इस औषध से क्षीण धातु का पोषण एवं कृश और निर्बल शरीर की पुष्टि होती है। सोमरोग और बहुमूत्ररोग में इससे आश्चर्य फल होता है। अनुपान-गाय का दूध और मधु बहुमूत्र में गूलर का रस और मधु, मेहरोग में ग्रहणी या अतिसार होने पर मोथे का रस या जीराचूर्ण और मधु।

अपूर्वमालतीवसन्त—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मेह में नाना प्रकार के लक्षण उपस्थित होने पर विशेष करके मधुमेह, मेहरोग में क्षय, जीर्ण ज्वर, कास होने पर यही औषध देनी चाहिये। यह बलवर्धक, धातुवर्धक और पुष्टिकारक है। अनुपान-गिलोय का रस और मधु।

वसन्तकुसुमाकर रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मेह में मूत्रदाह, पीड़ा, शुक्रक्षरण, शर्करा आना, मूत्र में ईक्षुरस के समान माधुर्य; मूत्र के नीचे श्वेत पदार्थ का बैठना, मूत्र में गदलापन, पिच्छिलता, मधुरता, श्वेतिमा, हरिद्रारंग, ज्वरप्रतीति, तृष्णा, दाह, अतिसार, रक्तहीनता, दुर्बलता, कृशता, शोथ, अग्निमान्द्य, क्षय के लक्षण, प्रमेह के कारण शोथ, विद्रधि, श्वास, रक्त का मूत्र में आना, निरन्तर मूत्रस्राव होना, मूत्रकी मात्रा अधिक होना आदि लक्षणों में यह औषध रोगी को देनी चाहिये। विषाक्त मेह रोग में विष को नष्ट करती है। मूत्र की मधुशर्करा को कम करके रस-रक्तादि धतुवों को पुष्ट करती है। इसके सेवन से जरा-वली-पलित आदि वृद्धावस्था के सब लक्षण नष्ट हो जाते हैं। अनुपान-घी, चीनी और मधु या गूलर का रस और मधु, पित्त प्रकृति के लिये त्रिफला का शीत क्वाथ।

सर्वेश्वर रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मेह की द्वितीय या तृतीयावस्था में शर्करा निकलती हो; मूत्र का रङ्ग हल्दी या अन्य रङ्ग का हो, मूत्रदाह; हस्तिमेह, शीतमेह; ईक्षुमेह, क्षौद्रमेह ये ही पीछे से मधुमेह में बदल जायें; इससे

मधु जाती की शर्करा निकलती हो; मूत्रकृच्छ्रता, मूत्रघात, अश्मरी, मेहजनित दुर्बलता, धातु या तेजक्षय आदि उपद्रव होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये; यह अति पुष्टिकारक है। अनुमान—आमलकी चूर्ण और मधु।

मेहमुद्गर वटिका—मेह रोग की प्रथम या द्वितीयावस्था में मूत्र के साथ शुक्रस्राव, मूत्र में लालवर्ण, मूत्र के नीचे श्वेत पदार्थका बैठना; दाह, पीड़ा आदि उपद्रव होने पर, विशेषकर मलबन्ध रहे; तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये। मेहरोग में अरुचि, मूत्रकृच्छ्रता, मूत्राघात; पिड़का; या मधुमेह रोग में रक्तहीनता; पाण्डुता, अरुचि, विद्रधि होने पर यह औषध प्रातःकाल देनी चाहिये। अनुपान—बकरी का दूध।

चन्द्रप्रभा गुटिका—मेह रोग में तक्र के समान या हल्दी के रङ्ग का मूत्र आये, मूत्र के नीचे श्वेत पदार्थ बैठे; मूत्र में दाह; मलबन्ध आदि रहने पर यह औषध देनी चाहिये। मेह या मधुमेह रोग में रोगी को कास, अरुचि, जीर्ण ज्वर, पाण्डुता, दाह, पिपासा, अग्निमान्द्य आदि रहने पर इसका प्रयोग करना चाहिये।

महावङ्गेश्वर रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मेह की किसी भी अवस्था में विशेष करके सोमरोग होने से मधुमेह के लक्षण दीखते हों; धातुक्षय के कारण रोगी के क्षीणकाय हो जाने पर सहसा मधुमेह के लक्षण दीखने पर यह औषध रस रक्तादि धातुवों के पोषण के लिये रोगी को देनी चाहिये। मूत्र में दाह, नाना वर्ण, मूत्रकृच्छ्रता, शुक्रनिर्गमन, मूत्राघात, अश्मरी, शर्करा का आना आदि उपद्रव इससे शान्त होते हैं। अनुपान—गाय का दूध और मधु। बृहत् वङ्गेश्वर और सोमनाथ के समान लाभप्रद है।

बृहत् सोमनाथ रस—मेह रोग की प्रथम या द्वितीयावस्था में वस्तिगत वायु के प्रकोप के कारण मूत्रकृच्छ्रता और पित्त के प्रकोप के कारण मूत्ररोध या जननेन्द्रिय में दाह, प्यास, मूत्र की अधिकता, सोमरोग या मूत्र में भिन्न-भिन्न रङ्ग, गदलापना, मूत्र का रुककर या दो धारा में आना, मधुमेहजनित क्षय, मधुशर्करा का आना, कास, अरुचि, अलसता, अवसाद, पाण्डुता, अग्निमान्द्य आदि होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरीरोग में बहुत लाभदायक है। अनुपान—वायु-पित्त प्रधान शरीर में त्रिफला जल और मधु; श्लेष्मप्रधान शरीर में आमलकी चूर्ण और मधु।

प्रमेहमिहिर तैल—वातिक, पैत्तिक मेहरोग की प्रथम, द्वितीय और तृतीयावस्था में तथा श्लैष्मिक मेहरोग की तृतीयवस्था में या मेहरोग मधुमेह में बदल जाये; तो मेहदोष की शान्ति के लिये यह तैल उदर एवं सर्वाङ्ग पर मलना चाहिये। पित्त के प्रकोप के कारण मेहरोग में हाथ-पैर में दाह; शरीर में दाह, प्रबल प्यास; मूत्ररोध, तालुशोष, बस्तिप्रदाह, जननेन्द्रियप्रदाह; वस्तिगत वायु के प्रकोप के कारण उदर में आध्मान, मूत्रकृच्छ्रता, मूत्रस्राव में दाह; पीड़ा; मलवन्ध, वमन, मृदुज्वर, भूख न लगना और मधुमेह के कारण धातुवों का क्षय होने से शरीर में कृशता हो जाये, तब रसरक्तादि धातुवों की वृद्धि एवं शरीर को पुष्टि के लिये यह तैल शरीर पर मलना चाहिये। इस तैल की मालिश सम्पूर्ण शरीर पर करना उत्तम है।

दाडिमाद्य घृत—मेह रोग की दूसरी या तीसरी अवस्था में मूत्रकृच्छ्रता, मूत्र में रुकावट, दाह, प्यास, मूखशोष, तालुशोष, रक्तहीनता आदि लक्षण दीखते हों, तब यह घृत रोगी को देना चाहिये। ज्वर एवं अतिसार होने पर वर्ज्य है। अनुपान—उष्ण दूध।

बस्तियोग—मेह रोग में अत्यधिक दाह; पीड़ा होने पर या जननेन्द्रिय में क्षत होने पर इस योग से उत्तरबस्ति देनी चाहिये। इस बस्ति से मेह की ज्वाला, विशेषत; मूत्रज्वाला पीड़ा और क्षत शान्त होता है। यह शीघ्र लाभदायक औषध है। गनोरिया रोग में व्यवहार होती है। यदि अण्डवृद्धि हो, तब इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। [शोधित तुत्थ भस्म को दही के पानी-मस्तु में भली प्रकार मिलाकर छान लें; मस्तु में तुत्थ का सामान्य रंग आ जाये, इतना ही मिलायें। इसी प्रकार त्रिफला क्वाथ या गूलर की छाल के क्वाथ में तुत्थ मिलाकर उत्तरवस्ति देनी चाहिये।]

मेहरोग में बहुमूत्र चिकित्सा

कालपूर्णचन्द्ररस—मेह रोग में मूत्राधिक्य होने पर अथवा मधुमेह रोग में मूत्र की मात्रा कम करने के लिये यह औषध रात्रि में देनी चाहिये। इसके प्रयोग से मूत्र का परिमाण बहुत जल्दी कम हो जाता है। यह औषध दिन में एक बार देनी चाहिये; प्रातः, सायं, मध्याह्न में दूसरी औषध देनी चाहिये। इस

औषध से मूत्ररोग और मूत्र की राशि कम होने पर इसकी मात्रा क्रमशः कम करते जाना चाहिये। पीछे से इसे बन्द कर देना चाहिये। अफीम-मिश्रित औषध देर तक नहीं देनी चाहिये। अनुपान—गूलर का चूर्ण और मधु अथवा केले के फूल का क्वाथ (लोह, अभ्र, वंग, रससिन्दूर प्रत्येक १ तोला, अफीम ३ माशा; अफीम को जल में मिलाकर उसको मिलाकर १ रत्ती की गोली बनायें)।

हेमनाथ रस—मेह रोग में मूत्राधिक्य होने पर अथवा मधुमेह रोग में मूत्र की मात्रा कम करने के लिये इसको वरतते हैं। इससे मूत्र की मात्रा कम होने के साथ साथ धातुस्राव या तार के समान शुक्रस्राव, शर्करा का आना; मूत्र की धारण शक्ति का अभाव; हाथ-पैर में दाह, मूत्रेन्द्रियदाह, लसीका मेह, प्रसाद मेह; शान्त होते हैं। यह बल, पुष्टि और शुक्रवर्धक है। अनुपान—केले का रस या गूलर का रस।

मेहरोग में दाहचिकित्सा

चन्दनादि क्वाथ—मेह में मूत्रकृच्छ्रता, मूत्राघात, अश्मरी आदि रोगों में पित्त के प्रकोप के कारण अत्यधिक दाह होता हो, तब यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये; इससे मेहजनित दाह, अतिसार, ज्वर नष्ट होते हैं।

कुशाद्यतैल—प्रमेहमें मूत्रकृच्छ्रता, मूत्राघात, अश्मरी रोग में पित्त के प्रकोप के कारण अत्यन्त दाह होता हो, तो यह तैल रोगी के सम्पूर्ण अंगों पर विशेषतः उदर पर मालिश करना चाहिये।

प्रमेह रोगमें तृष्णा और वमन-चिकित्सा

काश्मर्यादि पानीय—मेह, मधुमेह, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्रता, अश्मरी रोग में पित्त के प्रकोप के कारण बार-बार प्यास लगे एवं साथ में मन्द मन्द ज्वर, दाह, कास, कोष्ठकाठिन्य आदि उपद्रव रहते हों, तब जल के स्थान पर यह पानीय थोड़ी थोड़ी मात्रा में रोगी को पीने के लिये देना चाहिये। इससे मूत्र में द्राक्षाजातीय शर्करा का आना कम होता है। मेह में क्षयकास के लक्षण होने पर यह बहुत लाभदायक है।

तृणपञ्चमूलीय पानीय—मेह, मूत्रकृच्छ्रता, मूत्राघात, अश्मरी, मधुमेह रोग में अत्यधिक प्यास लगने पर जल के स्थान पर यह पानी देना चाहिये।

लाजोदक—मेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी आदि रोगों में मलबन्ध, वमन रहने पर यह पानी थोड़ी थोड़ी मात्रा में रोगी को देना चाहिये।

मेहरोग में अतिसार और ग्रहणी-चिकित्सा

बृहत् पूर्णचन्द्र रस—मेह, मधुमेहरोग में रोगी को दाह, हाथ-पैर में ज्वाला, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कटिशूल एवं साथ में आम मिश्रित पतला मल आता हो, शरीर अतिकृश, दुर्बल, वायु-पित्त प्रधान हों, यह औषध रोगी को देनी चाहिये, अनुपान-भर्जित जीरा चूर्ण और मधु।

महाराज नृपतिवल्लभ रस—मधुमेहरोग में प्रबल अतिसार या ग्रहणी रोग होने पर या बार-बार पतला, एवं आम मिश्रित मल आये, उदर में वेदना, कास-श्वास-मस्तक और पार्श्व में दर्द, कास में अत्यधिक रक्त या कफ निकलता हो; अरुचि-दाह आदि उपद्रव रहें, यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान-भर्जित जीरा चूर्ण और मधु।

मेह रोग में श्वास और क्षय-चिकित्सा

वसन्ततिलक रस—मधुमेह रोग में क्षय के लक्षण उपस्थित हो जायें, साथ में अल्पज्वर, कास, श्वास आदि उपद्रव रहने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इससे रक्तादि धातुवों की वृद्धि होकर शरीर में बल आता है। अनुपान—पिप्पली चूर्ण और मधु; या बकरी का दूध।

बृहत्कांचनाभ्र रस—मेहरोग में क्षय या श्वास के लक्षण हों; साथ में ज्वर, प्यास, दाह, अरुचि आदि रहें; यह औषध देनी चाहिये। रस-रक्तादि धातुवों को बढाने के लिये यह उत्तम है; अनुपान—बकरी का दूध।

मेहरोग में उदावर्त्त-चिकित्सा

हिंग्वादिवर्त्ति—मेहरोग में उदावर्त्त के लक्षण दीखने पर साथ में मलरोध कटिशूल, पृष्ठशूल, हृच्छूल, बस्तिशूल आदि उपद्रव होने पर यह वर्त्ति मलद्वार में बरतनी चाहिये।

चतुर्मुख रस—मेहरोग में रोगी को उदराध्मान, आमाशय, पक्वाशय और वस्तिभाग में फुलाव-सूजन, साथ में मल-मूत्ररोध होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इससे वायु-पित्तके भिन्न भिन्न विकार नष्ट होते हैं। अनुपान—चावलों का धोवन।

प्रमेह रोग में धातुदौर्बल्य-चिकित्सा

बृहत् अश्वगन्धाघृत—मेहरोग में रस-रक्तादि धातुओं के क्षय के कार क्षय रोग के लक्षण दिखाई दें; रोगी का शरीर अतिकृश एवं दुर्बल हो; उसक बल बढ़ाने के लिये यह घृत देना चाहिये। यह घृत जिस प्रकार कृशता को न करता है, उसी प्रकार मेह और वातनाशक है। मधुमेह की अवस्था में य अतिशय लाभकारी है; परन्तु अतिसार, शोथ, अग्निमान्द्य होने पर वर्ज्य अनुपान—गरम दूध।

अमृतप्राशघृत—मेहरोग में रस-रक्तादि धातुवों के कारण क्षयरोग लक्षण दीखने पर एवं इससे रोगी का शरीर अतिकृश और दुर्बल हो जाये, तो घृत के सेवन से चमत्कारी लाभ होता है। यह घृत बलकारक, पुष्टिकारक, मधुमेह एवं वातनाशक है; किन्तु अतिसार, शोथ, ज्वर में इसका प्रयोग न करना चाहिये; अनुपान—गरम दूध।

सोमराजी तैल—मेहरोग में क्षुद्र पिडका उत्पन्न हो जाये तो यह तैल र के शरीर पर रोगस्थान पर लगाना चाहिये।

सारिवादि क्वाथ—मेहरोग में क्षुद्र पिडका उत्पन्न हो जायें तो यह तैल के शरीर पर रोगस्थान पर लगाना चाहिये।

मुद्गपर्ण्यादि क्वाथ—मेहरोग में पिडका होने पर यह क्वाथ रोगी को के लिये देना उत्तम है।

श्यामाघृत (बृहत्)—मेह रोग में पिडका उत्पन्न होने पर यह घृत को देना चाहिये, इस घृत से पिडका नष्ट होती है, और साथ में मधुमेह, वात शुक्रक्षय, मूत्र में रक्त का आना, हृद्रोग, धातुक्षय, आदि उपद्रव शान्त होते अनुपान—उष्ण दूध।

गनोरिया या संक्रामक विषाक्त मेहरोग-चिकित्सा

मधुकादि क्वाथ—विषाक्त मेहरोग की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतु अवस्था में यह क्वाथ देना उत्तम है। इसमें चन्दन होने से चन्दन के तैल कार्य हो जाता है। जब तक मूत्र में निर्मलता, कटुरस न आ जाये तब तक क्वाथ देना चाहिये।

तृणपञ्चमूल क्वाथ—विषाक्त मेहरोग की दूसरी और तीसरी अवस्था में जननेन्द्रिय में अतिदाह, मूत्रकृच्छ्रता, मूत्राघात लक्षण होने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। इस क्वाथ में वस्त्र भिगो कर इन्द्रिय पर लपेट देना चाहिये। इससे दाह शीघ्र नष्ट होता है; प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरी में बहुत उपयोगी है।

प्रमेहचिन्तामणि—यह सब प्रकार के मेह रोगों में विशेषतः पैत्तिक मेहरोग में ज्वाला आदि को शान्त करने के लिये अमोघ औषध है। बहुमूत्र, सोमरोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात में उपकार करता है; पुष्टि और बल देता है। लिंगनाश और बस्तिदाह आदि लक्षणों में यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—पाषाण भेद के पत्ते का रस या हिमसागर पत्ते का रस और मधु; या तण्डुलोदक अथवा गिलोय का रस और मधु।

कुशावलेह—विषाक्त मेहरोग की प्रथम, द्वितीय, तृतीय या पुरातन अवस्था में जब कभी मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात के लक्षण विशेष कर मूत्रत्याग में दाह; मूत्र में न्यूनता, रुक कर मूत्र का आना, मूत्र में गदलापन आदि उपद्रव दिखाई दें; तब यह औषध रोगी को रात्रि में त्रिफलाजल के साथ देनी चाहिये।

प्रमेहमिहिर तैल—विषाक्त मेहरोग की दूसरी या तीसरी अवस्था में बस्तिदेश में अत्यधिक प्रदाह होने पर एवं ज्वर प्रतीति न हो, तब दाह शान्ति के लिये अधोनाभि प्रदेश पर एवं पुरातन अवस्था में सारे शरीर पर यह तैल मलना चाहिये।

बस्तियोग—विषाक्त मेहरोग की तृतीय या पुरातन अवस्था में अण्डकोष में वृद्धि न होने पर इस औषध में तूतिया भस्म मिलाकर उसके द्वारा बस्ति देना चाहिये। गनोरिया के क्षत एवं इससे उत्पन्न पूय-रक्तादि के स्राव को यह शीघ्र नष्ट करती है। तूतिया भस्म इतनी मिलानी चाहिये कि उसकी नीली झांई पानी में आ जाये, अधिक नहीं।

चन्दनादि चूर्ण—विषाक्त मेहरोग में लिंग में अतिशय दाह और क्षत हो जाने पर, इसके कारण मूत्रकृच्छ्र, लिंगहर्ष इनमें कोई लक्षण दीखता हो, तब इसका प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—त्रिफला जल।

सोमरोग चिकित्सा

कदली योग—सोमरोग के लक्षण हों या शुभ्रवर्ण गन्धहीन मूत्र बहुत मात्रा में आता हो, तो यह औषध प्रतिदिन रोगी को सायंकाल में देनी चाहिये (पक्का केला एक नग, मधु आधा तोला, चीनी ½ तोला, आंवले का रस १ तोला, गाय का दूध १ पाव इनको एक साथ मथकर सेवन करना चाहिये)।

भूमिकुष्माण्ड योग—सोम रोग में मूत्र बहुत मात्रा में आता हो; तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये (विदारी और शतावरी का रस प्रत्येक १ तोला; पक्का केला १ नग, गाय का दूध १ पाव मिलाकर दें)।

तारकेश्वर रस—सोमरोग में मूत्र बहुत अधिक आये, मूत्र का रंग श्वेत, स्वच्छ पानी के समान हो, रोगी को प्यास बहुत लगती हो, तो यह औषध प्रातः रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—गूलर का चूर्ण और मधु।

तालकेश्वर रस—बहुमूत्र में रोगी को मूत्राधिक्य होने पर एवं मूत्रदाह आदि लक्षण उपस्थित रहने पर यह औषध रोगी को प्रतिदिन प्रातः देनी चाहिये। अनुपान—गूलर का चूर्ण और मधु।

चन्द्रप्रभा वटिका—बहुमूत्र के लक्षण दीखने पर तथा तारकेश्वर आदि से लाभ न होने पर कोष्ठशुद्धि के लिये यह औषध देनी चाहिये। इससे मेहरोग शान्त होता है।

मेहमुद्गर रस—बहुमूत्र के लक्षण और कोष्ठकाठिन्य होने पर यह औषध रोगी को एक बार देनी चाहिये।

सोमनाथ रस—बहुमूत्र रोग में अत्यधिक मूत्र निर्गमन हो, प्यास, निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित रहें, तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान दूध और मधु।

सोमेश्वर रस—मूत्र की अधिकता, दुर्बलता, कोष्ठकाठिन्य, प्यास, अंगों में शिथिलता आदि लक्षण होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इससे मेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और पिड़का नष्ट होती हैं। अनुपान-घृत और मधु।

बृहत्पूर्णचन्द्र रस—सोमरोग में मूत्र की अधिकता, दुर्बलता, प्यास, मूत्रातिसार या मधुमेह हो जाने पर यह औषध देनी चाहिये। जिन अवस्थाओं में अग्निमान्द्य, पतला मल; आमसंयुक्त मल हो, उनमें यह औषध लाभदायक है;

बल और पुष्टिकारक है। अनुपान—गूलर का चूर्ण और मधु या पान का रस और मधु।

बृहत् वंगेश्वर रस—सोमरोग में अतिमूत्र आने पर या मूत्रातिसार अथवा मधुमेह की अवस्था उत्पन्न हो जाने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इससे मूत्र की मात्रा, प्यास; बलक्षय आदि कम होते हैं, शरीर में बल आता है। अनुपान—गूलर का चूर्ण और मधु।

वसन्तकुसमाकर रस—बहुमूत्र का प्रबल आक्रमण, नाना प्रकार के मेहरोग, मधुमेह; प्यास-दाह, तालुशोष, मुखशोष, ज्वर, क्षय और मूत्रातिसार को नष्ट करके शरीर में बल, पुष्टि, शक्ति देता है। शरीर का स्वास्थ्य सुधारने में सर्वोत्तम है। अनुपान—मधु।

कदल्यादि घृत—सोमरोग में या जिस रोग में मूत्रातिसार अथवा मधुमेह हो जाये; अथवा सम्भावना हो; उसमें यह घृत प्रातः रोगी को देना चाहिये। अनुपान—गरम दूध।

हेमनाथ रस—सोमरोग में मूत्रातिसार होने से अतिमूत्रस्राव, रोगी को प्यास, दाह, बलक्षय, मुखशोष, तालुशोष आदि उपद्रव रहने पर अन्य औषधियों से जब लाभ न हो; तब रोग और उपद्रवों की शान्ति के लिये यह औषध देनी चाहिये। यह सद्यः फलप्रद है। इसमें अफीम रहने से मूत्र की राशी कम होती है; इससे मलबन्ध होने की सम्भावना है। इसके लिये विरेचक औषध का प्रबन्ध करना चाहिये; अनुपान—गूलर का चूर्ण और मधु।

कालपूर्णचन्द्र रस—सोमरोग या मूत्रातिसार में जब अन्य औषधियों से इच्छित लाभ न हो, अधिक मूत्र के कारण रोगी दुर्बल, कृश; गमनागमन में अक्षम हो तब रोगी को यह औषध देनी चाहिये। इससे मूत्र का परिमाण घटता है; उपद्रव शान्त होते हैं। इससे पूर्ण लाभ न होने पर हेमनाथ रस देना चाहिये। इससे मलबन्ध होने लगे तब अन्य समय में चन्द्रप्रभा वटिका या अन्य विरेचक औषध देनी चाहिये। अनुपान—गूलर का चूर्ण और मधु।

मूत्रकृच्छ्ररोग-चिकित्सा

मूत्रकृच्छ्रान्तक क्षीर—पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र में लिंग, बस्तिदेश में वेदना और दाह होने पर अथवा वेदना और दाह के साथ पीला या लाल वर्ण का मूत्र आता हो, बार बार विच्छिन्न मूत्र आता हो, शल्यज मूत्रकृच्छ्र या अभिघात के कारण मूत्र के साथ रक्त आये; तो रोगी को यह क्षीर देना चाहिये।

गोक्षुरादि क्वाथ—श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र में मूत्राशय और लिंग में अवरोध, शोथ एवं मूत्र में पिच्छलता, मूत्र अल्प-अल्प आये, तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

बृहत्यादि क्वाथ—सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्र में; या वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र के लक्षण दीखने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

पाषाणभेदाद्य क्वाथ—अश्मरी और शर्कराजनित मूत्रकृच्छ्र होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

एलादि क्वाथ—सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र में शुक्राश्मरी रोग के लक्षण दीखने पर यह औषध रोगी को देने से बहुत लाभ होता है। यह सद्यः फलप्रद है।

अमृतादि क्वाथ—वातिक और शल्यज मूत्रकृच्छ्र में आक्षेप; मूत्राशय और लिंग में तीव्रवेदना एवं बार-बार थोड़ा मूत्र निकलने पर यह क्वाथ देना चाहिये।

फलवर्त्ति—पुरीषज मूत्रकृच्छ्र में पक्वाशय गत वायु के प्रकोप से बस्तिभाग फूलना और मलरोध हो; मल परिष्कार होने पर भी आध्मान रहने पर यह वर्त्ति मलद्वार में वर्तनी चाहिये।

नाराच चूर्ण—पुरीषज मूत्रकृच्छ्र में वायु के प्रकोप से कोष्टबद्धता, कोष्ट-काठिन्य होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—जल।

पथ्यादि चूर्ण—मूत्रकृच्छ्र रोगी को बार-बार अल्पस्राव, मूत्राशय और जननेन्द्रिय में वेदना, मूत्र में पीड़ा; सहसा मूत्र का रुकना आदि उपद्रव होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। मूत्राघात और अश्मरी रोग में यह लाभदायक है।

चिन्तामणि रस—पुरीषज, शुक्रज, वातज, पित्तज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण दीखने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इसके सेवन करने से वायु की अनुलोमना, कोष्टशुद्धि, पित्त का प्रशमन, बस्ति और जननेन्द्रिय का दाह नष्ट होता है और मूत्र सरलता से आता है। अन्यान्य मूत्रकृच्छ्र या मूत्रघात और

अश्मरी रोग में यह लाभदायक है। श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र रोग की प्रबलता होने पर इसको बरतना चाहिये। अनुपान—चावलों का धोवन त्रिफलाजल या पाषाण-भेद का रस और मधु।

चतुर्मुख रस—मूत्रकृच्छ्र रोगी को मलबन्ध या बार-बार थोड़े परिमाण में मूत्र आता हो, अथवा मूत्र के कारण दाह, बस्ति-जननेन्द्रिय में प्रदाह उपस्थित हो; तब यह औषध बहुत लाभदायक है। मूत्राघात और अश्मरी रोग में इसे बरत सकते हैं। मेहरोग में मूत्रकृच्छ्र या मलबन्ध होने पर इससे लाभ होता है। अनुपान—चावलों का धोवन या पाषाण भेद का रस और मधु।

योगेन्द्र रस—मूत्रकृच्छ्र के लक्षण उपस्थित होने पर जब अन्य औषध से लाभ न हो एवं स्थायी फललाभ न हो, रोगी दुर्बल या कृश शरीर का हो, तब बल और पुष्टि के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, अभिघातज, शुक्रज, अश्मरीज, शर्कराजनित मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात एवं अश्मरी रोग में अथवा मेहरोग में मूत्रकृच्छ्रता के लक्षण दीखने पर यह औषध अति लाभदायक है। अनुपान—त्रिफला जल या आंवले का हिमकषाय और मधु।

तारकेश्वर रस—मूत्रकृच्छ्र रोग में बार-बार अल्प मूत्र आता हो; साथ में दाह, पीड़ा होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इससे दाह, पीड़ा, मूत्र के साथ रक्त आना शीघ्र नष्ट होते हैं। अश्मरी रोग और मूत्राघात रोग में लाभदायक है। अनुपान—गूलर का चूर्ण और मधु।

वरुणाद्य लौह—सर्वदा काम में आने वाली उत्तम औषध है। मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी रोग में इसका व्यवहार होता है। मेहरोग में मूत्रकृच्छ्र के लक्षण दीखने पर इसका प्रयोग मूत्रकृच्छ्र और मेह दोनों शिकायतों को नष्ट करता है। यह औषध बल और पुष्टिदायक है। अनुपान—आंवले का शीतकषाय।

कुशावलेह—सदा काम में आनेवाली औषध है। मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरीरोग में सद्यः फलप्रद है। वातिक, पैत्तिक, शल्यज, अश्मरीज, शर्करा-जनित मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्र के साथ रक्त का आना, इनमें इससे बहुत लाभ होता है। दाह, पीड़ा शीघ्र शान्त होती है। मेहरोग में मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात के लक्षण दीखने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—त्रिफला जल।

त्रिकण्टकाद्यघृत—मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरी रोग की पुरातन अवस्था में यह घृत रोगी को देना चाहिये। अनुपान—उष्ण दूध।

उशीराद्य तैल—वातिक, पैत्तिक, शल्यज, शुक्रज, शर्कराज और अश्मरी-जनित मूत्रकृच्छ्र में थोड़ा थोड़ा मूत्र बार-बार आये; बस्ति और जननेन्द्रिय में दाह पीड़ा, मूत्राशय में आध्मान, मलबन्ध रहने पर यह तैल रोगी के सम्पूर्ण शरीर पर विशेषतः अधोनाभि पर मलना चाहिये। सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्र में कफ की प्रबलता होने पर, श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र में केवल उदर पर ही मलना चाहिये। सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्र में वायु या पित्त की अधिकता रहने पर शरीर पर मलने की व्यवस्था करनी चाहिये। यह मूत्राघात, अश्मरी और मेहरोग में हितकर फलप्रद है।[१]

मूत्राघात-चिकित्सा

दशमूल क्वाथ—वातबस्ति, बस्तिकुण्डल नामक मूत्राघात के लक्षण होने पर इसमें थोड़ा सा शिलाजीत, चीनी और यवक्षार का प्रक्षेप मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल देना चाहिये।

वरुणादि क्वाथ—वातबस्ति, मूत्रजठर, अष्ठीला, मूत्रसाद, मूत्रोत्संग, मूत्रग्रन्थि, मूत्रक्षय नामक मूत्राघात में एवं श्लेष्मप्रधान बस्तिकुण्डलिका रोग में वेदना के साथ थोड़ा-थोड़ा मूत्र आने पर यह औषध रोगी को पान करानी चाहिये।

बृहत् वरुणादि क्वाथ—उपरोक्त अवस्थाओं के सिवाय, उष्णवात और मूत्रग्रन्थि एवं पित्तप्रधान बस्ति कुण्डलिकारोग में पित्त के प्रकोपवश से इन्द्रिय या मूत्राशय में दाह होने पर और मूत्रमार्ग द्वारा रक्त निकलने पर यह औषध रोगी को प्रतिदिन प्रातः देनी चाहिये। मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोग में भी इसको बरत सकते हैं।

शुण्ठ्यादि क्वाथ—वातकुण्डलिका, मूत्राष्ठीला, वातबस्ति, मूत्रातीत, मूत्र-जठर, मूत्रोत्सङ्ग, मूत्रक्षय, मूत्रग्रन्थि, मूत्रशुक्र, उष्णवात, मूत्रसाद, विड्विघात और वायुप्रधान वातकुण्डलिकारोग में वायु का अवरोध एवं इसके कारण कोष्ठ,

---

१. मूत्रकृच्छ्र रोग में मूत्राघात और अश्मरी रोग की औषधियों को बरतना चाहिये। चरकसंहिता का **'पिबेत्तथा तण्डूलधावनेन प्रवालचूर्णं कफ मूत्र-कृच्छ्रे'**। यह मूत्राघात-अश्मरी रोग में बरता जाता है। इसी प्रकार अश्मरी रोग, और मूत्राघात के योग मूत्रकृच्छ्र में प्रयोग करने चाहियें।

कटि, ऊरु, मलद्वार, बस्ति, शिश्न में वेदना होने पर यह क्वाथ हींग, यवक्षार और सैन्धवलवण प्रत्येक ४ रत्ती प्रक्षेप देकर पान कराना चाहिये। मूत्रकृच्छ्र, अश्मरीरोग में इसका व्यवहार होता है। यह वायु का अनुलोमक, कोष्ठशुद्धिकारक और अश्मरीभेदक है।

हिंग्वाद्य चूर्ण—मूत्राष्ठीला रोग में वायु के कारण मल-मूत्ररोध, उदराध्मान एवं संचरणशील, तीव्र वेदनायुक्त अष्ठीला उत्पन्न हो जाये, रोग की प्रथमावस्था में यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—उष्ण जल।

कांकायन गुटिका—अष्ठीला नामक मूत्राघात में उदराध्मान, मलमूत्ररोध, वेदना आदि लक्षण होने पर यह औषध रोगी को सेवन करानी चाहिये। इससे रोग समूल नष्ट होता है। कोष्ठ शुद्धिकारक और मूत्रकारक है। अनुपान—त्रिफला जल[1]।

अश्मरीरोग-चिकित्सा

एलादि क्वाथ—वातिक, श्लैष्मिक या शुक्राश्मरी रोग के लक्षण होने पर इस क्वाथ में शिलाजीत प्रक्षेप देकर रोगी को पिलानी चाहिये।

वरुणादि क्वाथ—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, शुक्राश्मरी रोग के लक्षण दीखने पर एवं जननेन्द्रिय से रक्त आने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। प्रक्षेप-यवक्षार ४ रत्ती।

गोक्षुरयोग—वातिक, श्लैष्मिक, शुक्राश्मरी के लक्षण दीखने पर यह क्वाथ देना चाहिये। इससे अश्मरी गिर जाती है।

कुशावलेह—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, शुक्राज-अश्मरी एवं शर्करा के लक्षण दीखने पर अथवा-प्रमेह; मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी रोग में मूत्र में रक्त आने पर यह औषध अमृत के समान है। अनुपान—त्रिफला का जल।

---

१. मूत्रकृच्छ्र में वर्णित तृणपंचमूल क्षीर, गोक्षुरादि क्वाथ, कुशावलेह, चिन्तामणिरस, तारकेश्वर, चतुर्मुखरस, योगेन्द्ररस, उशीराद्य तैल और त्रिकण्टकाद्य घृत का उपयोग मूत्राघात में भी करना चाहिये। क्योंकि इनमें वायु का अवरोध रहता है। इसलिये वातरोग की औषध इनमें फलप्रद रहती है।

तृणपञ्चमूल क्षार—पैत्तिक अश्मरी रोग में वा मूत्रमार्ग के द्वारा रक्त निकलने पर यह औषध देनी चाहिये।

तिलाद्य क्वाथ—शर्करा या सिकतामेह के लक्षण दीखने पर रोगी को यह क्वाथ देना चाहिये। इस क्वाथ के सेवन सिकता और शर्करा मूत्रमार्ग से बाहर आ जाती है।

पाषाणभेदाद्य चूर्ण—वातिक, श्लैष्मिक, शुक्रज अश्मरी किंवा शर्करा और सिकतामेह के लक्षण दीखने पर यह औषध सेवन करानी चाहिये। इससे अश्मरी भिन्न होकर मूत्र के साथ निकल आती है। अनुपान—उष्णजल।

चिन्तामणि रस—अश्मरी रोग में वायु के प्रकोप के कारण बस्तिभाग मूत्राशय में आध्मान, पित्त के प्रकोप के कारण मूत्राशय में अत्यन्त दाह होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। शर्करा और सिकतामेह की प्रथमावस्था में यह औषध बरत सकते हैं, परन्तु अण्डकोष या नाभि पर शोथ अथवा श्लैष्मिक, शुक्रज अश्मरी रोग में वर्ज्य है। अनुपान—त्रिफला जल।

योगेन्द्र रस—अश्मरी रोग में वायु और पित्त के प्रकोप से अनेक प्रकार के लक्षण दीखने पर यह औषध देनी चाहिये। जिन-जिन अवस्थाओं में जिन-जिन अनुपानों से चिन्तामणि रस देते हैं; उन्हीं अवस्थाओं में उन्हीं अनुपानों से यह देना चाहिये।

वरुणाद्य लोह—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, शुक्रज, अश्मरी रोग के लक्षण दीखने पर विशेषतः रोगी को साथ में अल्पज्वर रहने पर यह औषध देनी चाहिये। इसको मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मेहरोग, बस्ति एवं जननेन्द्रिय के दाह में बरत सकते हैं। अनुपान—चावलों का धोवन या त्रिफलाजल।

उशीराद्य तैल—वातिक, पैत्तिक, अश्मरी रोग की किसी भी अवस्था में शर्करा और सिकतामेह की प्रथमावस्था में यह तैल रोगी के सम्पूर्ण अंगों पर और विशेषतः उदर पर मलना चाहिये।

वीरतरादि तैल—वातिक, पैत्तिक, अश्मरी रोग की सब अवस्थाओं में एवं श्लैष्मिक या शुक्रज अश्मरी की पुरातन अवस्था में अर्थात् शोथ, ज्वर न होने पर यह तैल सर्वांग और उदर पर मलना चाहिये।

कुशाद्य तैल—वातिक, पैत्तिक अश्मरी रोग में एवं शर्करा और सिकता-मेह की प्रथमावस्था में विशेष करके मूत्रमार्ग से रक्त आने पर यह तैल रोगी के

सर्वांग और उदर पर मालिश करना चाहिये। वायु के अनुलोमन के लिये इसके द्वारा जननेन्द्रिय में उत्तरबस्ति और मलद्वार में बस्ति देनी चाहिये। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात में इसका व्यवहार हो सकता है। सब प्रकार की अश्मरी में यह तैल गरम दूध के साथ रोगी को देना चाहिये।

तृणपञ्चमूल घृत—वातिक, पैत्तिक, अश्मरीरोग की सब अवस्थाओं में एवं श्लैष्मिक अश्मरी की पुरातन अवस्था में अर्थात् शोथ न हो; अश्मरी रोग में मूत्रनाली से रक्त आये और इस मार्ग में क्षत हो जाए तो यह घृत विशेषतः बरतना चाहिये। शर्करा और सिकतामेह की प्रथमावस्था में एवं मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात में बहुत लाभदायक है, अनुपान—गरम दूध।

वरुणाद्य घृत—श्लैष्मिक, शुक्रज अश्मरी रोग में एवं शर्करा और सिकता की पुरातनावस्था में यह घृत बहुत लाभदायक है। इसके सेवन से श्लैष्मिक अश्मरी रोग, मूत्राशय में भार, शीतलता, वेदना आदि एवं शुक्राश्मरी रोग में मूत्राशय की वेदना नष्ट होती है। अण्डकोष में सूजन न होने पर इसके देने से अश्मरी बाहर आती है। शर्करा और सिकता रोग में ज्वर, अग्निमान्द्य, शोथ न होने पर यह घृत गरम दूध से रोगी को देना चाहिये।

अश्मरीरोग में मूर्च्छा-चिकित्सा

चतुर्मुख रस—शर्करा और सिकतारोग में शर्करा और सिकता बाहर न आये, अश्मरी रोग में रोगी मूर्च्छाभिभूत हो जाये तब नस्य द्वारा मूर्च्छा दूर करके यह औषध रोगी को देनी चाहिये। वायु के द्वारा रोगी का शरीर रूक्ष हो जाये इससे दुर्बलता, मूर्च्छा, उदराध्मान, कम्प, अवसन्नता, जीर्णज्वर, कृशता आदि उपद्रव हों; इसके प्रयोग से असाधारण लाभ होता है। मेहरोग इससे नष्ट होता है। इसके द्वारा वायु का अनुलोमन होने से कोष्ठशुद्धि होती है। इन सब रोगों में कुक्षिशूल; वमन और तृष्णा इस औषध के प्रभाव से नष्ट होते हैं। इन अवस्थाओं में चिन्तामणि रस, चिन्तामणि चतुर्मुख, योगेन्द्र रस के प्रयोग से अधिक लाभ होता है। अनुपान—त्रिफला जल या चावलों का धोवन।

अश्मरीरोग में मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात-चिकित्सा

तृणपंचमूलीय क्षीर—अश्मरी, शर्करा, सिकता रोग में रोगी की मूत्र-

नाली रुक जाये, तुरन्त मूत्रकृच्छ्र या उष्णवात की स्थिति आ जाये; इस अवस्था में यह औषध देनी चाहिये।

कुशावलेह—अश्मरी, सिकता, शर्करा रोग में दारुण मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात उपस्थित हो जाये, तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

वरुणाद्य लोह—अश्मरी रोग में मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र की अवस्था होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—त्रिफलाजल।

अश्मरीरोग में हृद्रोग-चिकित्सा

अर्जुनादि क्षीर—अश्मरी, शर्करा, सिकता रोग में हृद्रोग उपस्थित हो जाये; तो यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इसके प्रयोग से वक्षःस्थल का दाह; तृष्णा, गात्रदाह, मूर्च्छा, हृदय की ग्लानि दूर होती है।

चिन्तामणि रस—अश्मरी-सिकता-शर्करा रोग में हृद्रोग उपस्थित होने पर इसके कारण असह्य वेदना, भारप्रतीति, अग्निमान्द्य, फेफड़ों में तीव्र दर्द होने से यह औषध रोगी को देनी चाहिये। इसके द्वारा रोगी को मूर्च्छा, कुक्षिशूल, अवसाद आदि उपद्रव नष्ट होकर शरीर में पुष्टि होती है। रोगी को प्रमेह रोग हो तो वह नष्ट होता है। इस अवस्था में मूत्राघात-मूत्रकृच्छ्रता होने पर शान्ति होती है। यह वायु का अनुलोमन करती है; कोष्ठशुद्धि करती है। अनुपान—त्रिफलाजल।

अश्मरीरोग में अरुचि-चिकित्सा

आमलाद्य योग—अश्मरी-सिकता-शर्करा रोग में अरुचि होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये।

अश्मरीरोग में वमन-चिकित्सा

चन्दनादि योग—अश्मरी, शर्करा, सिकतारोग में रोगी को वमन होने पर यह औषध देनो चाहिये। इससे गले में दाह, मूर्च्छा, प्यास आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। अनुपान—तण्डुलोदक और मधु।

अश्मरीरोग में तृष्णा-चिकित्सा

तृणपंचमूलादि पानीय—अश्मरी-शर्करा-सिकता रोग में पित्ताधिक्य के कारण अति प्यास लगती हो, तब यह पानीय थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिये। इससे प्रमेह, दाह, मूर्च्छा, अश्मरी शान्त होते हैं।

काश्मर्यादि पानीय—अश्मरी, शर्करा, सिकतारोग में पित्ताधिक्य के कारण प्रबल प्यास रहे, तब यह औषध रोगी को थोड़ीथोड़ी पीने को देनी चाहिये। इसके देने से दाह, गरमी, वमन, मलबन्ध, वात या पित्ताश्रित जीर्णज्वर, मेह, अश्मरी आदि नष्ट होते हैं।

अश्मरीरोग में पाण्डु-चिकित्सा

अष्टादशांग लौह—अश्मरीरोग में पाण्डुरोग के लक्षण दीखने पर विशेषतः साथ में रोगी को अग्निमान्द्य, पतला मल आने पर यह औषध देनी चाहिये। इससे प्रमेह रोग में भी लाभ होता है।

व्रणशोथ-चिकित्सा

मातुलुंगादि लेप—वातज व्रण में शोथ के लक्षण दीखने पर इसमें शूल, तोद-भेद आदि वेदना होने पर यह प्रलेप लगाना चाहिये। प्रलेप तीन वार लगना चाहिये। परन्तु रात्रि में या व्रण के मुख पर लेप नहीं लगाना चाहिये। इसके प्रयोग से फोड़ा बैठ जाता है।

शाखोटक लेप—वातिक व्रण में शोथ के लक्षण दीखने पर यह लेप शोथ पर लगाना चाहिये। इसके प्रयोग से फोड़ा बैठ जाता है।

पुनर्नवादि लेप—वातिक, श्लैष्मिक व्रणशोथ के लक्षण दीखने पर एवं वात श्लैष्मिक वेदना होने पर यह लेप लगाना चाहिये। इस लेप से अति कठिन व्रणशोथ भी अतिशीघ्र बैठ जाती है।

पंचवल्कल प्रलेप—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, रक्तज या आगन्तुज व्रणशोथ में से किसी के भी लक्षण दीखने पर यह प्रलेप प्रयोग करना चाहिये। सब प्रकार के व्रणों की महौषध है। अति फैली शोथ जैसी कि विषजन्य शोथ में भी इससे लाभ होता है। पैत्तिक, रक्तज और आगन्तुज व्रणशोथ में यह यह लेप लगाते समय इसमें घृत थोड़ा-सा मिला लेना चाहिये और इसको गरम नहीं करना चाहिये। अन्य शोथों में गरम करके लगाना चाहिये [बरगद, पीपल, गूलर, पिलखन और अम्लवेतस ये पांच पंचवल्कल हैं। इनकी छाल बरतते हैं]

धत्तूरादि लेप—वातिक और श्लैष्मिक व्रणशोथ में यह लेप प्रयोग करना चाहिये। इससे बहुत जल्दी शोथ और वेदना कम होती है और शोथ बैठ जाती है।

चन्दनादि लेप—पैत्तिक, रक्तज, आगन्तुज व्रणशोथ में यह लेप लगाना चाहिये। इससे दाह, शोथ और वेदना नष्ट होती है।

दूर्वादि लेप—पैत्तिक, रक्तज, आगन्तुज शोथ में अत्यधिक वेदना होने पर यह लेप लगाना चाहिये।

कट्फलादि लेप—श्लैष्मिक व्रणशोथ में इस लेप के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। वातिक शोथ में इसका प्रयोग करते समय इसमें एक भाग तिल मिला लेना चाहिये।

तिल लेप—पैत्तिक व्रणशोथ में अतिशय दाह एवं वातज व्रणशोथ में अतिशय वेदना होने पर यह लेप बार-बार लगाना चाहिये। इससे दाह और वेदना शान्त होती है। सान्निपातिक शोथ में भी दाह और वेदना इससे शीघ्र शान्त होती है।

अहिफेन प्रलेप—रक्तज और आगन्तुज शोथ को छोड़कर सब प्रकार के व्रणशोथ में पकने के समय इसका प्रलेप लगाना चाहिये [आर्द्रक और धत्तूर के पत्तों के रस में अफीम मिलाकर लगायें।]।

व्रणरोग-चिकित्सा

हरीतक्यादि क्वाथ—वातिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक और रक्तज व्रण में औषधोपचार करने से क्षत शुष्क न हो, दुष्टव्रण के लक्षण दीखते हों; तो इस कषाय से व्रण को धोना चाहिये। दिन में दो बार धोना चाहिये।

तिलाष्टक लेप—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, रक्तज, क्षत निम्बघृत आदि से शान्त न हो और इन व्रणों में दुष्टव्रण के लक्षण हों, तब हरितक्यादि क्वाथ से व्रण को धोकर यह लेप लगाना चाहिये। इस लेप से व्रण की वेदना, क्लेद, स्राव, ज्वाला, रक्तस्राव; चुमचुमाहट आदि उपद्रव नष्ट होकर व्रण शुद्ध हो जाता है। कुछ दिन प्रयोग करने से व्रण शुष्क हो जाता है इसमें लवण होने से लगाते समय वेदना करता है, परन्तु दो-चार मिनिट सहन कर लेने पर शान्ति मिलती है।

निम्बपत्रादि लेप—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, रक्तज व्रण में दाह, वेदना, दुर्गन्धयुक्त स्राव होने पर एवं दुष्टव्रण के लक्षण दीखने पर यह प्रलेप

व्रण पर लगाना चाहिये। इससे व्रण शुद्ध और शुष्क होता है। इसमें नमक होने से कुछ देर लगाते समय दाह करता है।

शारिवादि लेप—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक और रक्तज व्रण में अतिशय क्लेद और स्राव न हों; और क्षत देर में शुष्क हो रहा हो, तो यह औषध घिसकर लगानी चाहिये। यह व्रण शोधक और रोपक है।

हरिद्रादि लेप—दुष्ट व्रण के लक्षण दीखने पर एवं इसमें दाह, वेदना, मैला-पतला रक्तस्राव होने पर हरीतक्यादि क्काथ से क्षत को धोकर यह प्रलेप लगाना चाहिये। इससे दाह नहीं होती।

कुष्ठादि लेप—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक और रक्तज व्रण में निम्बघृत के प्रयोग से भी जब लाभ न हो; विशेषतः तलदेश समान न हो-ऊँचा नीचा रहे; तब हरीतक्यादि क्काथ से व्रणको धोकर यह लेप लगाना चाहिये। इसी प्रकार धोकर इस लेप को दिन में दो बार लगाना चाहिये।

नरास्थि लेप—अन्य औषधियों से क्षत शुष्क न हो; तो इसको क्षत स्थान पर लगाने से बहुत जल्दी लाभ होता है।

जात्यादि लेप—नाड़ी व्रण की तथा दुष्ट व्रण के लिये उत्तम है। जिन नाड़ी व्रणों का मुख बहुत सूक्ष्म हो; उनमें इसका उपयोग करना चाहिये। फिरङ्ग रोग में भी यह लाभप्रद है।

अमृतादि क्काथ—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, रक्तज, आगन्तुज व्रण रोगी के व्रण में वेदना, व्रण से क्लेद-पूयस्राव, अल्पज्वर, कास आदि उपद्रव होने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। दूषिविषजनित अथवा अन्यान्य व्रणशोथ, दुष्टव्रण, विसर्प, विद्रधि; सर्वविध छाले (विस्फोट) नाड़ी-व्रण आदि सब में इसका उपयोग करना चाहिये। इसके साथ रहने वाले ज्वरों के लिये महौषध है। चेचक आदि रोगों में लाभकारी है, जिनमें दाने-कोठ निकलते हैं; उनमें अतिफलप्रद है। यदि इन अवस्थाओं में मलबन्ध रहता हो, तब त्रिवृत्त चूर्ण या एरण्ड तैल इसमें मिला देना चाहिये।

पटोलादि क्काथ—अमृतादि क्काथ की भाँति सब प्रकार के व्रणों में इसका व्यवहार होता है।

सप्तविंशतिक गुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, रक्तज और सद्योव्रण रोगी में व्रणवेदना, व्रण से दुर्गन्धयुक्त स्राव या पूय निकलने पर;

साथ में अल्पज्वर, कास और विशेष करके मलबन्ध रहने पर रोगी को यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—गरम दूध।

नवकार्षिक गुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक; रक्तज, सद्योव्रण रोगी के व्रण से क्लेद का आना; व्रण में अतिशय वेदना, गात्रवेदना; अल्पज्वर, मलबन्ध रहने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—गरम जल अथवा गाय का दूध।

पञ्चतिक्तघृत गुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक या किसी प्रकार का भी क्षत जो पुराना हो जाये, किसी अन्य औषध से लाभ न हो; तब रक्तशुद्धि के लिये यह घृत देना चाहिये। व्रण रोग को जीर्णज्वर रहने पर इससे वह नष्ट होता है। विशेष करके इससे मलबद्धता नष्ट होती है। अनुपान—गरम दूध।

महातिक्त घृत—वातिक, पैत्तिक, सान्निपातिक, रक्तजव्रण एवं सद्योव्रण के पुराना होने पर इससे रक्त दूषित हो जाये या क्षत शुष्क न हो, तब यह घृत देना चाहिये। यह घृत रक्तशोधक एवं व्रणशोधक है और वात-पित्ताधिक्य रोग में विशेष लाभप्रद है। पुरातन वात-पित्ताधिक्य जीर्णज्वर, इसके कारण हाथ-पैर-आंखों का दाह; अनिद्रा आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। अनुपान—गरम दूध।

सोमराजि तैल—वातिक, पैत्तिक या सद्योव्रण जो शुष्क न होकर पुरना हो जाये, इससे नाड़ीव्रण बन जाये; शुष्क होने में देर लगती हो; तो यह तैल बरतना चाहिये। यह तैल व्रणशोधक, पूरक और रोपक है।

जीरकाद्य तैल—अग्निदग्ध व्रणों में या अग्निदाह से छाल हो जाने पर इस तैल में रूई का पिचु भिगोकर क्षतस्थान पर लगाना चाहिये।

गण्डूपद तैल—अग्निदग्ध क्षत की महौषध है। अन्य औषधियों से व्रण शुष्क न हो; इस तैल के प्रयोग से शीघ्र ही व्रण शुष्क होता है [जीवित केंचुवें एक पाव, तिल तैल १ सेर लेकर अग्नि द्वारा पाक करें]।

विद्रधिरोग चिकित्सा

शोभाञ्जक लेप—विद्रधि छोटी हो या बड़ी हो; अति कठिन हो, इसमें थोड़ी या अधिक वेदना रहे, रोगी को ज्वर या दाह न हो; तो यह प्रलेप दिन में तीन बार लगाना चाहिये। सान्निपातिक विद्रधि में अति सूजन और वेदना होने पर भी इसको बरतना चाहिये।

शोभाञ्जक स्वेद—विद्रधि छोटी या बड़ी हो, उसमें अतिशय वेदना हो, परन्तु दाह न हो, तब यह स्वेद बार-बार देना चाहिये। यह स्वेद देकर शोभाञ्जनक लेप लगा देना चाहिये। विद्रधि में दाह होने पर कभी भी स्वेद नहीं देना चाहिये।

अनन्त्यादि लेप—विद्रधि शीघ्र बढ़ जाये, इसमें अतिशय दाह होने पर यह लेप लगाना चाहिये। सान्निपातिक विद्रधि में अतिशय दाह होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। इसके स्थान पर बदलकर पंच वल्कल लेप या चन्दनादि लेप लगाना चाहिये। पैत्तिक, क्षतज और रक्तज विद्रधि में इसका प्रयोग कर सकते हैं।

कज्जली योग—बाह्य या अन्तः विद्रधि की किसी भी अवस्था में यह योग रोगी को प्रातः देना चाहिये। अन्तः देनेवाली औषधियों में विद्रधि रोग के लिये यह सर्वश्रेष्ठ है। जबतक रोगी स्वस्थ न हो, इसको प्रतिदिन देना चाहिये। अनुपान—शोभञ्जन त्वक् का रस २ तोला और मधु।

पुनर्नवादि क्वाथ—बाह्य या अन्तः विद्रधि के उत्पन्न होने के साथ यह क्वाथ रोगी को प्रतिदिन देना चाहिये। जबतक रोगी को आराम न हो, प्रतिदिन इसको देना चाहिये।

अमृतादि क्वाथ—बाह्य और अन्तः विद्रधि के लक्षण होने पर पुनर्नवादि क्वाथ के स्थान पर यह क्वाथ देना चाहिये। इसके प्रयोग से आनुषंगिक ज्वर नष्ट होता है।

विसर्प चिकित्सा

वमन योग—रोग प्रबल हो तो रोगी को प्रथम वमन देना चाहिये [इसके लिये परवल २ तोला, नीम की छाल २ तोला, जल ६४ तोला; शेष १६ तोला; मदनफलचूर्ण का प्रक्षेप ३ मासा या ६ मासा]।

रास्नादि लेप—वातिक, पैत्तिक या वातपैत्तिक विसर्प के लक्षण दीखने पर या पीड़ित स्थान पर दाह या संताप होने पर, प्रदाहवाला स्थान लाल या कृष्ण वर्ण हो, तब यह लेप वस्त्र पर लगाकर लगाना चाहिये। क्षतज या सान्निपातिक विसर्प में भी इसका व्यवहार कर सकते हैं।

चन्दनादि लेप—पैत्तिक विसर्प में पीड़ित स्थान रक्त वर्ण या अत्यधिक दाह या सन्ताप होने पर यह लेप कपड़े पर लगाकर लगाना चाहिये। क्षतज और सान्निपातिक विसर्प में भी बरत सकते हैं।

पंचवल्कल लेप—पैत्तिक विसर्प में चन्दनादि लेप से लाभ न हो, तो यह महोपकारी प्रलेप लगाना चाहिये। क्षतज और सान्निपातिक विसर्प में अत्यधिक दाह होने पर भी श्रेष्ठ है।

त्रिफलादि लेप—श्लैष्मिक विसर्प में यह लेप बरतना चाहिये। क्षतज, सन्निपातज में भी बरतते हैं।

दशांग लेप—वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक विसर्प में या क्षतज और सन्निपातज विसर्प में इस लेप का प्रयोग होता है। यह अतिशय लाभकारी है। विष के लगाने से भी विसर्प हुआ हो, तो भी इसको बरतना चाहिये। यह विषदोष नाशक है।

पटोलादि क्वाथ—विसर्प रोग की किसी भी अवस्था में इसे बरत सकते हैं; यह सब विसर्प में उत्तम है।

अमृतादि क्वाथ—वातिक या पैत्तिकादि कोई भी विसर्प होने पर साथ में ज्वर, शरीर में दर्द आदि उपद्रव रहने पर विसर्पपीड़ित स्थान पर दाह, शोथ होने पर इसके कारण रोगी को पीड़ा से बेचैनी हो रही हो तो यह क्वाथ देना चाहिये। कोष्ठकाठिन्य होने पर क्वाथ के साथ निशोथ का चूर्ण चार आना या आधा तोला प्रक्षेप देना चाहिये।

किरातादि क्वाथ—किसी भी प्रकार के विसर्प में कोई लक्षण दीखने पर साथ में ज्वर आदि उपद्रव रहने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। जबतक रोग अच्छा न हो, इसको देना चाहिये। मलबन्ध रहने पर निशोथ का चूर्ण मिला देना चाहिये।

कज्जली योग—विसर्प रोग की किसी भी अवस्था में इसका उपयोग किया जा सकता है। प्रथम विरेचन देकर यह औषध दी जा सकती है। औषध प्रयोग से ज्वर शान्त हो जाये, तब घृत संयुक्त पुष्टिकर आहार देनी चाहिये। अनुपान—करेले के पत्तों का रस।

पंचतिक्त घृतगुग्गुलु—विसर्प रोग में ज्वर का प्रबल वेग कम हो जाये, स्नान—आहार सह्य हो तो यह घृत रोगी को देना चाहिये। इसके सेवन से पुनराक्रमण का भय नहीं रहता। वातिक, श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक; पित्तश्लैष्मिक

विसर्प रोग में; क्षतज या सान्निपातिक विसर्प में वायु और कफ की प्रबलता होने पर यह देना चाहिये। फिरंगजनित विसर्प में भी इसको बरत सकते हैं। अनुपान-गरम दूध।

पद्मक घृत—पैत्तिक विसर्प में, सान्निपातिक या क्षतज विसर्प में पित्त का प्रकोप अधिक हो, या भिलावे के कारण विसर्प हो या लूताविष के कारण हो; तो यह घृत बरतना चाहिये। नाडीव्रण और विस्फोटक में भी इसको बरत सकते हैं। फिरंगजनित विसर्प में इससे विशेष लाभ नहीं होता है। अनुपान—उष्ण दूध।

पिड़का (विस्फोटक)-चिकित्सा

शिरीषादि लेप—वातिक पिड़का में पिड़का का रंग श्यामवर्ण हो, उपर का पृष्ठ रूक्ष हो; इसमें सूई चुभने की वेदना रहती हो, चुमचुमाहट हो; तब यह लेप लगाना चाहिये। इससे वातज शोथ शीघ्र शान्त होती है।

चन्दनादि लेप—पैत्तिक, वातपैत्तिक, रक्तज पिड़का में पिड़का का रंग सुर्ख, कृष्ण या श्यामवर्ण हो, इसमें अत्यधिक दाह, संताप हो तो यह लेप बरतना चाहिये। इसके प्रयोग से शोथ शीघ्र बैठ जाता है। सान्निपातिक पिड़का में पित्त के प्रकोप के कारण जो उपद्रव हों, उन सब में इसको बरतें।

पंचवल्कल लेप—पैत्तिक, वातपैत्तिक; रक्तज; सन्निपातज पिड़का में पित्त की प्रबलता के कारण उपद्रव हों; पिड़का सुर्ख और अत्यधिक दाहयुक्त हो तो यह प्रलेप लगाना चाहिये।

त्रिफलादि लेप—श्लैष्मिक पिड़का में पिड़का पाण्डुवर्ण, बड़ी; कठिन और अल्पवेदनायुक्त होने पर यह लेप लगाना चाहिये। इसके प्रयोग से शोथ शीघ्र शान्त होता है।

दशांग लेप—वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और सान्निपातिक पिड़का में अतिदाह; शूल, चुमचुमाहट, सूई चुभने की वेदना होने पर तथा जो पिड़कायें कृष्णवर्ण, श्यामवर्ण, पाण्डुवर्ण या रूक्ष हों, उनमें यह लेप लगाना चाहिये।

रससिन्दूर योग—पिड़का में किसी भी दोष के लक्षण दीखने पर यह औषध प्रातः रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—करेले के पत्तों का रस और मधु। कज्जली योग की अपेक्षा इससे अधिक लाभ होता है [रससिन्दूर को गिलोय रस,

नीमछाल का रस; खदिर का हिमकषाय, इनसे तथा इन्द्रयव के क्वाथ से क्रमशः सात बार भावना दें। फिर रससिन्दूर के बराबर कर्पूर, इलायची; दालचीनी, तेजपत्र प्रत्येक का चूर्ण मिलायें; मात्रा एक आना]।

दशमूलादि क्वाथ—वातिक पिड़का में रोगी को ज्वर, सन्धिस्थान में वेदना, तृष्णा आदि उपद्रव होने पर यह क्वाथ रोगी को प्रातःकाल पीने के लिये देना चाहिये। मलबन्ध होने पर कुटकी या निशोथ का चूर्ण प्रक्षेप देकर देना चाहिये।

किरातादि क्वाथ—श्लैष्मिक पिड़का में पिड़का पाण्डुवर्ण, बड़ी एवं कठिन और अल्पवेदनायुक्त हो तथा साथ में रोगी को ज्वर, शरीर में पीड़ा, अरुचि, शरीर में भारीपन आदि उपद्रव होने पर यह क्वाथ प्रतिदिन रोगी को पिलाना चाहिये। मलबन्ध होने पर कुटकी चूर्ण या निशोथ का चूर्ण मिलायें।

वासादि क्वाथ—पिड़का में किसी भी प्रकार का उपद्रव किसी भी अवस्था में होने पर यह देना चाहिये।

पटोलादि क्वाथ—किसी भी प्रकार की पिड़का में कोई भी उपद्रव होने पर यह क्वाथ रोगी को प्रातः देना चाहिये। इसके सेवन से रोगी का आनुषंगिक ज्वर, दाह, कम्प अन्य उपद्रव नष्ट होते हैं मलबन्ध होने पर निशोथ या कुटकी चूर्ण मिलाना चाहिये।

पंचतिक्त गुग्गुलुघृत—पिड़का या क्षत सूखने में देर लगती हो; क्षत को नष्ट करने के लिये तथा रक्तशुद्धि के लिये यह घृत बरतना चाहिये। अनुपान—गरम दूध।

मसूरिका (चेचक) की औषध

स्वल्प लक्ष्मीविलास—मसूरिका निकलने से पूर्व ज्वर, शरीर में वेदना, शिर में भारीपन, हाथ-पांव में ऐंठन, शरीर में अवसन्नता, शीत के कारण नाक-मुख से स्राव, आंखों से जल बहना, ज्वर का वेग अल्प या प्रबल हो; यह औषध रोगी को देनी चाहिये और इसको तीन बार दिन में देना चाहिये। अनुपान—तुलसीपत्ररस या पान का रस और मधु।

कफचिन्तामणि—जिन अवस्थाओं में स्वल्प लक्ष्मीविलास बरता जाता है; उन सब अवस्थाओं में इसका व्यवहार होता है; अनुपान—तुलसी का पत्र रस और मधु।

कस्तूरी भूषण—जिन अवस्थाओं में स्वल्प लक्ष्मीविलास देते हैं; उन अवस्थाओं में ज्वर का वेग प्रबल होने पर तथा तन्द्रा, प्रलाप, पार्श्ववेदना आदि लक्षण दीखने पर यह देना चाहिये। अनुपान—घिसा हुआ रुद्राक्ष और मधु।

दशमूल क्वाथ—वातिक मसूरिका के लक्षणों में यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। दाने पकने आरम्भ होने पर इसको देना चाहिये। परन्तु गुडूच्यादि क्वाथ इससे अधिक उत्तम है।

द्राक्षादि क्वाथ—पैत्तिक मसूरिका के लक्षण दीखने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। दाने पकने आरम्भ हो जायें, तब यह क्वाथ बन्द कर देना चाहिये।

किरातादि क्वाथ—श्लैष्मिक मसूरिका में जबतक दाने पकने आरम्भ न हो; तबतक यह क्वाथ देना चाहिये।

गुडूच्यादि क्वाथ—दाने पकने आरम्भ हो जायें और वायु का प्रकोप नष्ट करने के लिये यह क्वाथ देना उत्तम है। इसके अभाव में दशमूल क्वाथ देना चाहिये।

अष्टाङ्गावलेह—मसूरिका, खसरा, छोटी माता आदि में ज्वर विकार रहने पर एवं इसके साथ में श्वास और हिक्का रहने पर या कोई एक उपद्रव रहने पर यह औषध रोगी को चाटने के लिये देनी चाहिये। इसके साथ में वमन, अरुचि, कास, कर्णरोग, गले में दर्द, पथ्य लेने में कठिनाई, निगरण में कठिनाई होने पर यह चाटना लाभदायक है। इससे लाभ न हो तो शृङ्ग्यादि चूर्ण देना चाहिये। गर्भवती; प्रसूता, बालक और शिशुवों के लिये उत्तम है। अनुपान—गरम जल।

शृंग्यादि चूर्ण—जिन अवस्था में अष्टाङ्गावलेह बरतते हैं, उन्हीं अवस्थाओं में इसको बरतना चाहिये। अनुपान—गरम जल।

निम्बादि क्वाथ—वात पित्तादि भेद से रोग का निर्णय न हो सकने पर यह क्वाथ देना चाहिये। यह सर्व प्रकार की चेचक अथवा इसके कारण उत्पन्न ज्वर में विशेषतः जब दाने बाहर न आकर अन्दर ही रुके हों, तब इसके देने से दाने शीघ्र निकल आते हैं। जब दाने थोड़े निकलें या अन्दर रुक जायें; तब यह क्वाथ अवश्य देना चाहिये। कुष्ट, पिड़का और विसर्प में भी इसे बरत सकते हैं। यह क्वाथ सायंकाल में देना उत्तम है। रससिन्दूरयोग या कज्जलीयोग में अनुपान रूप से दे सकते हैं।

अमृतादि क्वाथ—अति प्रसिद्ध और सदा काम में आनेवाली औषध है। पिडका, विसर्प, चेचक, खसरा, कण्डू, शीतपित्त आदि रोगों में एवं इनके कारण होने वाले ज्वर की शान्ति के लिये बरती जाती है। इसको स्वतंत्र रूप से या कज्जलीयोग या रससिन्दूरयोग के अनुपान रूप में बरत सकते हैं। इसके स्थान पर पटोलादि क्वाथ या खदिराष्टक क्वाथ भी दे सकते हैं।

वासादि क्वाथ—चेचक या खसरे की किसी भी अवस्था में इसका व्यवहार हो सकता है।

पटोलादि क्वाथ—रोगी को मलशुद्धि के लिये अमृतादि क्वाथ या खदिराष्टक के स्थान पर इसको बरत सकते हैं। इसमें कुटकी रहने से मल साफ आता है। अधिक मलबन्ध रहने पर इसमें कुटकीचूर्ण या निशोथ का चूर्ण ½ तोला अधिक मिला देना चाहिये। चेचक की सब अवस्थाओं में इसे दे सकते हैं। कज्जलीयोग या रससिन्दूरयोग में अनुपान रूप से दे सकते हैं।

खदिराष्टक—चेचक, खसरा, छोटी माता, विसर्प, विद्रधि आदि रोगों में इसका प्रयोग करना चाहिये। इनसे सम्बन्धित ज्वर भी इससे नष्ट होता है। इन सब रोगों में अतिसार हो तो वह इससे बन्द हो जाता है। कज्जलीयोग के अनुपान रूप से बरत सकते हैं।

जात्यादि क्वाथ—गले का रोग होने पर इस क्वाथ से लाभ होता है।

इन्दुकला वटी—दाने पकने लगे और वायु के कारण अतिशय रूक्षता दिखाई दे, तब यह औषध देनी चाहिये। चेचक में दाने पकने के समय वायु का कुपित होना स्वाभाविक है। इसलिये इस समय इस औषध को देना लाभदायक है। दाने पकने से स्राव अधिक निकलता हो, तब औषध बन्द कर देनी चाहिये। अनुपान—उपरोक्त कोई क्वाथ या घिसा रुद्राक्ष।

सर्वतोभद्र रस—दाने पक जायें और इनसे अत्यधिक पूय निकलता हो; जब तक स्राव बन्द न हो, तब तक यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—कोई एक क्वाथ या घिसा रुद्राक्ष।

पञ्चतिक्त घृत—रोग के उपद्रव शान्त होजायें, ज्वर कम हो जायें, यह घृत रूई द्वारा सारे शरीर पर लगाना चाहिये और खाने को देना चाहिये। अनुपान—गरम जल।

पद्म घृत—उपद्रव शान्त हो जाये और ज्वर कम हो जाये, वातपित्ताधिक्य में यह घृत बरतना चाहिये।

पंचतिक्त गुग्गुलु घृत—दानों के पकने से जब अत्यधिक स्राव निकलता हो, तब जबतक स्राव बन्द न हो, क्षत शुष्क न हो जाये, तब तक यह घृत रोगी को देना चाहिये और क्षत पर पंचवल्कल चूर्ण या पलाश की अथवा अश्वत्थ की राख रखनी (बुरकनी) चाहिये।

मधुकादि लेप या आश्च्योतन—आंख में मसूरिका निकलने पर यह लेप पलकों पर लगाना चाहिये और इस क्वाथ से आंख में आश्च्योतन (प्रक्षालन) करना चाहिये। [मुलेहठी, त्रिफला, सूचीमुखी, दारुहरिद्रा; नीलझिण्टी, खस, लोध और मंजीठ इनका क्वाथ या इनको पीसकर लेप करें]।

रोमान्तिका (खसरा) चिकित्सा

स्वल्पलक्ष्मी विलास—रोमान्तिका रोग में गले में पीड़ा, ज्वर आदि लक्षण होने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—पान का रस और मधु।

कफचिन्तामणि—स्वल्प लक्ष्मीविलास के स्थान पर इसको दे सकते हैं। अनुपान—पान या तुलसी पत्र रस और मधु।

कस्तूरी भूषण—खसरे के साथ ज्वर रहने पर यह औषध घिसे हुए रुद्राक्ष और मधु के साथ देनी चाहिये।

निम्बादि क्वाथ—दाने निकल आने पर यह क्वाथ देना चाहिये।

धासादि क्वाथ—रोगी को अतिसार रहने पर निम्बादि क्वाथ के स्थान पर यह देना चाहिये।

कुष्ठरोग-चिकित्सा

ताल लेप—श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक कुष्ठ में क्षत होने से श्वेत या पाण्डु-वर्ण का क्लेद निकलता हो, तब यह लेप लगाना चाहिये। पहिले खदिराष्टक क्वाथ से क्षत धोकर पीछे से यह लेप लगाना चाहिये [हरिताल, मनःशिला और मरिच प्रत्येक समभाग लेकर जल से मर्दन करें]।

विडंगादि लेप—सान्निपातिक कुष्ठ में क्षत से नाना प्रकार का क्लेद निकलने पर मंजिष्ठादि या बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ से क्षत को धोकर यह लेप लगाना चाहिये।

पटोलादि क्वाथ—वातिक या वातपैत्तिक कुष्ठ में क्षत से क्लेद आदि निकलने पर रोगी को प्रतिदिन प्रातः यह क्वाथ देना चाहिये।

खदिराष्टक—पैत्तिक, श्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक कुष्ठ में क्षत से दोषानुसारी स्राव निकलने पर रोगी को यह क्वाथ प्रतिदिन पीने को देना चाहिये।

मञ्जिष्ठादि क्वाथ—सान्निपातिक कुष्ठ में क्षत से नाना वर्ण का स्राव निकलता है, तो उसके लिये रोगी को सायंकाल में यह क्वाथ पीने को देना चाहिये।

बृहत् मञ्जिष्ठादि क्वाथ—सान्निपातिक कुष्ठ में क्षत से नाना वर्ण का स्राव निकलता है, उसके लिये रोगी को प्रातः यह क्वाथ पीने को देना चाहिये।

अमृतादि गुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक और सान्निपातिक कुष्ठ में क्षतस्थान में दाह, पक्वता, कण्डुता, स्पर्शशक्ति का अभाव रहे तथा क्षत से दोषानुसारी स्राव होता हो; तो रोगी को यह औषध प्रतिदिन सायंकाल में गरम दूध से देनी चाहिये।

किशोर गुग्गुलु—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक और सान्निपातिक कुष्ठ में क्षत स्थान में दाह, कण्डू, क्षत होजायें, उससे स्राव नानावर्ण का निकलता हो, तब रोगी को यह औषध सन्ध्याकाल में देनी चाहिये। कुष्ठ रोग में इसके समान लाभकारी औषध कम हैं। श्वित्रकुष्ठ में यह बहुत लाभकारी है। अनुपान—गरम दूध।

निम्बादि चूर्ण—पैत्तिक, श्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक कुष्ठ में क्षत होने पर एवं नाना प्रकार के उपद्रव, वेदना, स्राव आदि होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। श्वित्र कुष्ठ में भी लाभदायक है। अनुपान—गरम दूध।

गलत्कुष्ठारि रस—पैत्तिक और पित्तश्लैष्मिक कुष्ठ में क्षत से स्राव बहता हो; नाना प्रकार के उपद्रव हों; तो रोगी को यह औषध देनी चाहिये। श्वित्र में यह उपयोगी है। अनुपान—दूध।

माणिक्य रस—सान्निपातिक कुष्ठ में क्षत होने से नानावर्ण का स्राव निकले तथा लक्षणानुसारी नाना प्रकार के उपद्रव होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। सदा काम में आनेवाली यह औषध है। अधिकांशतः लक्षणादि का

विचार न करके यह औषध बरती जाती है। अनुपान—गिलोय का रस; नीम की छाल का क्वाथ या दूध।

कुष्ठकालानल रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और सान्निपातिक कुष्ठ के लक्षण दीखने पर यह औषध देनी चाहिये। सदा बरती जानेवाली यह औषध है। अनुपान–गिलोय का रस या दूध।

ताल भस्म—गलित्कुष्ठ की परीक्षित औषध है। कुष्ठ रोग में हाथ-पैर प्रायः गल जायें, अथवा क्षतस्थान में कण्डू, अतिशय दाह; नाना प्रकार की वेदना, क्षत से स्राव निकलता हो, रोगी के शरीर में रुक्षता या अन्य लक्षण दीखते हों, तो यह औषध बरतनी चाहिये। अनुपान—नीम का पत्ता या छाल का चूर्ण और गव्य घृत।

महातालेश्वर रस—कुष्ठ के कारण हाथ-पैर की अंगुलि प्रायः गल जायें, क्षतस्थान में वेदना, दाह, रोगी को प्यास, शरीर में रुक्षता आदि उपद्रव दीखने पर; क्षत से स्राव निकलने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—नीम के पत्ते या छाल का चूर्ण और घृत।

पञ्चनिम्ब—गलित्कुष्ठ और श्वित्र में लाभकारी है। कुष्ठ की किसी भी अवस्था में बरती जाती है, मुख्यतः पित्तकुष्ठ में प्रयोग करने से शरीर में दाह; कण्डू आदि उपद्रव शीघ्र शान्त होते हैं। पञ्चनिम्ब तैयार न हो या इसके बनाने की असुविधा में नीम का तेल दूध के साथ बरतना चाहिये। सहपान—घृत और मधु। अनुपान—दूध।

अमृतांकुर लौह—किसी भी प्रकार का कुष्ठ और कुष्ठ की कोई भी अवस्था हो, वातादि दोष का विचार न करके यह औषध देनी चाहिये। इसके प्रयोग करने में सावधानी बरतनी चाहिये। इसमें ताम्र और भिलावा होनेसे वायु प्रधान शरीर में रुक्षता, शरीर में कण्डू, शिर में चक्कर तथा पित्तप्रधान शरीर में हाथ-पैर में ज्वाला-दाह आदि लक्षण होने की आशङ्का रहती है। इनके लिये दूध कुछ अधिक देना चाहिये और प्रतिदिन या जितना अनुकूल हो नारियल का जल पीना चाहिये। सहपान—घृत और मधु; अनुपान—दूध या नारियल का जल [सर्वकुष्टहरं श्रेष्ठं, वलिपलितनाशनम्। अग्निदीप्तकरं हृद्यं कान्त्यायुर्बलबर्धनम् ॥]।

सोमराजी घृत—पैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक कुष्ठ में एवं श्वित्र में अन्य औषधियों से लाभ न होने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—गरम दूध।

श्वेतारि—श्वित्र कुष्ठ की महौषध है। श्वित्र की किसी भी अवस्था में इसे बरत सकते हैं। अनुपान—घृत और मधु; मात्रा ५ रत्ती।

महाखदिरादि तैल—सब प्रकार के कुष्ठों में बरतने योग्य महौषध है। इसके खाने और मलने से समान लाभ होता है। गलित्कुष्ठ में क्षत से नाना रङ्ग का स्राव निकलता हो, रोगस्थान में चिमचिमाहट; जड़ता, अन्तर्दाह, गात्रदाह; कोष्ठकाठिन्य; शरीर में विवर्णता, उष्णिमा, रोमांच, रक्त में कृष्णवर्णता, आदि उपद्रव होने पर एवं श्वित्र, दद्रु आदि इससे नष्ट होते हैं। अनुपान—गाय का दूध।

वासारुद्र तैल—वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक, गलित्कुष्ठ में या श्वित्र आदि कुष्ठ में वात-पित्तकी अधिकता रहने पर यह तैल रुग्ण स्थान पर तथा सारे शरीर पर मलना चाहिये। इसके प्रयोग से शरीर में दाह; गात्रकम्प, अल्पज्वर; रुग्ण-स्थान का पाक; व्रण का स्राव आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। पामा, विचर्चिका, कण्डू आदि चर्मरोगों में लाभकारी है। वातिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक विसर्प, पिड़का, विद्रधि में इसके प्रयोग और मर्दन से विशेष लाभ होता है।

मरिचादि तैल—श्लैष्मिक गलित्कुष्ठ में या फिरङ्ग जनित कुष्ठ में यह तैल बहुत लाभदायक है। नाना प्रकार के त्वक् रोगों में इसकी मालिश से लाभ होता है। सारे शरीर पर मलने से रक्त शुद्ध होता है; परन्तु शिर पर नहीं मलना चाहिये। विशेष करके बालकों के शिर पर कभी भी नहीं मलना चाहिये। फिरङ्ग रोग में बृहत् मरिचादि तैल बरतना चाहिये।

कुष्ठराक्षस तैल—श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक गलित्कुष्ठ में यह तैल स्थानिक और सर्वाङ्ग पर बरतना चाहिये। नान प्रकार की वेदना; दाह में यह तैल बहुत लाभदायक है। श्वित्र रोग में रुग्णस्थान पर मलने से बहुत लाभ होता है। इस तैल में वस्त्रखण्ड भिगोकर क्षतस्थान पर रखने से क्षत शुष्क होता है।

विल्व तैल—श्लैष्मिक गलित्कुष्ठ में यह तैल स्थानिकरूप में बरतने से असाधारण लाभ होता है; इस तैल से दाह; जलन, पीड़ा शान्त होती है। बच्चों के शिर पर इसको नहीं मलना चाहिये। श्वित्रस्थान पर मलने से विशेष लाभ होता है। मरिचादि तैल के स्थान पर इसको बरत सकते हैं।

पित्तरोग-चिकित्सा

गुडूच्यादि लौह—पित्त के प्रकोप के कारण हाथ-पैर या सर्वाङ्ग में दाह उत्पन्न हो जाये; या रक्तदूष्टि के लक्षण दीखने लगें या रात्रि में नींद न आये; पित्तवृद्धि के अन्य लक्षण दीखने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—पटोलपत्र रस, कोष्ठकाठिन्य होने पर केले के पत्तों का रस।

पित्तान्तक लौह—जिन-जिन अवस्थाओं में गुडूच्यादि लौह बरता जाता है; उनमें इसको बरतना चाहिये।

पित्तान्तक रस—पित्तवृद्धि के साथ पतला मल आने पर यह औषध देनी चाहिये; अनुपान—परवल का शीत कषाय।

महापित्तान्तक रस—पित्तान्तक रस की अपेक्षा अधिक गुणकारी है।

गुडूच्यादि तैल—पित्तवृद्धि के कारण हाथ, पैर या शरीर में अत्यधिक दाह होने पर यह तैल मलना चाहिये, परन्तु ज्वर होने पर मलना उत्तम नहीं। नींद न आने पर भी इसको मल सकते हैं।

कफरोग-चिकित्सा

कफकेतु रस—कफ की अधिकता, नासास्राव, श्वास, कास, गलरोग, गले में पीड़ा, मुखरोग, शिरोरोग, कर्णरोग, दन्तरोग, चक्षुरोग होने पर प्रथमावस्था में इसका व्यवहार करना चाहिये। परन्तु रोग के पुराना होने पर इससे बहुत लाभ नहीं होता। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु।

कफचिन्तामणि—जिन-जिन अवस्थाओं में कफकेतु का उपयोग होता है; उन-उनमें इसको बरतते हैं। रोग की प्रथमावस्था में विशेष लाभकारी है। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु।

श्लेष्मकालानल रस—साधारण औषधियों में यह श्रेष्ठ औषध है। श्लेष्माधिक ऊर्ध्वजत्रु रोग में इसका प्रयोग सब अवस्थाओं में किया जा सकता है। किन्तु धातुक्षय जनित, चिरकालस्थायी शिरोरोग में विशेष लाभ नहीं होता। सामान्यतः शिर में जड़ता, भारीपन; अलसता आदि को नाश करता है। अनुपान—पान का रस, तुलसीपत्र रस अथवा अर्द्रक रस और मधु।

श्लैष्मशैलेन्द्र रस—वातिक और श्लैष्मिक शिरोरोग में अथवा वायुप्रधान श्लेष्मप्रधान, किंवा वात कफप्रधान सान्निपातिक शिर की पीड़ा में यह औषध

महोपकारी है। जिन शिरोरोगों के साथ आमवात, वात; मुख-जिह्वा-गला अथवा कर्णपाक या नासास्राव या दन्तरोग आदि हों, उसमें यह बरतना चाहिये। इसके सिवाय ऊर्ध्व जत्रुगत सब प्रकार के रोगों में अर्थात् आंखों से जलस्राव, मैल आना, दृष्टि हानि; शिर में भारीपन, मसूड़ों का फूलना; आदि शिकायत हो, उनमें यह बहुत लाभकारी है। मलबन्ध न हो तो जयपाल बीज नहीं देना चाहिये; अथवा इसके स्थान पर महाश्लेष्म कालानल का प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—निर्गुण्डी के पत्तों का रस या पान का रस और मधु।

महाश्लेष्मकालानल रस—जिन अवस्थाओं में श्लेष्म कालानल का प्रयोग किया जाता है, उन अवस्थाओं में उसी-उसी अनुपान से इसको बरतना चाहिये।



शिरोरोग-चिकित्सा

लक्ष्मीविलास—वातिक या श्लैष्मिक शिरोरोग में या वाताधिक या श्लेष्माधिक सान्निपातिक शिरोरोग में यह औषध सेवन करानी चाहिये। शिर की पीड़ा के साथ नासास्राव, गले में व्रण, जिह्वाव्रण, मुख में व्रण या पीड़ा, कर्णरोग आदि पक जायें, तो यह उत्तम है। अनुपान—पान का रस; मलबन्ध होने पर आर्द्रक रस और मधु; पान के साथ गोली को चबाकर खा सकते हैं।

महालक्ष्मीविलास—किसी भी प्रकार के शिरोरोग में यह अमृत के समान गुणकारी है। शिरोरोगके साथ अग्निमान्द्य, भूख न लगना; अम्लोद्गार; आन्त्रवृद्धि; रक्तदोष; धातुक्षय या धातुदोषजन्य कुष्ठ, प्रमेह, श्लीपद, नाड़ीव्रण, क्षतकास, नासास्राव; यक्ष्मा; कर्णरोग; नासारोग; मुखरोग, गलरोग, जिह्वारोग, ओष्ठरोग, स्त्रियों का स्त्रीरोग रहे; विशेषतः प्रसूता के लिये महोपकारी है। इससे बल, पुष्टि और रतिशक्ति आती है। अनुपान—पान का रस या आर्द्रक रस और मधु।

नारदीय महालक्ष्मी विलास—इससे बढ़कर शिरोरोग के लिये उत्तम औषध नहीं है। जब अन्य औषधियों से शिरोरोग में लाभ न हो, तब इसको देना चाहिये। शिरोवेदना की किसी भी अवस्था में इसे तुरन्त दे सकते हैं। इसके सामने दूसरी औषध की जरूरत नहीं होती। धातुक्षय या स्त्रियों में आर्त्तव दोष से जो शिरः पीड़ा होती है, वह इससे सद्यः शान्त होती है। यह धातुपोषक, बलकारक; शुक्रवर्धक; आर्त्तवशोधक; अनन्तवात; शंखक शिरोरोगनाशक है।

शिरोवज्र रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक शिरोरोग में या अन्य शिरोरोग की प्रथमावस्था में इसका प्रयोग करना चाहिये। मलबन्ध में इसका प्रयोग करने से मलशुद्धि होती है; शिरोरोग के साथ नासास्राव; आंखों से कम दीखना; मुखस्राव, गले में पीड़ा आदि उपद्रव इससे नष्ट होते हैं। **अनुपान**—आर्द्रक रस और मधु [शिरोऽर्त्ति नाशयत्याशु वज्रयुक्तमिवासुरम् ॥]।

अर्धनाड़ी नाटकेश्वर रस—शिरोरोग में यह नस्य बहुत उत्तम है। जल या स्तन्य दुग्ध (कच्चा दूध) के साथ घिसकर नस्य की भांति देना चाहिये।

दशमूल तैल—वातिक, श्लैष्मिक, शिरोरोग में अथवा सान्निपातिक शिरोरोग में वायु या कफ की प्रबलता होने पर इस तैल का नस्य बहुत लाभदायक है। शिर पर, कनपटी पर इसको मलना चाहिये; शिरोरोग के साथ पुराना ज्वर होने पर सारे शरीर पर इसको मलना चाहिये।

बृहद्दशमूल तैल—उपरोक्त दशमूल तैल से अधिक गुणकारी है। मुख, आंख, नाक, कान में शोथ के साथ वेदना होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। इस तैल को नस्य, पान, सर्वांग मर्दन में बरतना चाहिये।

महादशमूल तैल—बृहद्दशमूल तैल की अपेक्षा अधिक गुणकारी है। वातिक, श्लैष्मिक शिरोरोग नाशक; नस्य, पान, मर्दन में इसको बरतें।

षड्बिन्दु तैल—पैत्तिक, रक्तज शिरोरोग में एवं अनन्तवात, शंखक; सूर्यावर्त्तरोग में बहुत लाभदायक है। नस्य और मर्दन में प्रयोग किया जाता है।

—o—

नेत्ररोग-चिकित्सा

चन्दनलेप—आंख दुःखने लगे या दुःख जाये (सुर्ख हो जाये) आंख में अतिशय दाह हो, आंख से निरन्तर जल का स्राव होता रहे, तो यह लेप पलकों पर लगाना चाहिये [चन्दन घिसकर उसमें थोड़ा सा कर्पूर मिलाकर बरतें]।

निम्बपत्रयोग—आंख लाल हो जायें, इसमें चीस लगती हो; निरन्तर पानी निकलता हो; तब इस औषध को निर्मल वस्त्र में पोटली बांधकर इसका रस तीन बार एक एक बूंद आंख में चुआना चाहिये। [नीम की कोपल—तीन मासा; घिसा हुआ लाल चन्दन—६ मासा; मधु पांच बूंद]।

चन्द्रोदय वर्त्ति—अधिमांस, मांसवृद्धि, तिमिर, काच, अर्बुद, रात्र्यन्ध,

पुष्परोग में यह वर्त्ति मधु या जल के साथ घिसकर आंख में अंजन करनी चाहिये।

चन्द्रप्रभा वर्त्ति—आंख के रोग में सदा प्रयोग में आती है। अर्बुद, काच; तिमिर; रक्तराजिका; अधिमांस; अर्म, रात्र्यन्धता, आदि नेत्र रोगों में इसका अंजन बहुत लाभदायक है।

षड्बिन्दु तैल—नेत्ररोगों की किसी भी अवस्था में इस तैल का नस्य दिया जा सकता है।

वासादि क्वाथ—नेत्ररोग की आमावस्था बीत जाने पर एवं चक्षु से जल और रक्तस्राव होता हो तो यह क्वाथ पीने को देना चाहिये और इस क्वाथ से आंख पर सेचन करना चाहिये। क्वाथ पीने को देना हो तो इसमें ३ मासा या ६ मासा शुद्ध गुग्गुलुचूर्ण मिला देना चाहिये।

नेत्राशनि रस—नेत्ररोग की किसी भी अवस्था में कोई भी लक्षण होने पर यह औषध सेवन करने के लिये रोगी को देनी चाहिये। आंख से रक्तस्राव या रक्तज, वातज, पित्तज या श्लेष्मज अभिष्यन्द, रात्र्यन्धता, तिमिर काच; नीलिका, रोग में इसको बिना सोचे प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—उष्ण जल [नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च। युञ्जीत तान् निहन्त्येव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥]।

नयनामृत लौह—नेत्राशनि योग की भांति सब नेत्ररोगों में बरतना चाहिये। अनुपान—भृंगराज रस और मधु [यावतो नेत्ररोगांश्च निहन्यान्नात्रसंशयः॥]

तिमिरहर लौह—तिमिररोग की किसी भी अवस्था में इसे बरत सकते हैं; परन्तु नेत्र के अन्य रोगों में अधिक लाभदायक है। अनुपान—घृत और मधु [लौहं तिमिरकं हन्ति सुधांशुस्तिमिरं यथा]।

क्षतशुक्रहर गुग्गुलु—नेत्र शुक्लगत रोग में अर्थात् क्षतशुक्र एवं व्रणशुक्र या अव्रण शुक्र रोग में या काचरोग में इसका प्रयोग होता है।

सप्तामृत लौह—सब प्रकार के चक्षुरोगों में एवं ऊर्ध्वजत्रुरोगों में यह अमृत के समान लाभकारी है। अनुपान—घी और मधु।

त्रिफलाद्य घृत—तिमिर नेत्ररोग में यह बहुत लाभदायक है। इसको सन्ध्याकाल में खाना चाहिये। अनुपान—गरम दूध।

महात्रिफलाद्य घृत—नेत्ररोग में जितने घृत हैं। उन सब में यह श्रेष्ठ है। वातज, पितज, श्लेष्मज सब प्रकार के नेत्ररोगों में यह बरता जाता है। चारों

प्रकार के अभिष्यन्दों में; आंख से अनवरत थोड़ा या बहुत जल बहने पर; रक्त-स्राव होने पर; रात्र्यन्धता; तिमिर, काच, पलकों के रोग; नीलिका, अधिमन्थ, अर्बुद; अल्पदृष्टि-कण्डू, दूरदृष्टि, इन सब शिकायतों में यह बरता जाता है; इससे आंख निर्मल होती है, शारीरिक बल बढ़ता है। अनुपान—गरम दूध।

कर्णरोग-चिकित्सा

भैरव रस—कर्णरोग में कर्णगुहा में क्षत हो, या उससे स्राव होता हो, वेदना रहे, यह औषध देनी चाहिये। इसके साथ में ज्वर, अग्निमान्द्य, ग्रहणी, कफ की प्रबलता होने पर यह औषध विशेष लाभदायक है। अनुपान—निर्गुण्डी का पत्र रस और आर्द्रक रस एवं मधु।

इन्दु वटी—कर्णनाद, कर्णशूल, कर्णस्राव, बाधिर्य, कर्णप्रतिनाह, कर्णार्श अथवा जिन सब कर्णरोगों में रक्तदुष्टि, प्रमेह; गनोरिया कारण हों; या कर्णरोग में वातिक, पैत्तिक शिरःपीड़ा के लक्षण दीखते हों; यह औषध देनी चाहिये। साधारण अनुपान—आमल की रस या क्वाथ; कर्ण विद्रधि में-सहिजन छाल का रस और कर्णशोथ में पुनर्नवा का रस।

सारिवादि वटी—कर्णनाद, कर्णशूल, कर्णस्राव, बधिरता, कर्णक्ष्वेड, कर्ण-विद्रधि, कर्णशोथ, कर्णपाक, कर्णार्श आदि रोगों में इन्दुवटी और महालक्ष्मी-विलास आदि औषध देने से लाभ न होने पर अथवा जिन सब रोगों में रक्तदोष, प्रमेह, शिरःपीड़ा, अम्लपित्त आदि रोग कारण हों; विशेष करके सिफलिस और गनोरिया कारण हों; उनमें निर्विचार रूप से यह औषध देनी चाहिये। साधारण अनुपान—चन्दन का क्वाथ, इन्दुवटी की भांति अनुपान देने चाहियें।

बिल्व तैल—बधिरता, कर्णस्राव, पूतिकर्ण, कर्णशूल, कर्णनाद रोग में यह तैल कान में डालना चाहिये।

शम्बूकादि तैल—सदा काम में आनेवाली औषध है। कान से स्राव निरन्तर रहने पर इसे बरतना चाहिये।

दार्व्यादि तैल—कर्णशूल, कर्णनाद, बधिरता, पूतिकर्ण, कर्णक्ष्वेड, कृमिकर्ण, कर्णपाक, कर्णकण्डू, कर्णप्रतिनाह, कर्णशोथ, कर्णस्राव आदि रोगों में यह तैल कान में डालना चाहियें।

नासारोग-चिकित्सा

वासा क्काथ—पीनस प्रतिश्याय, नासापाक, नासाप्रतिनाह, नासास्राव, क्षवथु आदि नासारोग में यह क्काथ देना चाहिये। सहसा ठण्ड लग जाने से या शैत्य संयोग से कफ का संचय होने पर इससे विशेष लाभ होता है। इसके सेवन करने पर कफ तरल होता है और कोष्ठशुद्धि होती है एवं उदराध्मान कम होता है। वातपैत्तिक ज्वर, सान्निपातिक ज्वर, निमोनिया या फेफड़े के रोगों में अथवा कासरोग में कफ छाती में रुका हो; तब यह क्काथ देना चाहिये।

कट्फलादिचूर्ण—पीनस, प्रतिश्याय आदि रोगों में एवं जिन सब रोगों में स्वरभंग; तमक श्वास, कफज या सान्निपातिक कास, ज्वर और श्वासकष्ट आदि उपद्रव हों, उनमें यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु।

व्योषाद्यचूर्ण—पीनस और प्रतिश्याय में यह औषध देनी चाहिये। जिन सब रोगों में श्वास, कास, अरुचि आदि लक्षण हों; उन सब में यह उपयोगी है।

शोभाञ्जन नस्य—पीनस, प्रतिश्याय में कफ के पकने के लक्षण होने पर इसका नस्य देना चाहिये।

पंचामृत रस—पीनस, प्रतिश्याय रोग में अथवा जिन सब रोगों में ज्वर, शरीर में भारीपन, आलस्य, शिर में दर्द, कास; मुख में पानी भरना, आंखों से जलस्राव आदि उपद्रव हों, उनमें यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु [नाड़ी व्रणे ज्वरे नखदन्तविषातुरे। पञ्चामृतरसो योज्यः सर्व-रोगप्रशान्तये]।

चित्रक हरीतकी—वातिक, पैत्तिक, कफज सब प्रकार के नासारोग में, विशेषतः प्रतिश्याय, पीनस; पुराना प्रतिश्याय, टौंसिल, एडीनौयड्स के लिये तथा आंखों में भारीपन रहने के लिये अव्यर्थ औषध है। इससे मलबन्ध दूर होता है। इसका उपयोग सायंकाल में गरम पानी से करना चाहिये।[1]



१ नासरोग में व्याघ्री तैल, शिग्रुतैल नासा में डालना चाहिये, पूतिनस्य; पीनस, पुराने प्रतिश्याय में उत्तम है। इसमें व्योषादि गुटिका मुख में रखने के लिये देनी चाहिये। पक्व पीनस में सर्पिर्गुड़ बरतना चाहिये।

मुखरोग-चिकित्सा

दशनसंस्कार चूर्ण—इस चूर्ण से दान्त साफ करने पर कृमिदन्त, दान्त का दुःख नष्ट होता है। प्रतिदिन बरतने से दान्त खराब नहीं होते।

वकुलाद्य तैल—इस तैल से हिलनेवाले दान्त दृढ़ रहते हैं; इस तैल को मुख में धारण करके गण्डूष करना चाहिये।

कालक चूर्ण—दन्तनाड़ी; जिह्वारोग; गलरोग एवं सब प्रकार के मुखरोगों में इससे लाभ होता है।

स्वल्प खदिरादि वटी—सब प्रकार के मुखरोगों की प्रसिद्ध औषध है। मुख में रखने से मसूड़ों का रक्त स्राव; दन्तशूल; ओठ, जिह्वा, तालुरोग गले के रोग नष्ट होते हैं।

सप्तच्छदादि क्वाथ—दन्तमूल से रक्त, पूयादि स्रवित होने पर, दन्तशूल, शोथ, वेदना, दन्तविद्रधि, दन्तनाड़ी में यह क्वाथ बहुत लाभदायक है।

रसेन्द्र वटी—शीताद, परिदर, महाशौषिर, दन्तनाड़ी; दन्तविद्रधि रोगों में इसको बरतना आवश्यक है। इससे वायु, पित्त, कफ का प्रकोप शीघ्र कम होता है। नाड़ीव्रण और विद्रधि शीघ्र शान्त होती है। अनुपान—दन्तविद्रधि में सहिजन की छाल का रस; शीतादरोग में त्रिफला क्वाथ; शेष रोगों में आर्द्रकरस।

कटुकादि क्वाथ—गलरोग या कण्ठरोग की किसी भी अवस्था में यह क्वाथ देना चाहिये। एक समय यह क्वाथ और दूसरे समय अमृतादि या खदिराष्टक क्वाथ देना चाहिये।

कटुकादिचूर्ण—गलरोग या कण्ठरोग में यह औषध मध्याह्न में देनी चाहिये। अनुपान—नीम की छाल का रस या क्वाथ।



स्त्रीरोग-चिकित्सा

स्तन्य दोष में—

दशमूल क्वाथ—वायु द्वारा दूध दूषित होने पर यह क्वाथ प्रसूता स्त्री को देना चाहिये। थोड़ा-सा क्वाथ मधु के साथ शिशु को भी देना चाहिये। किस दोष से दूध दूषित हुआ है, यह जहां पर निश्चय न हो सके, वहां पर इस क्वाथ को बरतना चाहिये। दशमूल—त्रिदोषनाशक है।

गुडूच्यादि क्काथ—पित्त के कारण दूधके दूषित होनेके लक्षण उपस्थित होने पर यह क्काथ प्रसूता और शिशु को देना चाहिये।

भार्ग्यादि क्काथ—श्लेष्मा द्वारा स्तन्य दूषित होने पर यह क्काथ बालक और प्रसूता को देना चाहिये।

स्तन्यवर्धक योग—कार्पासमूल और ईक्षुमूल इनको समान भाग लेकर कांजी के साथ पीसकर खाना चाहिये या विदारीकन्द का चूर्ण दूध और चीनी के साथ देना चाहिये।

आर्त्तव दोष; योनिरोग—रक्तप्रदर—श्वेतप्रदर तथा वन्ध्या चिकित्सा

धात्र्यादि चूर्ण [रजोरोधक योग]—इससे आर्त्तवदोष, वन्ध्यत्व, प्रदर, अत्यधिक रक्तस्राव में देने से रक्त बन्द हो जाता है। परन्तु अधिक देने पर रक्त बन्द होने के पीछे भी देते रहने से रजो लोप हो जाता है; इससे गर्भ नहीं रहता। अनुपान—तण्डुलोदक [हरड़, आंवला और रसांजन; इनका चूर्ण समान भाग; मात्रा १ आने से २ आना भर]।

रजः प्रवर्त्तनी वटी—आर्त्तव का थोड़ा आना; रजोलोप; कष्टार्त्तव, वातिक आर्त्तव दोष; वातिक रक्तप्रदर, अल्प रक्तस्राव; इनके कारण अधोनाभि भाग में वेदना होने पर यह गोली देनी चाहिये। गर्भावस्था में इसको न बरतें। प्रसव वेदना होने पर प्रसव में देरी होने पर इसको देना चाहिये। अनुपान—गुड़हल के लाल फूल (लाल जपाफूल) की कली और मधु; इसको जल के साथ मिलाकर खाने को दें।

दार्व्यादि क्काथ—श्लैष्मिक आर्त्तव दोष, प्रदररोग, वन्ध्यत्व, अत्यधिक रक्तस्राव में यह क्काथ प्रतिदिन प्रातः देना चाहिये। यह क्काथ अधिक रक्तरोधक रक्तशोधक तथा श्वेतप्रदर के क्षत को नष्ट करता है। यह बहुत परीक्षित, सदा काम में आनेवाली औषध है।

अशोक क्काथ—श्लैष्मिक रक्तदोष तथा रक्तप्रदर रोग में, अति रक्तस्राव में इसको बरतना चाहिये। यह रक्तरोधक है। इससे रक्त बन्द न हो तो दार्व्यादि क्काथ देना चाहिये।

अनन्त्यादि क्काथ—वातिक, पैत्तिक आर्त्तवदोष, रक्तप्रदर में तथा वन्ध्यत्व की अवस्था आर्त्तव शुद्धि के लिये इसका व्यवहार होता है। श्वेतप्रदर में विशेषतः

इसका व्यवहार होता है। आर्त्तव शुद्धि होने पर इसको बन्द कर देना चाहिये।

पुष्यानुग चूर्ण—यह उत्तम रक्तरोधक है। वातिक, पैत्तिक, सान्निपातिक प्रदर में, विशेष करके श्लैष्मिक प्रदर में इसका व्यवहार होता है। विशेष करके रक्तस्राव के कारण हृदयरोग के लक्षण दीखने पर यह अधिक लाभ करता है। श्वेतप्रदर में योनि में क्षत हो जायें; इन क्षतों से पूय तथा क्लेदयुक्त स्राव होता हो, तो इसको देना चाहिये। यह आर्त्तव शोधक है। अनुपान—चावलों का धोवन या शीतल जल।

प्रदरान्तक लौह—रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, नानावर्ण का स्राव, क्लेद और पूयस्राव, योनिप्रदाह, ऋतुकालीन वेदना, कुक्षिशूल आदि में इसका व्यवहार करना चाहिये। सामान्यतः प्रदर की सब अवस्थाओं में व्यवहार किया जाता है। यह अति पुष्टिकर और बलवर्धक है। अनुपान—चावलों का धोवन।

प्रदरारि लौह—पुष्यानुग चूर्ण के समान व्यवहरणीय है। लौह और चूर्ण होने से क्वाथ और चूर्ण की अपेक्षा अधिक गुणकारी है। प्रबल रक्तस्राव को बन्द करने में इसकी शक्ति अतुलनीय है। अनुपान—चावलों का धोवन।

नष्टपुष्पान्तक रस—वातिक, श्लैष्मिक, आर्त्तवदोष, प्रदररोग में यह बहुत लाभदायक है। पैत्तिक रजोदोष, प्रदर में विशेष लाभ करता है। सब प्रकार के योनि रोगों में विशेषतः योनिशूल; ऋतुकाल में दर्द; योनि से नाना प्रकार का क्लेद निकलने पर इसका प्रयोग करने से जल्दी लाभ होता है। अनुपान—तण्डुलोदक।

प्रदरान्तक रस—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, प्रदर में यह औषध बरती जाती है। प्रदर के साथ मन्द-मन्द ज्वर और दाह रहने पर इससे विशेष लाभ होता है। अनुपान—गूलर का रस और मधु।

पुष्कर लेह—रक्तप्रदर, बाधक; आर्त्तवदुष्टिरोग में अशोक क्वाथ, दार्व्यादि क्वाथ, पुष्यानुग चूर्ण के देने से भी रक्तस्राव बन्द न हो एवं इस अवस्था में मलबन्ध हो और विशेष करके ऋतु बन्द होने के लक्षण दीखें तब यह अमृत के समान है। आर्त्तव शुद्धि के लिये अन्य अवस्थाओं में भी दे सकते हैं। अनुपान—दूध और मधु [सर्वरोगप्रशमनो बलवर्णाभिवर्धनः। पुष्कराख्योलेहवरः सर्वत्रैवोपयुज्यते ॥]।

अशोक घृत—रक्तप्रदर में बहुत लाभदायक है। अत्यधिक रक्तस्राव होने पर इसका प्रयोग करने से प्रबल रक्तस्राव बन्द होता है। पुरातन अवस्था में यह घृत उत्तम है। सामान्यतः ज्वर और अतिसार रहने पर इसको नहीं देना चाहिये। परन्तु अशोक घृत मन्दाग्नि में थोड़ी मात्रा से दे सकते हैं। रक्त बन्द करके रोगी का शरीर स्वस्थ करने में इसकी शक्ति अपार है। श्वेत-नील-पीतवर्ण स्राव में यह लाभकारी है। ऋतुकालीन वेदना; कुक्षिवेदना, योनिशूल; कृशता, पाण्डुता, रक्तहीनता, मदाग्नि, अरुचि, कामला आदि भिन्न-भिन्न लक्षण प्रदर में होने पर इसको देना लाभदायक है। ऋतुस्राव बन्द होने पर रक्तस्राव हो तब इसका उपयोग उत्तम है। अशोक घृत ऋतुस्राव बन्द नहीं करता।

फलकल्याण घृत—वन्ध्या; मृतवत्सा, सब प्रकार के जरायु दोष, आर्त्तव दोष, प्रदर, गर्भस्राव; गर्भपात और योनिरोगों में बरता जाता है। योनि से अतिशय स्राव या क्लेदयुक्त स्राव, योनिशूल; कटिशूल या रक्तहीनता आदि अवस्थाओं में यह लाभकारी है। जिन स्त्रियों में गर्भस्राव या गर्भपात होता है। या मृत सन्तान उत्पन्न होती है या सन्तान उत्पन्न होकर तुरन्त मर जाती है; या रुग्ण-दुर्बल सन्तान होती हो; उनके लिये यह घृत अमृत के समान है। इसको ठीक प्रकार सेवन करने से पुत्र ही उत्पन्न होता है। अनुपान—गरम दूध।

बृहत् शतावरी घृत—वातिक, पैत्तिक आर्त्तवदोष; प्रदर; योनिरोग में उपयोगी है। अनुपान—गाय का दूध।

सितकल्याण घृत—जिन अवस्थाओं में बृहत् शतावरी घृत बरतते हैं, उन सब में इसका व्यवहार होता है। इसके प्रयोग से वन्ध्या स्त्री गर्भवती होती है; एवं योनिरोग, प्रदर और बाधक आदि आरोग्य होता है। अनुपान—गरम दूध।

कुमारकल्पद्रुम घृत—यह सब प्रकार के स्त्री रोगों की महौषध है। आर्त्तव दुष्टिजनित वन्ध्या, जन्मवन्ध्या, वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक सब प्रकार की आर्त्तवदुष्टि, योनिरोग, प्रदर पुराना होने पर उनमें यह उपयोगी है। जिन औरतों में ऋतुस्राव कम हो; या बन्द हो जाये; या वेदना के साथ स्राव हो, उनके लिये महोपकारी है। अतिस्राव होने पर अशोक घृत बरतना चाहिये; स्राव कम हो तो इसे बरतना चाहिये। जिन स्त्रियों में गर्भस्राव, गर्भपात, मृतसन्तान या थोड़ी आयु में मरनेवाली सन्तान उत्पन्न हों उनमें यह घृत देना बहुत उत्तम है; उनके लिये

अमृत तुल्य है। गर्भावस्थामें इसको बरत सकते हैं; अनुपान—बकरी का दूध या गाय का दूध।

गर्भिणी रोगचिकित्सा—

शृंगावलेह—गर्भवती को जब श्वास हिक्का उत्पन्न हो जाये तब यह औषध देनी चाहिये; शृंग्यादि चूर्ण को भी इस अवस्था में बरत सकते हैं; अन्य औषध नहीं देनी चाहिये। कास, अरुचि, वमन, कण्ठरोग आदि इससे नष्ट होते हैं; अनुपान—आर्द्रक रस और मधु।

ह्रीवेरादि क्वाथ—गर्भाशय के भ्रंश के कारण आमाशय, पक्वाशय में दाह; पार्श्ववेदना, पृष्ठवेदना, या प्रदर या रक्तस्राव होने पर यह क्वाथ देना चाहिये। उदराध्मान या मलरोध होने पर इस क्वाथ में अमलतास का गूदा ½ तोला मिला देना चाहिये। गर्भस्राव-गर्भपात होने पर यह क्वाथ देना चाहिये। ह्रीवेरादि क्वाथ से लाभ न हो, रक्तस्राव अधिक हो तो **बृहत् ह्रीवेरादि क्वाथ** देना चाहिये।

उत्पलादि क्वाथ—गर्भावस्था में मासिक ऋतुकाल में ऋतुस्राव हो जाये, गर्भाशय निर्बल हो जाये, दो या तीन सन्तान होने के पीछे या प्रसव के पीछे गर्भाशयमुख में विदीर्णता आ जाये; जिससे रक्तस्राव होता हो; गर्भावस्था में बार-बार रक्तस्राव होता हो; रक्तस्राव होने पर वेदना, अत्यधिक दाह, प्यास आदि रहने पर पित्त के लक्षणों की प्रबलता में यह क्वाथ देना चाहिये।

पलादि क्वाथ—गर्भवती को वात पित्तादि किसी भी प्रकार का ज्वर होने पर ज्वर की प्रथम अवस्था में यह क्वाथ देना चाहिये; ज्वर के उपद्रवों में नहीं देना चाहिये।

वासादि क्वाथ—ठण्ड लगने से या शीत क्रिया से गर्भवती की छाती में कफ सञ्चित हो जाये, इससे श्वासकष्ट, हिक्का, उदराध्मान आदि दिखाई दें, तब यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये। इससे कफ जल्दी तरल हो जाता है।

बृहदग्निकुमार रस—गर्भावस्था में मन्दाग्नि, मलबन्ध; अजीर्ण के लक्षण दीखने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—गरम जल।

भुवनेश्वर—बृहत् अग्निकुमार जिन अवस्थाओं में बरतते हैं; उनमें इसे भी बरतना चाहिये। सूतिका रोग में पाचन सम्बन्धि विकार होने पर दोनों को बरतना चाहिये।

श्वेत चूर्ण (शुभ्रपर्पटी)—गर्भावस्था में मूत्रकृच्छ्र, मूत्ररोग, कोष्ठकाठिन्य, उदर वेदना, शोथ अम्लपित्त के लक्षणों में बहुत लाभदायक है। नाना प्रकार की अवस्था में विविध अनुपान से बरतना चाहिये [सोरा ४ तोला, फिटकरी २ तोला, सैन्धव ½ तोला; इनका चूर्ण कर लें]।

श्वेत पर्पटी (अम्लादि)—सामान्यतः अजीर्ण या अम्लरोग में बरतते हैं। विष्टब्धाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण, अम्लपित्त की प्रथम अवस्था में यह लाभ करती है; आमाजीर्ण में लाभ नहीं करती। मुख्यतः वायु और पित्तजनित अनेक रोगों में अनुपान भेद से इसका प्रयोग होता है। ज्वर में पसीना और मूत्र लाने के लिये इसे बरतना चाहिये। गोनोरिया की प्रथमावस्था में; वमन में, कामला रोग में, सहसा किसी कारण से मूत्र रुक जाने पर या थोड़ा आने पर इसे बरतना चाहिये। अनुपान—मलेरिया की प्रथम अवस्था में जब ज्वाला-दाह; पूयस्राव हो तब अलसी या ईषबगोल अथवा बीहीदाने के लुवाब के साथ; वमन होने पर-लाजोदक; कामला रोग में-कच्ची हल्दी का रस और मधु; प्यास अधिक होने पर-सौंफ के अर्क के साथ; शूलरोग में-नारियल के पानी से; अतिसार में-कर्पूरोदक से; प्लीहा और यकृत रोग में-स्नुहीपत्र आग पर गरम करके उसको निचोड़ कर निकाले रस के साथ देना चाहिये [सोरा ४ तोला; फिटकरी १ तोला; नौशादर ½ तोला इनका बारीक चूर्ण करके आग पर द्रव बनाकर कांसी की थाली में फैलाकर कांसी के पात्र से चूर्ण कर लेना चाहिये]।

लवङ्गादि चूर्ण—गर्भवती को प्रबल अतिसार या पतला मल, रक्तातिसार, आमाशय उदर में दर्द; ग्रहणी में दाह, प्रदर, शोथ; होने पर यह औषध बरतनी चाहिये। सूतिका रोग में भी ये लक्षण होने पर इसका व्यवहार करना चाहिये, अनुपान—बकरी का दूध।

प्राणवल्लभ रस—गर्भवती को वमनेच्छा या वमन की प्रबलता होने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—अनार का रस, बीहीदाने का रस, या पटोलपत्र रस।

गर्भविनोद रस—गर्भवती के ज्वर की प्रथमावस्था में यह बहुत लाभकारी है; ज्वर के साथ हाथ-पैर में दाह; पतला मल या अतिसार होने पर लाभ करता है; अनुपान—तुलसीपत्र रस और मधु।

गर्भचिन्तामणि—जिन अवस्थाओं में गर्भविनोद रस बरतते हैं; उनमें ही इसका व्यवहार होता है। अनुपान—तुलसीपत्र रस और मधु।

बृहत् गर्भचिन्तामणि—गर्भवती का ज्वर पुराना और धातुगत हो जाये, साथ में दाह, प्यास, रक्तस्राव, वमनेच्छा, वमन, अरुचि, गर्भशूल, गर्भाशय विकृति; दुर्बलता; उदराध्मान; मल-मूत्र रोध या वात-पित्ताधिक के अन्य लक्षण हों या वायु की अधिकता से गर्भ शुष्क होता हो, तब यह औषध देनी चाहिये। ज्वर उतर जाने पर भी ये सब लक्षण रहने पर इसका प्रयोग कर सकते हैं; अनुपान—पटोलपत्र रस और मधु।

सूतिकारोग चिकित्सा

दशमूल क्वाथ—प्रसवोपरान्त प्रसूता के शरीर की दर्द; शरीर में भारीपन, ग्लानि, अवसाद, ज्वरप्रतीति, होने पर एवं प्रसूता में रोग उत्पन्न न हो, इसलिये प्रसव के तुरन्त पीछे यह क्वाथ एवं वातगजाङ्कुश प्रयोग करना चाहिये।

सूतिका दशमूल क्वाथ—वातपित्त के प्रकोप के कारण प्रसूता को ज्वर, हाथ-पैर आदि में दाह, साथ में मूत्ररोध, पतला मल होने पर यह क्वाथ देना चाहिये।

देवदार्व्यादि क्वाथ—सूतिका रोग में वात-पित्त-कफ इनके प्रकोप से ज्वर, शूल, कास, श्वास, मूर्च्छा, कफजन्य शिरःपीड़ा, प्रलाप. तृष्णा, दाह, तन्द्रा, अतिसार, वमन आदि उपद्रव होने पर यह क्वाथ रोगी को देना चाहिये।

पिप्पल्यादि या बृहत् पिप्पल्यादि क्वाथ—वायु की रुक्षता के कारण प्रसूता में मकल्लशूल के लक्षण दीखने लगें; अथवा इस रोग में ग्रन्थि उत्पन्न हो जाये; तो यह क्वाथ देना चाहिये। इसके प्रयोग से मल-मूत्र का अवरोध, उदराध्मान; बस्ति-नाभि-उदर वेदना, ज्वर आदि उपद्रव दूर होते हैं। यह सदा व्यवहार करने योग्य है।

सूतिकारि रस—सूतिकारोग की प्रथमावस्था में रोगी को श्लैष्मिक ज्वर, अरुचि, अल्पशोथ, सर्दिजनित नासास्राव आदि लक्षण हो जायें; तब यह औषध इसको देनी चाहिये। परन्तु सूतिकारोग के इन लक्षणों में यह अधिक लाभ नहीं करती। अनुपान—सोंठ, मरिच, पीपल और दूध।

सूतिका विनोद रस—सूतिकारोग की प्रथमावस्था में वातिक वा श्लैष्मिक ज्वर के लक्षण दीखने पर साथ में विष्टब्धाजीर्ण, उदर में वेदना, शिर और माथे पर भार अनुभव हो तो यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—गरम जल।

वृहत् सूतिका विनोद रस—सूतिकारोग की प्रथमावस्था में पैत्तिक और श्लैष्मिक ज्वर एवं साथ में आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण; समय समय पर हाथ-पैर में दाह, शरीर में वेदना, शिर में भारीपन, सर्दी के लक्षण दीखने पर यह औषध प्रसूता को देनी चाहिये। अनुपान—तुलसी पत्र रस और मधु।

अष्टांगावलेह—प्रसूता को किसी भी रोग के साथ श्वास या हिक्का अथवा दोनों हो जायें, तब इनकी शान्ति के लिये यह औषध देनी चाहिये। इसके स्थान पर शृंग्यादिचूर्ण भी मधु से या अवस्थानुसार अनुपान से देना चाहिये।

सूतिकान्तक रस—सूतिकारोग की प्रथमावस्था में वातिक, श्लैष्मिक या वातश्लैष्मिक ज्वर एवं साथ में शोथ, अवसाद, छर्दि, कास, गले में पीड़ा, वातिक या श्लैष्मिक ग्रहणी, अग्निमान्द्य एवं पतला मल होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—ज्वर प्रबल होने पर तुलसी पत्ररस और मधु, पतला मल आने में भर्जित जीरा चूर्ण और मधु; या मोथे का रस और पिप्पली चूर्ण।

सूतिकान्तक रस (दूसरा)—प्रसवरोग की पुरातन या मध्य अवस्था में पित्तश्लैष्मिक ज्वर, शोथ, ग्रहणी, अतिसार, ज्वरातिसार, कास हो, विशेषतः रक्तप्रवाहिका, रक्तातिसार के लक्षण दिखाई दें, तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—ज्वर में, तुलसी पत्र रस, अतिसार में-मोथे का रस; शोथ में, पुनर्नवा का रस; रक्तातिसार में—गन्धाहुली या अयापान का रस।

सूतिकारि रस—सूतिकारोग की मध्य या पुरातन अवस्था में वातिक पैत्तिक, श्लैष्मिक ज्वर, साथ में ग्रहणी, अतिसार, शोथ, पाण्डु, शूल वेदना होने पर यह महौषध रोगी को देनी चाहिये। इससे निर्वलता, अवसाद आदि शान्त होते हैं। अनुपान—गन्धाहुली का रस।

महाभ्रवटी—सूतिकारोग की मध्य अवस्था में वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, शूल वेदना, आदि होने पर यह औषध रोगी को देनी चाहिये। अनुपान—गन्धप्रसारणीका रस और मधु।

रसशार्दूल—सूतिका रोग की कुछ पुरानी और मध्य अवस्था में रोगी को वातिक या श्लैष्मिक ज्वर, कास, अंगों में दर्द, शिरोवेदना, अवसाद आदि होने पर यह औषध देनी चाहिये। इसका प्रयोग पूर्वाह्न में करना अधिक उत्तम है; अनुपान—पान का रस और मधु।

महारसशार्दूल—सूतिकारोग की पुरातन अवस्था में जब दूसरी औषध से लाभ न हो, तब इसको देना चाहिये। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, जीर्णज्वर, ज्वरातिसार, कास, अतिसार, रक्तातिसार, ग्रहणी समय समय पर हाथ-पैर में दाह, अंगों में दाह; शिर में दर्द-चक्कर, अनिद्रा, मन्द-मन्द ज्वर; दुर्बलता, क्षीणता, विशेष करके प्रदर, अधिक रक्तस्राव, वमन, अरुचि आदि होने पर यह औषध देनी चाहिये; अनुपान—पान का रस और मधु (निहन्ति विविधान् रोगान् ज्वरान् दाहान् वमिं भ्रमिम् ॥] ।

बृहत् रससार्दूल—सूतिकारोग की पुरातन अवस्था में वातपित्ताधिक लक्षण दीखने पर एवं वातपित्ताधिक प्रकृति में बहुत लाभदायक है। श्लेष्माधिक लक्षणों में श्लेष्मप्रकृति में इसके प्रयोग से अधिक लाभ नहीं होता। यह शोषक गुण न होकर स्निग्ध गुणयुक्त है। मन्द मन्द ज्वर, शरीर और हाथ-पैरों में दाह, अतिशय दुर्बलता, कृशता, पैत्तिक-धातुपैत्तिक कास, कोष्ठकाठिन्य, उदर में ज्वाला, तालुदाह, शिर में भार; विशेष करके प्रसव के पीछे अधिक रक्तस्राव, शरीर में रक्त की कमी, पाण्डुवर्ण, दुर्बलता; अरुचि, वमन, भ्रम, वमनेच्छा आदि लक्षणों में यह औषध देनी चाहिये। यह अतिशय बलकारक और पुष्टिकारक है। अनुपान—पान का रस और मधु।

शिशुरोग-चिकित्सा

दशमूल क्वाथ—वातिक स्तन्य दुष्टिरोग में यह क्वाथ देना चाहिये। जहां पर स्तन्यदोष में दोष का निश्चय न हो सके, वहां पर यह क्वाथ उत्तम है। पारिगर्भिक या अन्य किसी रोग में बच्चे को आक्षेप हों तो यह क्वाथ देना चाहिये। बालक और माता दोनों को देना उत्तम है।

गुडूच्यादि क्वाथ—पैत्तिक स्तन्य दुष्टिरोग में यह क्वाथ माता और शिशु को देना चाहिये।

भार्ग्यादि काथ—श्लैष्मिक स्तन्य दुष्टिरोग में यह काथ शिशु तथा उसकी धात्री को देना चाहिये।

पटोलादि काथ—शिशु को अजगल्ली, तालुकण्टक रोग या अन्य किसी प्रकार के व्रणशोथ, शीतपित्त, विसर्प विस्फोट, इसके कारण उत्पन्न क्षत एवं इसके कारण रहने वाले ज्वर में यह काथ देना चाहिये। इससे लाभ न हो तो अमृतादि, निम्बादि या खदिरादि काथ देना चाहिये।

मुस्तकादि काथ—शिशु को किसी भी प्रकार का ज्वर होने पर यह काथ देना चाहिये।

कस्तूरी भूषण—श्लैष्मिक ज्वर, वातश्लैष्मिक ज्वर में तथा जिन ज्वरों में उपद्रव दिखाई दें; उनमें यह औषध बरतनी चाहिये। अनुपान—घिसा हुआ रुद्राक्ष और मधु।

स्वल्प अग्निमुखचूर्ण—शिशु को स्वभाव से या अन्य किसी रोग के साथ अजीर्ण, अग्निमान्द्य, आध्मान या मलबन्ध रहने पर यह महौषध देना उचित है। जिन बच्चों में निर्बलता के साथ स्वभाव से ही प्लीहा या यकृत बढ़ जाये, उनके लिये यह औषध अमृत के तुल्य है; अनुपान—गरम जल।

हिंग्वष्टक चूर्ण—ज्वर और प्रकृति से ही बच्चे को अग्निमान्द्य, आध्मान रहे, भूख कम हो तो यह चूर्ण देना उत्तम है। अनुपान—उष्ण जल।

बालक रस—बालकों को पैत्तिक, श्लैष्मिक या किसी प्रकार का नव ज्वर, पुरातन ज्वर, एवं ज्वर के साथ कास, वेदना होने पर प्रथम यह औषध बरतनी चाहिये। अनुपान—तुलसीपत्र रस और मधु।

बालरोगान्तक रस (या द्वितीय बालक रस)—प्रथम बालक रस से लाभ न हो तो यह रस देना चाहिये। अनुपान—तुलसीपत्र रस और मधु।

कफचिन्तामणि—बच्चे को आक्षेप, वातजनित, श्लेष्मजनित ज्वरादि सामन्य सब रोगों में इसका प्रयोग होता है। अनुपान—आक्षेप में; जटामांसी काथ या बलामूल का रस; कफजनित रोग में तुलसीपत्र और मधु।

कुमारकल्याण रस—बच्चे को आक्षेप एवं पारिगर्भिक रोग में अथवा वायु या पित्तप्रधान अथवा वातपित्त प्रधान श्वास, वमन, ग्रहणी आदि किसी रोग

की पुरातन अवस्था में इसको बरतना चाहिये। स्तन्यदोष जन्य वातिक, पैत्तिक-रोग में एवं तालुकण्टक रोग में इसको बरतना चाहिये।

हिंगु लेप—प्लीहा अति कठिन और बड़े आकार की हो जाये तो यह लेप दिन में लगाना चाहिये।

मुसव्वर योग—प्लीहा या यकृत बढ़ जायें; या वेदना हो तो यह औषध बरतनी चाहिये। अनेकस्थानों में प्लीहा रोग की प्रथमावस्था में केवल इसी के बरतने से लाभ हो जाता है। यह तीक्ष्ण गुण विशिष्ट और उष्ण वीर्य है। इसलिये जल के साथ देनी चाहिये। बालकों को इसके खाने में कष्ट होता है; इसलिये चार साल से कम आयु के शिशु को नहीं देनी चाहिये। यह क्षुधावर्धक; बलवर्धक है। अनुपान—दूध [मुसव्वर; शोधित हींग; पिप्पलीचूर्ण, लहसुन की कली; प्रत्येक समान भाग लेकर जल से पीस कर २ रत्ती की गोली बना लें; बच्चों के लिये ½ आना मात्रा]।

बालचातुर्भद्रिका—ज्वरातिसार, कास, में इसका उपयोग होता है। अनुपान—मोथे का रस और मधु।

विडङ्गादि चूर्ण—आमातिसार, अग्निमान्द्य, अजीर्णरोग में इसको बरतना चाहिये। कृमिजनित अतिसार में यह उपयोगी है। अनुपान—मधु और स्तनदुग्ध।

लवंगचतुःसम—वमन, आमातिसार, आमग्रहणी की प्रथमावस्था में उदर र्ग वेदना नष्ट करने के लिये यह अद्वितीय है। अनुपान—मधु और स्तनदुग्ध।

दाडिमचतुः सम—अतिसार, ग्रहणी, प्रवाहिका रोग में रक्त आता हो तो यह औषध प्रयोग करना चाहिये। अनुपान—बकरी का दूध।

महागन्धक—बच्चों के लिये सदा काम में आनेवाली है। अजीर्ण, वमन, अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी में मलबन्ध या उदराध्मान न होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। यह औषध कुछ धारक-मल को रोकनेवाली है। मल के साथ रक्त आने में बहुत लाभ करती है। यह आमपाचक, वाताजीर्ण, वातिकग्रहणी में लाभ करती है। बालकों के भांति स्त्रियों में भी इन अवस्थाओं में लाभप्रद है। अनुपान—स्तनपायी शिशु के लिये कच्चे विल्व का चूर्ण और मधु; वयस्क शिशु के लिये कच्चे विल्व का चूर्ण या भूना जीराचूर्ण, अथवा मोथे का रस;

रक्त आने पर अनार के पत्तों के रस, लाल कचनार के फूलों का रस अथवा कुटज छाल का रस अथवा अयापान का रस देना चाहिये।

भुवनेश्वर—वाताजीर्ण, विदग्धाजीर्ण, साधारण अग्निमान्द्य, अतिसार में लाभदायक है। गर्भावस्था एवं सूतिका की प्रथमावस्था में अधिक लाभ करता है। अनुपान—उष्ण जल।

वचादि चूर्ण—बच्चों को किसी प्रकार का कास होने पर यह देना चाहिये। अनुपान—मधु।

पञ्चकोल चूर्ण—शिशु या बालक स्तनदुग्ध या गाय का दूध बार-बार वमन करे; तब यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—अनार का रस या बीहीदाने का रस।

वासा क्वाथ—ज्वर या विज्वर अवस्था में बच्चे की छाती में कफ एकत्रित होकर सूख जाये, उससे गले में घर्घर शब्द हो और कफ बाहर न आये तो यह औषध देनी चाहिये। इससे कफ पतला होकर निकलता है।

शृंग्यादि चूर्ण—वातश्लैष्मिक ज्वर, वातश्लैष्मिक कास आदि रोगों में श्वास और हिक्का उपस्थित होने पर, वायु के अत्यधिक प्रकोप से कफ शुष्क हो जाये, यह कफ रुक जाये, जिससे रोगी की छाती में घर्घराहट, दर्द; आध्मान, मलबन्ध, आदि उपद्रव हों, तब यह औषध देनी चाहिये। यह औषध वायु का अनुलोमन करती है; कफ को पतला बनाती है।

अष्टाङ्गावलेह—शिशु और बालक को ज्वर, कास, चेचक, खसरा, छोटी माता हो या अन्य किसी रोग में श्वास और हिक्का हो जाये तो यह औषध देनी चाहिये। शृंग्यादि चूर्ण और इस औषध के बरतने से श्वास और हिक्का में दूसरी औषध की प्रायः जरूरत नहीं होती।

दन्तोद्भेदान्तक रस—दन्तोद्गमजनित रोग में यह महौषध बरतनी चाहिये। दांत निकलते समय ज्वर, आक्षेप, अतिसार; वमनातियोग होने पर यह लाभकारी है। इसको बच्चे के मसूड़ों पर मलना भी चाहिये। अनुपान—स्तनदुग्ध और मधु।

अश्वगन्धा घृत—शिशु या बालक को अतिसार न हो; पुष्टि और बलवृद्धि

के लिये यह महौषध बरतनी चाहिये। इसमें दुर्बल शरीर को बलवान, पुष्ट करने की शक्ति असाधारण है। अनुपान—उष्ण दुग्ध।

शय्यामूत्र चिकित्सा—प्रथम शिशु को **स्वर्ण सिन्दूर या मकरध्वज** कन्दूरी के रस और मधु से देना चाहिये। इससे लाभ न हो तो **बृहत् पूर्णचन्द्र रस** देना चाहिये। इससे भी लाभ न हो तो अफीम के योगमें **कालपूर्ण चन्द्ररस** देना चाहिये।

विषरोग-चिकित्सा

सैन्धवादि चूर्ण—स्थावर या जङ्गम किसी भी विष से रोगी पीड़ित हो, विष का प्रभाव थोड़ा रहे; वमन और विरेचन हो जाने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—घृत और मधु [सैन्धवलवण, मरिच और नीम बीज के चूर्ण, प्रत्येक समभाग लें; मात्रा दो आना]।

बिषवज्रपात रस—स्थावर या जङ्गम विष का अत्यधिक प्रभाव दीखने पर यह औषध देनी चाहिये। अनुपान—जल [निष्कोऽस्य सञ्जीवयति प्रयुक्तो नृमूत्रयोगेन च कालदष्टम्।]।

भीमरुद्र रस—स्थावर या जङ्गम विष का प्रभाव अधिक दीखने पर यह औषध शीतल जल से देनी चाहिये [कुक्करस्य शृगालस्य विषं हन्ति सुदुस्तरम्]।

रसायन और वाजीकरण औषध

हरीतकी रसायन (ऋतु हरीतकी)—प्रत्येक ऋतु के अनुसार हरड़ को पृथक्-पृथक् अनुपान से सेवन करना चाहिये, मात्रा—दो आने से चार आने, वर्षाकाल में सैन्धवलवण के साथ, शरत् और ग्रीष्मकाल में शीतल जल के साथ; हेमन्त, शीत और वसन्तकाल में गरम जल के साथ में सेवन करना चाहिये। ऋतु हरीतकी वातश्लैष्मिक या श्लेष्मप्रधान प्रकृतिवाले व्यक्ति को मलबन्ध रहने में बहुत उपयोगी है। वातिक, पैत्तिक प्रकृति या कृश शरीरवाले के लिये बहुत लाभदायक नहीं है।

धात्री रसायन—आंवले के चूर्ण को हरे आंवलों के स्वरस की ईक्कीस भावना देकर बनायें। इसको मधु और घृत के साथ खाना चाहिये। आमल की चूर्ण, मधु और घृत परस्पर समभाग लेकर एवं ईक्षुचीनी, आमल की चूर्ण का ¼ भाग लेकर और पिप्पली चूर्ण आमल की चूर्ण का १/१६वां भाग लेकर सबको मिलाकर वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में धान्यराशी में रख दें, वर्षा बीतने पर इसका सेवन करें। इससे रोग नष्ट होते हैं; रूप, वर्ण, कान्ति; बुद्धि-मेधा-स्मृति बढ़ती है।

गुडूच्यादि चूर्ण—गिलोय; विडङ्ग, अपामार्ग; शङ्खपुष्पी; वच, हरीतकी, कूठ और शतावरी इनका चूर्ण परस्पर समभाग मिलाकर भक्षण करना चाहिये। यह बुद्धिवर्धक है।[1]

मकरध्वज; स्वल्पचन्द्रोदय मकरध्वज, बृहत्चन्द्रोदय मकरध्वज—प्रमेह से युक्त अग्निमान्द्य, धातुदौर्बल्य, लिङ्गशैथिल्य; ध्वजभङ्ग आदि रोगों में उत्तम है। अनुपान—पान का रस और मधु या घी और मधु।

मन्मथाभ्र रस—सामान्यतः काम में आनेवाली औषध है। धातुदौर्बल्य, लिङ्गशैथिल्य, ध्वजभङ्ग में इसका व्यवहार होता है। अनुपान—गरम दूध; सहपान—मधु।

नारसिंह चूर्ण—श्रेष्ठ रसायन और वाजीकरण है। अनुपान—गरम दूध।

गोक्षुरादि चूर्ण—यह चूर्ण अतिशय रतिशक्तिवर्धक; सन्ध्याकाल में ½ तोला मधु के साथ खाकर गरम दूध अनुपान में पीना चाहिये।

रतिवल्लभ मोदक—वाजीकरण औषधियों में श्रेष्ठ और सद्यःफलप्रद है। शरीर दुर्बल, लिङ्गशैथिल्य, भूख की कमी, पतला मल रहता हो, शरीर में कोई रोग न हो; उनके लिये उत्तम है। उपदंश आदि कारण होने पर नहीं बरतें। अनुपान—गरम दूध।

---

१. इसके सिवाय, अग्निवर्द्धक, भाङ्ग संयुक्त औषधियों, मोदकों तथा धातुघटित रसायनों का भी उपयोग होता है, यथा—त्रैलोक्यचिन्तामणि, महालक्ष्मीविलास, मकरध्वजवटिका, अमृतप्राश घृत, वृहत् अश्वगन्धा घृत, वसन्ततिलक, च्यवनप्राश, बृहत्पूर्णचन्द्र रस; मदनान्दमोदक; नारदीय महालक्ष्मीविलास हैं। सिद्धियुक्त (भाङ्गयुक्त) मोदकों में वाजीकरण गुण अधिक है।

कामाग्निसन्दीपन मोदक—रतिवल्लभ मोदक के समान गुणकारी है; यह अधिक अग्निदीपक है। अनुमान—दूध। [**महाकामेश्वर मोदक** भी इसी गुणवाला है; सायंकाल में खाना चाहिये]।

शुक्रवल्लभ रस—उत्तम वीर्यस्तम्भक है, विशेषतः जिनका वीर्य तरल हो, मूत्र के साथ वीर्यस्राव हो, उनके लिये; उत्तम है। **अनुपान—**मधु के साथ पीसकर चाटें। अनुपान—दूध।

कामिनीविद्रावण रस—जिनमें वीर्य जल्दी च्युत हो जाता है; धारणशक्ति कम है, उनके लिये बहुत लाभप्रद है। इसमें अफीम है; सायंकाल में मधु के साथ चाटकर पीछे से दूध पीना चाहिये।

धातु दौर्बल्यरोग में बृहत् **पूर्णचन्द्ररस, स्वल्पचन्द्रोदय मकरध्वज, अश्वगन्धा घृत; अमृतप्राश घृत** आदि रोगी को देने चाहियें।

रससिन्दूर, स्वर्णसिन्दूर और मकरध्वज का अनुपान

सामज्वर में—आर्द्रक, विल्वपत्र, पान, निर्गुण्डी (सम्भालु) पत्र, परवल या करेला का पत्र; इन में से जो भी मिल जाये, उसी के रस एवं पिप्पली या सोंठ का चूर्ण और मधु के साथ प्रयोग करना चाहिये। बालक और शिशुवों के लिये अनुपान—तुलसीपत्र रस और मधु, स्तन्यपायी शिशु के लिये स्तनदुग्ध और मधु।

ज्वर के उपद्रव में—आर्द्रक रस, घिसा हुआ रुद्राक्ष या तालशाखा का रस; इनके साथ देना चाहिये। जिन उपद्रवों में कस्तूरी देनी होती है; उनमें इसके साथ कस्तूरी मिलाकर ऊपर के किसी भी अनुपान के साथ देते हैं। बालक और शिशुवों के लिये ये सब अनुापन उत्तम है।

निरामज्वर या पुरातनज्वर में—गिलोय रस, परवल रस, हारसिंगार के पत्तों का रस, चिरायते का शीत कषाय; पित्तपापड़े का रस अथवा कालमेघ का रस और मधु। किसी कषाय के साथ अथवा दो-तीन द्रव्यों को मिलाकर देने से अधिक लाभ होता है। बालक और शिशुवों के लिये कालमेघ का रस बहुत उत्तम है।

प्लीहाज्वर में—लहसुन की कली, ताल की जटाभस्म, पुराना गुड़, लालचित्रक का चूर्ण, रोहितक छाल चूर्ण, हींग, पिप्पलीमूल का क्वाथ, आर्द्रक रस या सेहुण्ड का पत्ता अग्नि में गरम करके उसके रस के साथ देना चाहिये।

यकृतसंयुक्त ज्वर में—मलबन्ध रहने पर निशोथ का चूर्ण या कुटकी चूर्ण; मल शोधन होने पर कालमेघ का रस, आमलकी चूर्ण या चिरायते का शीतकषाय।

शोथयुक्तज्वर में—श्वेत या रक्त पुनर्नवा का रस, बिल्वपत्र रस; इनमें से किसी एक के साथ पिप्पली चूर्ण और मधु मिलाकर देना चाहिये।

कास और काससंयुक्त ज्वर में—वासक छाल का रस, पिप्पली चूर्ण और मधु अथवा वासक छाल, किसमिस, मुलैहठी; पिप्पली; इन चार द्रव्यों के साथ अथवा पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ देना चाहिये।

श्वास और श्वाससंयुक्त ज्वर में—घिसा हुआ बहेड़ा, स्तनदुग्ध (कच्चा दूध); बहेड़े की मज्जा को कच्चे दूध में घिसकर या पीसकर; तुलसीपत्र रस और पिप्पलीचूर्ण; मयूर पुच्छभस्म अथवा भार्ङ्गी का रस और मधु के साथ देना चाहिये।

हिक्कारोग या हिक्कासंयुक्त ज्वर में—बेर की मज्जा पीसकर या बहेड़े की मज्जा को घिसकर; खीरे की मींग और स्तनदुग्ध; मलबन्ध होने पर कुटकी चूर्ण के साथ दें।

मन्दाग्नि में—अजवायन पीसकर और सैन्धवलवण अथवा लवण चूर्ण के साथ देना चाहिये।

आमाजीर्ण में—उष्ण जल, आर्द्रक रस; पान का रस और मधु के साथ दें।

विदग्धाजीर्ण में—निम्बू का रस, चूने का पानी, धनिये को शीत कषाय के साथ देना चाहिये।

विष्टब्धाजीर्ण में—हींग, सैन्धवलवण या चावलों का मण्ड या सौंफ का पानी या अर्क से देना उत्तम है।

ज्वरातिसार में—मोथे का रस और मधु अथवा अतीस का चूर्ण और मधु।

अतिसार में—मोथे का रस और मधु; कच्चे विल्व का चूर्ण मधु; बालकों

और शिशुओं के लिये जायफल घिसकर उसके तथा स्तनदुग्ध के साथ देना बहुत उत्तम है।

ग्रहणीरोग में—कच्चे बिल्व का चूर्ण और पुराना गुड़; मोथे का रस और मधु; अथवा भूना हुआ जीरा चूर्ण और मधु।

प्रवाहिका रोग में—तिपतिया या चौपतिया के [चांगेरी के] पत्तों का रस।

रक्तातिसार, रक्तप्रवाहिका, रक्तवमन में—लाल कचनार के मूल तथा फूल के रस और मधु; कूडे की छाल का रस और मधु, कुक्करमुत्ता का रस, अनार के पत्तों का रस या अयापान का रस और मधु के साथ देना चाहिये।

विसूचिका रोग में—चिरचिटे के [अपामार्ग के] मूल का रस और मधु।

पाण्डु, कामला और हलीमकरोग में—कोष्ठकाठिन्य होने पर निशोथ का चूर्ण या कुटकी का चूर्ण या करेले के पत्तों का रस, मलबन्ध न होने पर गिलोय का रस और त्रिफला चूर्ण या हल्दी का चूर्ण अथवा तालमखाने का रस या चिरायता का शीत कषाय इनके साथ देना चाहिये।

रक्तपित्त और रक्तपित्त से युक्त ज्वर में—ऊर्ध्वगत और अधोगत भेद से रक्तपित्त दो प्रकार का है। इनमें ऊर्ध्वगत रक्तपित्त में अयापान का रस; कुकरमुत्ता का रस, वासक छाल का रस, कच्ची दूर्वा का रस या आलक्तक के शीतकषाय से; अधोगामि रक्तपित्त में कुटज छाल का रस के साथ देना चाहिये। अर्श आदि में रक्तस्राव होने पर काले तिल पीसकर और चीनी के साथ या कुटज छाल का रस और बब्बूल का चूर्ण उत्तम रक्तस्तम्भक है।

यक्ष्मारोग में—कच्ची दूर्वा का रस, गूलर का रस; अयापान का रस दें, ये रक्तरोधक हैं। ऊर्ध्वगामि रक्तपित्त के सब अनुपान इसमें बरते जा सकते हैं। कास होने पर वासक छाल का रस और पिप्पली चूर्ण; वासक छाल और मुलैहठी किसमिस और पिप्पली; इन चारों द्रव्यों को क्वाथ में भी दे सकते हैं।

अर्शरोग में—नागकेशर ३ माशा, मक्खन ६ माशा, चीनी १ तोला; रक्तार्श में—काले तिल पीसकर और चीनी मिलाकर, इनके सिवाय कुटज छाल का रस; अयापान का रस; कुक्करमुत्ते का रस बरतना चाहिये। आम और रक्त आने पर कुटज छाल का रस बहुत उत्तम है। मलबन्ध होने पर बड़ी हरड़ का चूर्ण (जलापा) या निशोथ का चूर्ण देना चाहिये।

स्वरभंग में—ब्राह्मीपत्र रस या कन्टकारी का रस, पिप्पली चूर्ण, वचका चूर्ण मिलाकर बरतें।

अरुचि में—मातुलुंग का रस; अम्बाडे का रस; पुरानी ईमली, अम्लवेतस; आर्द्रक का रस और सैन्धानमक के साथ देना चाहिये।

कृमियोग में—अनार के कच्चे पत्तों का रस, अतीस का चूर्ण, सुपारी वृक्ष की कच्ची शाखा का रस; शठी का रस; चम्पा की छाल का रस; खर्जूर के पत्तों का रस; विडंग चूर्ण; पलास वीज चूर्ण; शिशुवों के लिये चूने का जल और विडंग चूर्ण उत्तम है।

वमन में—नारियल का जल; लाजामण्ड या लाजोदक, पटोल का रस; अनार का रस; खीरे की मींगी; कच्चा दूध; वीहीदाने का रस; चावलों का धोवन; पीपल की शुष्क छाल को जलाकर जल में भिगो कर उस जल के साथ देना उत्तम है।

तृष्णा में—वीहिदाने का रस; धनिया का शीत कषाय या सौंफ का अर्क या शीत कषाय।

दाह में—केले के मूल का रस; परवल का रस; वीहीदाने का रस; गिलोय का रस; पित्तपापड़े का रस, शतावरी का रस।

मूर्च्छारोग में—चावलों का पानी; वीहीदाने का रस; शतावरी का रस, अनार का रस उत्तम है।

उन्माद रोग में—शतावरी का रस और चीनी; वीहीदाने का रस; परवल का रस; पुराने कुष्माण्ड का रस, या त्रिफला का शीत कषाय।

अपस्मार या हिस्टीरिया रोग में—शतावरी का रस, पुरातन कुष्माण्ड का रस; त्रिफला का शीतकषाय; अनार का रस, वीहीदाने का रस, पटोल का रस और ईक्षुचीनी।

वातव्याधिरोग में—स्नायुगत वायु में-अश्वगन्धा का चूर्ण या क्वाथ, वातव्याधि में शोथ और वेदना होने पर-ऐरण्ड मूल का रस, आर्द्रक रस और सैन्धव नमक के साथ; ग्रन्थिगत वायु में ग्रन्थि में सूजन और वेदना होने पर-सहिजन की

छाल का रस और मधु; मलबन्ध होने पर–लहसुन या एरण्ड बीज पीसकर देना चाहिये।

ऊरुस्तम्भरोग में—आर्द्रक रस और पिप्पली चूर्ण; सहिजन की छाल का रस–पिप्पली चूर्ण और मधु।

आमवात में—एरण्ड मूल का रस और सैन्धव लवण; आर्द्रक रस या पिसे हुए लहसुन के साथ।

शीतपित्त–ऊदद–कोठरोग में—मलबन्ध न होने पर कच्चा हल्दी का रस, मलबन्ध होने पर–करेले के पत्तों का रस और हल्दी का चूर्ण मिलाकर देना चहिये।

अम्लपित्त में—सामान्यतः यह रोग दो प्रकार का है, ऊर्ध्वगामी और अधोगामी। अधोगामी अम्लपित्त में अम्ल गन्धयुक्त पतला मल आता है, ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त में मलबन्ध; गले और छाती में दाह, अम्लरस और अम्लगन्धयुक्त वमन होता है। हाथ–पैर में दाह, मलबन्ध न हो तो परवल का रस; या गिलोय का रस देना चाहिये। मल अधिक या पतला आये, तब इन्द्रयव का क्वाथ; चूने का पानी या मोथे का रस देना चाहिये। श्लेष्मप्रधान अवस्था में अग्निमान्द्य रहने में लवंग चूर्ण दें। मलबन्ध रहने पर करेले के पत्तों का रस या निशोथ चूर्ण, अथवा सौंफ, धनिया तथा जलापा इनका शीत कषाय दें; अतिशय पित्तप्रधान प्रकृति में त्रिफला का जल, आमलकी जल; शतावरी का रस; पुराने कुष्माण्ड का रस; चिरायता का हिमकषाय; धनिया, परवल का हिमकषाय दें; उष्ण प्रकृति व्यक्ति के लिये वायु–पित्त प्रधान व्यक्ति के लिये नारियल का जल देना चाहिये अथवा खस या नेत्रबाला का हिम कषाय दें।

शूलरोग में—मलबन्ध होने पर निशोथ का चूर्ण या जलापा (जंगी हरड़) अथवा धनिया और सौंफ का हिमकषाय बरतें। मलबन्ध न होने पर धनिया, परवल का हिमकषाय या शतावरी रस देना चाहिये। वात–पित्त प्रधान प्रकृति में–उष्ण शरीर में नारियल का जल अथवा त्रिफला का शीत कषाय बरतना चाहिये।

उदावर्त्त और आनाह रोग में—इनमें वायु का अति प्रकोप होता है; इस लिये दोनों में वायुनाशक अनुपान देना चाहिये। मलबन्ध होने पर दोनों

में निशोथ चूर्ण दें; मलबन्ध न होने पर त्रिफला का शीत कषाय या शतावरी का रस बरतें।

गुल्मरोग में—मलबन्ध होने पर गोमूत्र या निशोथ चूर्ण; मलबन्ध न होने पर पिप्पली चूर्ण आर्द्रक का रस।

हृद्रोग में—अर्जुन छाल का चूर्ण या क्वाथ।

मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात में—दोनों अवस्थाओं में गोक्षुर क्वाथ; पाषाण भेद के (हिमसागर) पत्तों का रस और यवक्षार; केले की जड़ का रस अथवा शतावरी का रस देना चाहिये या इलायची का क्वाथ दें।

अश्मरीरोग में—वरुण की छाल का रस या क्वाथ में वरुण छाल का चूर्ण प्रक्षेप देकर अथवा पाषाण भेद के पत्तों का रस; केले की जड़ का रस; तृण पंच-मूल क्वाथ या ककड़ी के बीजों के चूर्ण के साथ देना चाहिये।

मेहरोग में—गोनोरिया में-कच्चे सिम्बल की जड़ का रस, बबूल का चूर्ण; कच्चे-हरे आंवलों का रस; ज्वालायुक्त मेहरोग में-कच्ची हल्दी का रस, अलसी या बीहोदाना अथवा ईसबगोल का लुवबा पानी में बनाकर देना चाहिये। गोनोरिया या प्रमेह में रक्तस्राव होने पर, अयापान का रस, कच्ची दूर्वा का रस देना चाहिये। प्रमेह अच्छा होने पर बल और पुष्टि के लिये अश्वगन्ध चूर्ण या बलामूल चूर्ण देना चाहिये।

सोमरोग (बहुमूत्र) में—केले के फूल का रस, गूलर के बीज या गूलर का चूर्ण, जामुन की गुठली का चूर्ण बरतना चाहिये।

कृशतारोग में—अश्वगन्धा का मूल चूर्ण और दूध।

उदररोग में—निशोथ का चूर्ण देना चाहिये।

वृद्धिरोग में—शोधित गुग्गुलु चूर्ण और त्रिफला का क्वाथ बरतें।

श्लीपद में—शोधित गुग्गुलु चूर्ण और त्रिफला क्वाथ उत्तम है।

विद्रधिरोग में—सहिजन की छाल का क्वाथ दें, मलबन्ध होने पर इस क्वाथ में निशोथ का चूर्ण प्रक्षेप करके देना चाहिये।

भगन्दररोग में—खैर की लकड़ी का क्वाथ देना चाहिये।

व्रणशोथ और व्रणरोग में—करेले के पत्तों का रस; शोधित गुग्गुलु चूर्ण या कुटकी चूर्ण बरतना चाहिये। ये सब अनुपान विरेचक हैं।

फिरंग या सिफलिस में—अनन्त मूल का क्वाथ या गिलोय का रस और चोपचीनी बरतें।

कुष्ठरोग में—चालमुगरा या तुवरक के बीज पीसकर दो आना भर अथवा नीम के पुष्प, फल, पत्ता, छाल और मूल का चूर्ण करके उसके साथ देना चाहिये।

चेचक में—करेले के पत्तों के रस के साथ में दें।

नासारोग में—तुलसी पत्र रस या पान के रस के साथ दें।

नेत्ररोग में—त्रिफला के क्वाथ या भृंगराज के रस के साथ देना चाहिये।

प्रदररोग में—श्वेतप्रदर में-आमलकी बीज चूर्ण को पीस कर और शहद या चावलों के धोवन से और कुशामूल को पीसकर उसके साथ दें; रक्तप्रदर में-अशोक की छाल के रस या क्वाथ के साथ देना चाहिये।

ऋतु कष्ट में—उलटकम्बल का मूल ३ माशा और मरिच ३ या ४ लेकर उनको पीसकर उनके साथ देना चाहिये।

गर्भिणीरोग में—गर्भवती को जो कोई रोग प्रबल हो, उसी रोग के अनुपान के साथ देना चाहिये।

सूतिकारोग में—इसमें अनुपान की स्थिरता नहीं है। इसलिये जो रोग प्रसूता को हो, उसी रोग का अनुपान बरतना चाहिये।

बालरोग में—अन्नभोजी और दुग्धान्नभोजी बालक में नवज्वर या सामज्वर होने पर तुलसी पत्र का रस और मधु; पुरातन या निरामज्वर में अन्नभोजी शिशु के लिये कालमेघ का रस और मधु; गिलोय का रस और मधु, हारसिंगार के पत्तों का रस और मधु; प्लीहा ज्वर में पिप्पली चूर्ण और मधु या पिप्पली चूर्ण और पुराना गुड़; ज्वरातिसार और अतिसार में—मोथे का रस और मधु या कच्चे विल्व का चूर्ण; विल्वमज्जा क्वाथ और मधु; अतीस का चूर्ण और मधु, धाय के फूल का चूर्ण और मधु; रक्तातिसार में—कूटज छाल का रस या अयापान का रस या कुकरमुत्ते का रस और मधु; कास में या कास और ज्वर में—पिप्पली चूर्ण और मधु; वच का चूर्ण और मधु; काकड़ाशृंगी का चूर्ण और मधु;

तुलसी पत्र रस और मधु। कास में कफ को पतला करना आवश्यक होने पर पिप्पली मूल के क्काथ के साथ देना चाहिये। वमन में-खीरे की भींगी और स्तनदुग्ध (कच्चे दूध के साथ), ग्रहणी रोग में-मोथे का रस और मधु; भुना जीरा चूर्ण और मधु; बलपुष्टि के लिये अश्वगन्धा चूर्ण और मधु बरतें।

विषरोग में—अपराजिता मूल का चूर्ण और मधु।

रसायन में—दूध की मलाई और मधु; मक्खन और मिश्री; अश्वगन्धा चूर्ण और मधु; बला चूर्ण और मधु; शतावरी का रस या चूर्ण और मधु; भांगरे का रस या चूर्ण और मधु; भूई आंवले का रस और मधु; विदारी का रस या चूर्ण और मधु।

वाजीकरण में—दूध में शुद्ध भांग के वीजों का चूर्ण; घृत में भूने उड़दों के चूर्णों के साथ, पुराने सिम्बल की छाल के चूर्ण से, विदारीकन्द का चूर्ण; शतावरी का चूर्ण, तालमखाने के बीज का चूर्ण, केशर और कस्तूरी के साथ देना चाहिये।

